उपकार पत्र

१ जैन श्वेताम्बर साधू मार्गी आठ कोटी मोटी पक्ष के कच्छ देश पात्र कर्ता परम पूज्य श्री कर्मसिंहजी महाराज के शिष्य वर्य प्रवर पंण्डित कविवरेंद्र विशुद्ध चारित्रीश्री नागचद्रंजी महाराज. आपने यहांसे प्रसिद्ध हुवा विज्ञातिपत्र पढकर इस ग्रंथकी द्वितियावृति में शुद्धिवृद्धी करने के लिये प्रथमावृति की एक प्रत में आद्यान्त सुधार कर श्लोक गाथा और सूत्र का मूल अलग ही लिखकर कितनी युक्त सुचनासे भेज ने की कृपा करी, जिस के आधार से मैं इस पुस्तक को शुद्ध करने समर्थ बना इस लिये मैं आपका अंतःकरण से उपकार मानता हूं,

२ जैन श्वेताम्बर साधू मार्गी परम पूज्य श्री जयमलजी महाराज के सम्प्रदाय के पूज्याद्वादर्शक परम पण्डित मुनिराज श्री प्रभाकरसूरीजी (प्रसन्न चंदजी) महाराज आपने यहां से प्रसिद्ध हुवा विज्ञप्ति पत्र पढकर फक्त ८ हि दिन के अंदर अत्यन्त पर्यास- कर इस पुस्तक की प्रस्तावना शुद्ध पत्र वगैरा सर्व आद्यन्त बहुत दीर्घ द्राष्टि से सुधारा कर भेजा

इस पुस्तक के सुधार में भी आपका किया हुआ प्र-
यास बहुतही उपयोगी हुवा है. इसलिये मैं आपका
अंतःकरण से उपकार मानता हूं

३ जैन श्वेताम्बर साधु मार्गी पंडित राज शुद्ध
संयमी श्री माधवमुनिजी के शिष्य वर्य विद्या विला-
सी श्री मूल मुनिजी. आपने इस पुस्तक के ५०प्रष्टकी
शुद्धि पत्र बहुतही उपयोगी सुचनाके साथ भेजा वो
आपका प्रयास इस पुस्तक के सुधार में उपयोगी
हुवा है इस लिये मैं आपका अंतःकरण से उपकार
मानता हूं

इन तीनोंही महात्मा का ज्ञान वृद्धि सम्बंधी उत्स
हा देख. मुझे बहुत आनंद होता है और चाहता हूं
कि इससे भी अधिक उत्साही सत्य जैन मुनियो बन
कर ज्ञान उन्नति करने कटिबद्ध होवें.

तीनोंही मुनिवरों आपकी कितनी सुचनाओं का
पालन होने में मेरा प्रमाद हुवा है इस लिये मैं आ
पकी क्षमा चाहता हूं.

आपका अभारी
अमोल ऋषि.

॥ प्रथमावृती की प्रस्तावना ॥
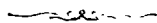
मोक्ष कर्म क्षया देव, स सम्यग्ज्ञानतः स्मृत्तः ॥
ध्यान साध्यं मतं तद्धि, तस्मा द्धित मात्मनः ॥

इस जगत् वासी सर्व जीवों एकान्त सुखके अभिलपी हैं. वो एकान्त सुख मोक्ष स्थानमें है. इसी सबब से सर्व धर्मावलम्बीयों अपनी धर्म करणी का फल मोक्षकी प्राप्ति बतलाते हैं. और अलग २ मोक्ष के नामकी स्थापना कर, उसकी प्राप्ती के लिये उद्यम करते हैं. जो सर्व दुःख से रहित एकान्त सुखस्थान मय मोक्ष है, वो सर्व कर्मोंके क्षयसे होता है. कर्मक्षय करनेका उपाय दर्शाने वाला सम्यग (समकित युक्त) ज्ञान है; वो सम्यग् ज्ञान ध्यनसे होताहै योग वसिष्ट ग्रन्थमें कहा है कि "विचारं परमं ज्ञानं" विचार-ध्यान है सोही परमोत्कृष्ट ज्ञान है- इस लिये ध्यानही एकन्त सुख प्राप्त करनेका मुख्य हेतु है. परम सुखार्थी जनो को ध्यानके स्वरूपको जाणनेकी विशेष आवश्यकता समझ, यह "ध्यानकल्पतरु" ग्रन्थ रचा गया है. इसमें शुभाशुभ, और शुद्धाशुद्ध ध्यान का स्वरूप समझा अशुद्ध और अशुभसे बच, शुभ और शुद्ध ध्यान करनेकी रीतो सरल नामे दरशाई गई

है. जिससे इसे पठन मनन कर मुमुक्ष जन अपना इ-
ष्टार्थ सिद्ध करने का उपाय जान सकेंगें.

"जयतीति जैन" जैन शब्द जिनसे हुवा है जि-
न शब्दकी धातु 'जय' है, जय शब्दका अर्थ जीतना
पराजय करना या नाबेस-काबूमे करना ऐसा होता है.
जीत शत्रुकी की जाती है. अपने सच्चे कट्टे और जा-
लिम शत्रु राग द्वेष को जीते व कर्मी कर, वोहीं सच्चे
जैनी व जैन धर्मी हैं. राग द्वेष न होय ऐसे पवित्र
धर्ममें मत भेद पडना, या क्लेश होना असंभव है, क्यों
कि पानीसें वस्त्र जलता नहीं है. यह जैन धर्मका सत्य
प्रभाव फक्त दो हजारहीं वर्ष पहले इस आर्य भूमिमें
प्रत्यक्ष दृष्टी आताथा; हजारों साधु साध्वीयों और
लाखों श्रावक श्राविकाओं तथा असंख्य सम्यक दृष्टि
जीव सब एक जिनेश्वर देवकेही अनुआयी थे.इस सत्पके
परम प्रभाव से, यह 'जैन धर्म' सर्व धर्मों से उच अ-
द्वितीय पदका धारक था, वडे सुरेन्द्र नरेन्द्र इसे मान्य
करते थे; अपार ऋद्धि सिद्धीयों का त्याग कर जैन
भिक्षुक (साधु) बनते थे, और वितराग वृति से
आत्म साधन कर सर्व इष्ट कार्य सिद्ध करते थे, मोक्ष
प्राप्त कर ते थे. जिसका मुख्य हेतु यह ही दिखता

है कि जो महात्मा सूत्र में कहे मुजब ज्ञान ध्यान में विशेष काल व्यतीत करते थे. श्री उत्तराध्ययनजी सूत्रके २६ में अध्यनमें साधुके दिन कृत्य और रात्री कृत्य का बयान है, वहां फरमाया है कि—

पढमं पोरिसीए सज्झायं, बीयं झाणं झियायइ॥
तइयाए भिक्खायरिए,चउत्थी भुज्जो वि सज्झाय॥१२॥

अर्थात्—दिनके पहिलेपहरमें सज्झाय (मूल सूत्रका पठन) दूसरे पहरमें ध्यान (सूत्रके अर्थका विचार) तीसरे पहर में भिक्षाचारी (भिक्षा वृति से निर्दोष अहार प्रमुख ग्रहणकर भोगवे) और चौथे पहर में पुनः सज्झायः यह दिनकृत्य. और रात्री के पहलेपहर में सज्झाय, दूसरे में ध्यान, और " तइया निंदा मोक्खंतु " अर्थात तीसरी पहर में निद्रा से मुक्त होवे और चौथे में पुनः सज्झाय करे, यों दिन रात्री के ८ पहर ज्ञान ध्यान में व्यतीत करते थे!

तैसेही श्रावकों के लिये भी इसी सूत्र के ५ में अध्ययनमें फरमायाहैकि—

आगारी यं सामाइ यंगाइ, सढी काएण फासइ॥
पोसह दुहओ पक्खं, एगराइ न हावए ॥२३॥

अर्थात्—गृहस्था वास में रहा हुवा श्रावक

हुवा, मोक्ष का इजारा हमारे पन्थ वाले को ही है अन्य सब मिथ्यात्वी हैं, हमारे को छोड अन्य को अहार आदी देने, में तथा नमस्कार सन्मान करने में सम्यक्त्व का नाश होता है ! अनंत संसार की वृधि होती है ! ! —ऐसेरा उपदेश कर बाडे बान्ध लिये ? देखिये बन्धुओ ! राग द्वेष जीतने वाले जिन देवके अनुयायी यों का उपदेश ? एसी २ विपरित परूपणासे, इस शुद्ध जैन मतके अनेक मतांतर होगये हैं, और एकेक की कटनी—मत्यानाशी का उपाय का विचार ध्यानमें करने में ही परम धर्म समझने लगे, जो कुयु क्तियों कर विवाद में जीते उसेही सच्चा धर्मी जानने लगे, जो जरा संस्कृतादि भाषा बोलने लगे और कहानीयो गायणीयो कर परिषद को हँसादे वोही पंडित राज कहलाये, जो तरतम योग से साधु बने वोही चौथे आरेके बानगी बने, जो ज्युनी मुहपति पूंजणी रक्खी या टीले टपके किये वोही श्रावकजी कहलाये, और विषय कषाय के पोषणमें ही धर्म माना ! इत्यादी प्रत्यक्ष प्रवर्तना हुइ इन क्षुल्लक बातों परसे ही विचारो ये कि जैनी इन को कहना क्या ? लाला रणजीत-सिंहजीने कहा है—

जैन धर्म शुद्ध पायके, वरते विषय कषाय ॥
यह अचंभा हो रहा, जलमें लागी लाय ॥ १ ॥

उज्जैन की सिप्रा नदीके पाणी में भैंसे (पाडे) जल (बल) मरे ? ऐसा आश्चर्य जनक बनाव बनने का सबब भैंसे की पीठ पर लदेहुये चूनेही का था !! जैसे ही जैन धर्म में रहे हुये जीव नित्य हीन दिशा को प्राप्त होते हैं, इनका सबब उनके हृदय में रहा हुवा विषय कषाय ईर्षा रूप क्षार ही है ! ! सखेदा श्चर्य है की जैन धर्म जैसे सुधा सिन्धू में गोता खा कर ही, विषय कषाय ईर्ष रूप लाय (अग्नि) शांत नहुइ ! हा इति खेद ! विषय कषाय राग द्वेष ईर्ष रूप लाय बुजने का शांत करने का उपाय ध्यानही है, कि जिसका प्रभाव प्राचीन कालमें प्रत्यक्ष था, उसे लुप्त जैसा हुवा देख, ध्यानका स्वरूप सरल ता से समझा ने वाला एक ग्रन्थ अलग ही होनें की आवश्कता जान यह ध्यानकल्पतरू नामक ग्रन्थ श्री उववाइ जी सूत्र, श्री उत्तरा ध्येनजी सूत्र, श्रीसुय-डांग जी सूत्र श्री आचारांङ्गजी सूत्र, और ज्ञानार्णव, द्रव्य संग्रह, ग्रन्थ, तथा कितनेक थोकडा के आधारसे स्व-मत्यानुसार बनाके श्री जैन धर्मानुयायी यों को समर्पण करता हूं, और चहाताहूंकि ध्यानकल्पतरू

की शीतल छांय में रमण कर, अशुभ और अशुद्ध ध्यान से निवृत शुभ और शुद्ध ध्यान में प्रवृत न कर सच्चे जैनी बन जैन धर्म का पुनरोद्धार करोगे? और इंछितार्थ सिद्ध करने समर्थ बनोगे—विशेषु किमोधकं

धर्मो न्नती कांक्षी—अमोल ऋषि-

"आवश्यकीय सुचना"

ध्यान नाम विचार का है, विचार अनेक तरह के होते हैं उन सब विचारों का संग्रह कर श्री सर्वज्ञने चार* हिस्से किये हैं, उसके बाहिर एकभी विचार नहीं है येही युक्ती शास्त्रानुसार व कुछ प्रज्ञानुसार इस "ध्यान कल्पतरु" ग्रन्थमें वापरी है. अधमसे अधम विचार निगोदमे ले जाने वाला और उच्चसे उच्च ध्याननोक्षमें ले जानेवाला सर्वका संग्रह इसमें आगयाहै, संसारमे ऐसा कोइभी कार्य नहीं है किजो विन विचार (विन ध्यान) होवे अर्थात् सर्व कार्यके अव्वल विचारही है, विन विचार किसीभी कार्यका होने असंभवहै. कोइक अकस्मात् होजाय उसकी वात अलग.

संसारके शुभ सर्व विचार का चित्र दर्शना

---

* उप शाखा मे शुभ और शुद्ध ध्यान चार ध्यानमें अलग लिखे हैं, परन्तु उनका भी धर्म और शुक्ल ध्यान में समावेश होजाता है.

येंही इस ग्रन्थ का मुख्य प्रयोजन है, इस लिये आर्त और रौद्र ध्यान के पेटमेंसंसारमे वर्तमान वरतती हुई बहूतसी बातों का समावेश हुवाहै, जिसे पढ कर पाठक गणों को ऐसा विचार नहीं करना कि ग्रन्थ कर्ता ने सर्व संसार कार्य की उथापना करदी. मेरे उथापन करने से कुछ संसार कार्य बन्ध पडता नहीं है. यह तो अनादी सिलसिला महान सर्वज्ञउ पदेशकों ही नहीं अटका सके तो मैं विचार कौनसी गिनंतीम, परन्तु जो कार्यारंभ किया उसका यथातथ्य स्वरूप यथा बुद्धि दर्शाना यह ग्रन्थ कारकका मुख्य प्रयोजन है, इसी सबब से संसारमें प्रवृतती हुई बातोंका चित्रइसमें आया है.

यह तो निश्चय से समझियेकि अव्वलके दोनों ध्यान एकांत निषेधकही हैं, वो छूटने से,ही आत्मा सुखानुभव कर शक्ती है. परन्तु ऐसा नहीं समझिये-कि खोटे ध्यानी सर्व संसारी जन हैं सो सबकी कुगती होगी. हां! यहतो निश्चन है कि खोटे ध्यानसे कुगती हीहो ती है. परन्तु ऐसा नहींहै कि सर्व संसारीयों एकान्त कु–ध्यान केही ध्याने वाले हैं, क्योंकी बहुतसे संसा री बक्तसर धर्म ध्यानभी ध्याते हैं,और अच्छे धर्म कृत्यभी करते हैं. जिससे शुभाशुभ फलकी मिश्रता

होनेसे. उनको सुखमिश्र देव गतीकी प्राप्ती होतीहै, वहां भी धर्म ध्यान ध्यानेसे पुनःउच्च मनुष्य गतीको प्राप्त हो फिर शूभ ध्यानकी विषेशता होनेसे शुद्ध ध्यानको प्राप्त कर सकेंगे.

अमोलख ऋषि.

ग्रन्थ कर्ताका संक्षिप्त जीवन चरित्र वगैरा.

मालव देशके भोपाल शेहरमें ओसवाल बडे साथ काँसटीया गोत्रके शेठ केवलचंदजी रहतेथे, उनकी पत्नी हुलासा बाइके कुंखसे संवत १९३३ के भाद्रव वद्य ४ को पुत्र हुवा उसका 'अमोलक, नाम दिया. और एक पुत्र हुवे बाद हुलासा बाइका देहान्त हो गया. फिर केवलचंदजी ने सं. १९४३ के चेतमें दीक्षा धारण कर पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के महंत मुनि श्री खूबाऋषिजी महाराजके शिष्य हुवे. और ज्ञानाभ्यास कर एक उपवाससे एकास्म उपवास तक लड बन्ध और ३०–३१–४१–५१–६१–६३–७१–८१–८४–९१–१०१–१११– और १२१ यह तपस्यातो छाछके आगरसे, और छे महीन तक एकांतर उपवास और बहोतसी करीहै तथा एवं

पंजाब, मालवा गुजरात, मेवाड मारवाड दक्षिण व-
गेरा बहुत देश स्फर्शे हैं.

सं० १९४४ के फागन में महात्मा श्री तिलोका
ऋषिजी महाराजके पाटवी शिष्य श्री रत्न ऋषिजी
महाराजके साथ श्रीकेवल ऋषिजी, इच्छा वर(भोपाल)
पधारे उसवक्त वहांसे दो कोश खेडी ग्राममें अमोलक
चंद अपने मामाके पासथे, मुनिआगम सुन दर्शनार्थ
गये और वैरागी पिता को देख वैरागी बने. तुर्त फा
ल्गुन वद्य २ को दिक्षा धारन कर पिताके साथ हुये,
पूज्य श्री खूबऋषिजी महाराजके पास लाये. तपस्वीजी
श्री केवल ऋषिजीने संसार सम्बन्धके कारणसे श्री
अमोलक ऋषिजीको अपने शिष्य बनानेकी नाखुशी
दरशाइ, तबपूज्य श्रीके जेष्ट शिष्य आर्यमुनी श्री
चेना ऋषिजी महा राजके शिष्य अमोलक ऋषिजी
बनाये, थोडे ही काल बाद श्री चेना ऋषिजी और
पुज्य श्री खूबाऋषिजी का स्वर्ग वास हुवा, और फिर
थोडे ही काल बाद तपस्वीजी श्री केवल ऋषिजी
एकले विहारी हुवे. तब नजीकमें विचरते श्री भेरूऋ-
षीजी के साथ श्री अमोलख ऋषि विचरे, उसवक्त
(१९४८ फाल्गुनमें) ओस वाल ज्ञाती के एक पन्ना-
लालजी ग्रहस्थने १८ वर्ष की वयमे दीक्षा धारन कर

श्री अमोलख ऋषिजीके शिष्य घनेथे. उनकोसाथ ले जावेरे आये, वहां श्री-कृपा रामजी महारा ज के शिष्य श्री रूपचंदजी महाराज गुरु वियोग सेदुःखी हो रहेथे उनको संपोत ने श्री अमोलख ऋषिजी ने अपने शिष्य पन्ना ऋषिजी को समरपण किये! देखीये एक येह भी उदारता!! फिर दो वर्ष बाद दीक्षा दाता श्रीरत्नऋषिजी महाराज का मुकाबला होते ही अमोलख ऋषिजी उनके साथ विचरने लगे, इन महा पुरुषोंने श्री अमोलख ऋषिजी को जैनमार्ग दीपाने लायक ज्ञान बहामनमें ज्ञानका अभ्यास कराया, सूत्रों का रहस्य समझाइ, जिस प्रसाद से अमोलक ऋषिजी ने गद्य पद्यमें अनेक ग्रन्थ बनाये, और बना रहे हैं, और अनेक स्वमति परमति को समझाये, औरसमझा रहे हैं. श्री अमोलख ऋषिजी सवंत १९५६ के फागुन में औसवालसंघेमीशाली के मोती ऋषिजी नामके शिष्य हुवेथे. सं१९६०का चतुरमास श्री अमोलख ऋषिजी घोड़नदी[पुणे]था (तब जैन तत्व प्रकाश नामे बड़ा ग्रन्थ सिर्फ २ महीनेमें लिखा था) उसवक्त तपस्वी जी श्री केवल ऋषिजी का चतुर्मास अहमदनगरथा. वो स्मे उनसे बाद समागम हुवा. तब तपस्वीजी कहने लगे मेरी वृद्ध अवस्था हुइहै, मुझे संयमका सहाय

देना यह तेराकृतव्य है. तव अमोलख ऋषिजी स्वशिष्य सहित श्री तपस्वी जी के साथ विचरने लगे. सं१९६१ का चतुर्मास श्री सिंघके अग्रह के वंबइ (हनुमान गली)में किया, यहां जैन स्थानक वासी रत्न चिन्ता मणी मित्रमंडलकी स्थापना हुइ. और इस मंडलकी तर्फसे महाराज श्रीअमोलख ऋषिजी की बनाइ हुइ "जैनामुल्य सुधा" नाम छोटासी पुस्तक प्रसिद्ध हुइ. यहां मोतीऋषिजी स्वर्गस्थ हुये. उस वक्तयहां के पन्नालालजी कीमती कार्यार्थ वंबइ गयेथे, वहां महाराजश्रीजीके दर्शन कर विनंती करी के दक्षिण हैद्राबाद में जैनीयों के घर तो वहूत हें, परन्तु मुनीराज का आगम बिलकुल नहीं है, जो आप पधारोगे तो वडा उपकार होगा. यह बात महाराज श्री को पसंद आइ. चतुर्मास बाद वंबइ से विहार कर. इगत पुरी पधारे. चतुर्मास किया, और यहां के श्रावक मूलचंदजी टाँटाया वगैरेने महाराज श्री की की बनाई 'धर्म तत्वसंग्रह' नाने ग्रन्थ की १५०० प्रतों छपवा के अमुल्य भेटदी वहां से विहार कर वेजापुर (औरंगाबाद) आये यहां के श्रावक भीखमचन्दजी संचेती ने "धर्म तत्व संग्रह" की गुजरातीमें १२०० प्रतों छपवाके अमुल्य भेंट दी. वहां से जालणे पधारे और आगे विहार क-

रने लगे तब सब श्रावकों ने मना किया की इधर आगे कोइ साधु गये नहीं है, आप पधारोगे तो बडी तकलीफ पावोगे. परन्तु श्री वीर परमात्मा के वीर मुनिवरों आगे के आगे बढतेही गये और क्षुधा तृषा दि अनेक अति कठिण परिसह सहन करते, अनेको को नवे भेयने आश्चर्य उपज्याते अपूर्व धर्मका सत्य स्वरूप बताते सं. १९६३ जेष्ट सुदी १२ शनिवारको चार कमान पावन करी. लाला नेतरामजी रामनारायणजीके दिये मकान में चतुर्मास किया. चौमासे में श्री सुखा ऋषिजी बीमार पडके फाल्गुन मास में स्वर्गस्थ हूवे. आगे उष्ण ऋतु और बीकट मार्गके सबब से श्रावको ने विहार नहीं करने दिया. दुसरे चतुर्मास से श्री केवल ऋषिजी महाराज उपरा उपरी बिमारीयों भोगवने से, और वृद्ध अवस्था के कारण से विहार न होता देख, श्रावकोंने स्थिर वास रहनेकी विनंती करी हमारे सुभग्योदय से महाराजजी श्री ठाणे २ सुख साता में विराजमान हैं. महाराज श्रीके सरल ज्ञमाने अनुसार चारों अनुयोग रूप सद्बोध श्रवण से यहां धार्मिक और व्यवहारिक अनेक सुधारे हुवे है और हो रहे हैं.

गुणानुरागी—सुमदेव सहाय ज्वालाप्रसाद.

खुश खबर.

१ "अघोद्धार कथागार."

इस ग्रंथ में बालब्रम्हचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजीने १८ पापके सेवन करनेसे और त्याग न कर नेसे क्या फल प्राप्त होता है जिसपर अनुबोधके साथ छत्तीस धर्म कथाओंकी रचना छंद बंध करी है. यह ग्रंथ दक्षिण हैद्राबादके लालाजी नेतरामजी रामना रायणजी जोहरी और घोडनदी (पुणे) के शेठ कुंद नमलजी घुमरमलजी बापना इनकी तरफसे छपना सुरू हूवा है. अमूल्य भेट कीजायगी.

२ "गुणस्थान रोहण शतद्वारी"

इस ग्रंथ में बाल ब्रम्हचारी मुनि श्री अमोलख ऋषिजी १४ गुण स्थान पर १०० द्वार की रचना रच रयेहै हैं. यह ग्रंथ मुमुक्षुओंको मोक्ष प्राप्त करने सोपान (पंक्तिये) मुजब सहायक होगा. इसे दक्षिण हैद्रबाद के लालाजी नेतरामजी रामनारायणजी और वाघली वाले रतनचंदजी दोलतरामजी चोरडे. जामडीवाले सेचारामजी उदारामजी मृथा, वाघलीवाले इंदरचंद जी वच्छराजजी रांके, वाघलीवाले रतनचंदजी रामचं दजी कांकरीया. बोरकुंडवाले खेमचंदजी हंसराज. जी बम्ब. इन सद्गृहस्थोंकी तरफसे प्रसिद्ध कर अमू ल्य दिया जायगा.

दोनो ग्रंथ तैयार हुवे अखबार में सुचना दीजायगी।

॥ द्वितियावृती की प्रस्तावना ॥

श्लोक–निर्जरा करणे वाह्याच्छ्रेष्ट माभ्यन्तरं तपः।
तत्राप्यकात पत्र त्वं ध्यानस्य मुनयोःजगुः॥१
अन्त मुहुर्तमात्रं यदेकाग्रचित्तता न्वितम्।
तध्यानं चिरकालीनां कर्मणां क्षय कारणम्॥२॥

जिस सुखकी इच्छा सर्व संसारी जीवात्मा करते हैं. जिस सुख के लिये वडे २ महात्मा महान पर्यास करते हैं, जिस सुखके लिये वडे २ ज्ञानीयो महा परिषद में गर्जाव कर देशना देते हैं. जिस सुख लिये वडे २ तपी जपी संयमी निरंतर उद्यमी हो रहे हैं, वो परमानन्द–अखंड सुख विन तप जप और खप की मेहनत किये एकस्थान वैठे सुख से प्राप्त करसके ए-सा सत्य-सीधा सर्व मान्य और प्रत्यक्ष फळ प्रद उ-पाय एक "ध्यान" ही है. क्योंकि जो परमानन्दकी प्राप्ति में व्याघात कर्ता अन्तराय कर्म है. उनका नास करने वाला तप है. सो तप वाह्य और आभ्यान्तर ऐसे दो भेद से होता है. जिसमें वाह्य तपसे आभ्यतर त-पमें कर्म दग्ध करनेकी शक्ति विषेश है, और अभ्यान्तर

तप के छः भेद हैं जिसमें से पञ्च मा जों ध्यान तप है उसकी शक्ति तो "खत्तिण सेठे जहा दंत वंक्के" अर्थात् सर्व राजा ओ मे जैसा चक्रवर्ति महाराज एक छत्र राज कर्ता होता है तैसे ही ध्यान तप श्रेष्ठ हे एसा महामुनिश्वरों का फरमान है. क्योंकि और तप तो बहुत काल करने व कालान्तर में फल के देने वाले होते हैं, सोभी जैसी ध्यानकी सहायता होगी वैसाही और उतनाही और यह "ध्यान" नामक तपतो फक्त एक अंतर्मुहुर्तमात्रही एकाग्र चित्त से किया अनन्तान्त काल के संचित कर्मों का क्षय कर परमानन्दी परम सुखी बनता है. उपरोक्त श्लोक का यह आशय है सो सत्य है. क्योंकि ध्यान नाम विचारका है विचार है सो मन से होता है, मन हैसो द्रव्य है, द्रव्य गुण और पर्याय कर संयुक्त होता है. जगत के अन्य द्रव्यों से मन द्रव्य अधिक शक्तिवंत होता है. यह बात वर्तमान है सायन्स विद्या कर सिद्ध बताइ जाती है.

इस विश्व में जो जो वस्तुओं उत्पन्न होतीहै उन सबका मूळ विचार ही है. अर्थात्. घर वस्त्र भूषण आदि वस्तुओं तथा रेल टेलीग्राम, टेलीफोन,

फोनोग्राफ व वायरलेश टलीग्राम वगैरे जो जो चम त्कारी वस्तुअें उत्पन्न हुइ व होवेगा. इन सबको जन्म दाता भूमि अवल विचारही है. इससे प्रत्यक्ष भास होता है कि विचार में नवे उत्पन्न करने की शक्ति है, वो केवल अलंकार रूप नहीं परन्तु वस्तू रूप, सो यह बात उपरोक्त विचार से सिद्ध होती है. और इसलिये जाना जाता है कि मन अनंत शक्ति-वंत है. विलंब इतनाही है कि उस अनंत बल के साथ अपनी एक्यता का साक्षत्कार नहो.

प्रथमिक सर्व विचार हवाइ किल्लोकी माफि क दिखते हैं, विचार शील मनुष्यों के कितनेक वि चारोंपर अल्पज्ञ हँसते हैं, और उस हँसने के सबब से विचारज्ञ कायरता धारन कर शिथिल बन जाते हैं, बस इसही सबब से इस वक्त के इस आर्य खंडके मनुष्यों हरेक कार्य में पश्चताप पड रहे हैं, और जि न मनुष्यों का कभी स्वप्नांतर में भी भरोसा नहींथा ऐसे अन्य खन्डके मनुष्यों आर्य खंड में समुत्पन्न हुइ विद्याकेइ प्रभाव से विचार उद्भवे और उनके साथ एक्यता कर उन्हे अजमाये तो आज यहां के बडे २ विद्वानों उनके कार्यो से चकित हो रहे हैं, वहवा क र रहे हैं. और उनके दासानुदास बन रहे हैं! देखी

२१ नित्य स्मरण की २००० प्रत यों ३५०० प्रत इगत पुरी से. और २२ धर्म तत्व संग्रह गुजराती अनुवादकी १२०० प्रतों यों सर्व ४१४५० पुस्तकों महाराज श्री जीके सद्बोध अमूल्य दी गइ है.

देखिये पाठकों? विद्वान मुनिवरों औ उदार परिणामी श्रावको जो जमानेके अनुसार अहनी प्रवर्ती करें तो अन्य उनके ज्ञानादि गुणोंका लाभ लेनेके कितने सद्भागी बन शक्ते हैं, यह अनुकरण सर्व मुनिवरों और श्रावको करके अपने इस परम पवित्र धर्म का पुनरोद्धार करेंगे. इस हेतु सेही यह बात यहां चेताइ है.

वीर संवत्सर २४३९, विक्रमार्क १९७० गुरी पड़वा-चन्द्र. | विशेषु किमधिकं, गुणानुरागीर, सुखदेव सहाय ज्वालाप्रशाद.

पहिले छपी हुइ पुस्तकों इस कारखानम के मौके पर सर्व खपगइ है, इसलिये नम्र सूचना की जाती है कि अब नवीन पुस्तके की आर्डगत आपके पास नेमें न आवे वहांतक पुस्तकों मंगाने की तकलीफ नहीं उठाना जी. ✿ ✿ ✿ ✿ ✿ ✿

सेक्रटरी,
ज्ञानवृद्धि खाता.

ध्यानकल्पतरु ग्रन्थ द्वीतियावृतस्य विषयानुक्रमणी.

संख्या	विषय	पृष्ठ	संख्या	विषय	पृष्ठ
१	मंगलाचरणम	१	२६	तृतीय पत्र-अज्ञान दोष	५०
२	भूमिका	२	२७	चतुर्थ पत्र आमरणांत दोष	५१
३	स्कंध और शाखा ...	७	२८	रौद्रध्यान के पुष्प और फल	५२
४	अशुभ ध्यान	८	२९	दोनो ध्यान समुच्चय. .	५५
	प्रथम शाखा-आर्त ध्यान	९	३०	उपशाखा-शुभध्यान ...	५६
	प्रथम प्रतिशाखा-आर्त ध्यान के भेद	१०	३१	प्रथम शाखा ध्यान मूल	५६
७	प्रथम पत्र-अनिष्ट संयोग	११	३२	पंचलब्धी और स्वरूप	५९
	द्वितिय पत्र-इष्ट वियोग	११	३३	द्वितीय उपशाखा-शुभ ध्यान विधी	७१
	तृतिय पत्र-रोगोदय...	१४	३४	प्रथम पत्र-क्षेत्र ...	७२
	चतुर्थ पत्र भोगेच्छा ...	१५	३५	द्वितीय पत्र-द्रव्य ...	७४
	द्वितिय प्रति शाखा-आर्त ध्यान के लक्षण ...	१७	३६	तृतीय पत्र-काल ...	७६
१२	प्रथम पत्र क्रंदनता...	१८	३७	चतुर्थ पत्र-भाव ...	७७
१२	द्वितिय पत्र-सोचनता...	१८	३८	तृतीय उपशाखा-शुभध्यान साधन	...८३
	तृतीय पत्र-तिप्पणता...	१८	३९	प्रथम पत्र-यम ...	८४
	चतुर्थ पत्र-विलपनता	१९	४०	द्वितीय पत्र-नियम ...	८५
	आर्त ध्यान के पुष्प और फल	२०	४१	तृतीय पत्र-आसन ...	८६
	द्वितीय शाखा-रौद्र ध्यान	२५	४२	चतुर्थ प्राणायाम ...	८८
८	प्रथम प्रतिशाखा-रौद्रध्यान के भेद...	२५	४३	पंचम पत्र-प्रत्याहार...	९१
१९	प्रथम पत्र-हिंसानुबंधी	२६	४४	षष्टम पत्र-धारणा	...९२
२०	द्वितिय पत्र-मृषानुबंधी	३२	४५	सप्तम पत्र-ध्यान ...	९३
२१	तृतीयपत्र-तस्करानुबन्धी	३७	४६	अष्टम् पत्र-समाधि...	९४
२२	चतुर्थ पत्र-संरक्षण...	४२	४७	शुभ ध्यानस्य फलम्...	९५
२३	द्वितीय प्रति शाखा-रौद्रध्यानी के लक्षण ...	...४६	४८	तृतीय शाखा-धर्म ध्यान	९६
			४९	प्रथम प्रति शाखा-धर्म ध्यान के पाये	...९७
२४	प्रथम पत्र-उद्घोषण...	४८	५०	प्रथम पत्र-आज्ञा विचय	९८
२५	द्वितीय पत्र-बहुल दोष	४९	५१	सूत्र...	

श्री जिनवेंद्रायनमः

ध्यानकल्पतरु

मङ्गलाचरणम्.

गाथा अणुत्तरं धम्म-मुईरइत्ता; अणुत्तरं झाणवरंझियाइं;
सु सुक्क सुक्कं अपगंड सुक्कं, सांखिंदु एगंतवदात सुक्कं॥१
अणुत्त रंगं परमं महेसी, असेस कम्मं स विसेह इत्ता॥
सिद्धिं गते साइ मणंत पत्ते, णाणेण सीलेण य दंसणेणं ॥२
सुयगडांगसुत्र अ० ६.

श्रमण भगवंत श्री महावीर-वर्धमानस्वामी प्रधान-श्रेष्ठ धर्मके प्रकाशक, सर्वोत्तम उज्वलसे अति उज्वल दोष-मल रहित ध्यानकों ध्याया. कैसा उज्वल ध्यान ध्याया? तो के यथा द्रष्टांत-जैसा अर्ज्जुन सुवर्ण उज्वल होता है, पाणी के फेण उज्वल होते हैं, शंख और चंद्रमाके किरण उज्वल होते हैं, ऐसा; वल्के इस सेभी अधिक उज्वल, सर्व ध्यानोमें श्रेष्ट, ऐसा शुक्ल ध्यान ध्याया. उस ध्यानके प्रसाद से महा ऋषीश्वर समस्त कर्मोका नाश-क्षय कर निर्मळे हुये, जिन से

अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र, अनंत वीर्य, यह अनंत चतुष्टयकों प्राप्त कर, जो आदि सहित और अंतरहित ऐसी सिद्धगति-मोक्षगति लोकके उपर अग्रभागमें है उसको प्राप्त करी. ऐसे श्रीमहावीर वर्धमानस्वामीजी को मेरा त्रिकरण विशुद्धि से त्रिकाल नमस्कार होवो!

॥ भूमिका. ॥

श्लो० ध्याता ध्यानं तथा ध्येयं, फलं चेति चतुष्टयम्
इति सूत्रसमासेन, सविकल्पं निगद्यते॥१

ज्ञानार्णव.

अर्थ—ध्याता कहिये ध्यान करनेवाला, ध्यान कहिये ध्यान अवस्था धारण कर स्थिर बैठना, ध्येय कहीये ध्यानका विषय भूत पदार्थ अर्थात किसी प्रकारका मनमें विचार करना और फल कहिये उस विचारका उस (ध्याता) को क्या फल मिलेगा: इन चारोंही वचनोंका यथा बुद्धि इस ग्रंथमें दर्शनेका प्रयत्न करता हूं सो पाठक गणो इन चित्तमें पढके अशुभसंवर, शुभस प्रवर्तकर इष्टार्थ सिद्ध करने समर्थ बनेंगे.

आराध्य चरणद्विज्ञानं [illegible] पापशासनम्॥
असद्ध्यानानि [illegible] ध्यानं मुक्तिप्रसाधकम्॥

[illegible]

अर्थात्-खण्ड विज्ञान उसे कहते हैं कि-जो क्षयोपशम रागादि सहित ज्ञानमें आसक्त रूप पापकी वासना कों तथा अन्यान्य मतावलम्बियोंके माने हुवे अर्त रोद्रादि जो असत्य ध्यान है उसकों छोडकर, मुक्तिके साधने वाले सत् ध्यान का आदर करना चाहिये कि जिससे इष्टितार्थ सिद्ध हो.

अहो भव्य गणो! अपन चर्म चक्षुसे या हृदय (ज्ञान) चक्षुसे इस विश्ववर्ती में वर्त्तते प्राणीयोंकि वार्त्तयों विचित्र प्रकार की प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा व परोक्ष प्रमाणद्वारा अवलोकन करते हैं, कोइ सुखी कोइ दुःखी, कोइ आनन्दी कोइ शोकी, कोइ हंसता कोइ रोता वगेरा. इन वर्त्तीयोंका आधार चित्त वृत्ति-विचारपरही-रहा हुवा भाष होता है, अर्थात् विश्ववर्त्तीके पदार्थ में भले बुरेकी कल्पना कर उसके संयोग वियोगसे लाभ हानी मान संकल्प विकल्प उत्पन्न होता है, वैसाहि आत्मा वनजाताहै, इस से निश्चय होता है कि-सुख दुःख का मुख्य हेतू विचार-ध्यानही है.

और विशेष इस में यह भाष होता है कि-सब प्राणीयोंको सुख-आनन्द प्रिय है, इसकी प्राप्तिके लिये ज्ञानी, मुमुक्षुओ, विषयी, पामर इत्यादि सर्व प्रकारके अधि-

कारी जन स्वकल्पित आनन्द प्राप्त करनेको अनेक विधी चेष्टा कर रहे हैं,* कोइ ज्ञान, कोइ योग, कोई भक्ति, कोइ धर्म. तो कोइ धन प्राप्ति, स्त्री काम संयोग पुत्रका प्यार इत्यादि अनेक वर्त्तीयों में मशगुल बने हुवे दृष्टि गत होते हैं. अखन्डानन्द प्राप्ति के वास्तेही आज तक अनेक शास्त्र की रचना हुइ है,अनेक कार्य-क्रिया अनुष्ठानकी योजना हुइ है, और प्रति दिन नवित २ सुधारे होतेही जाते हैं, ऐसी तरह सर्व देशोंमे सर्व काल में सर्व स्थिति में जोजो अनादि कालसे प्रवर्त्ती बनरही है सो आनन्द प्राप्त करने के लियेही; तोभी आजतक सर्व विश्ववासी प्राणियो अखंड पूर्णानन्दी नहीं बने ! ऐसा कोइ भी ग्राम देश दृष्टीगत नहीं होता है कि जहां अखन्डानन्द वर्तता हो. जहां देखें वहां शोक मोह दुःखकी थोडी बहुत प्रतिछांह का अनुभव हुवाही रहता है, जिसे देखो वो अखन्ड आनंदके लिये तडफडी रहाहै .इससे सुविदित होताहै

---

* पाठकगणों ! ज्ञान भक्ति योग धर्म यह आनन्द प्राप्ति का उपाय है परन्तु एकान्त यही पूर्ण नहीं. इसका खु-लासा आगे ग्रन्थावलोकनसे होगा, इस लिये यहां को-ई प्रकार विकल्प न कीजिये.

कि जिसकी प्राप्तिके लिये प्राणीयों प्रयास कर रहे हैं उसकी प्राप्ति का जो सच्चा उपाय है वो हाथ नहीं लगा. और जिस २ प्रयास में अल्पज्ञ व अज्ञ मनुष्य लगरहे हैं वो अखन्डानन्द प्राप्तिका सच्चा उपायभी नहीं है. और कपोल कल्पित उपायसे इष्टीतार्थ सिद्धीभी नही होता. जो होता तो वरोक्त उपाय करने वाले आज पर्यंत दुःखी नहीं रहते.

और ऐसाभी नहीं है कि अखंडानन्द प्राप्तिका उपाय कोइ दुनियामे हैही नहीं. यहतो सत्य समझिए कि जो वस्तु होती है उसके लियेही प्रयास किया जाता है. परन्तु सच्चा उपाय नहीं मिलनेसे वो कार्य जब सिद्ध नहीं होता है, तब अल्पज्ञ अज्ञानता धारन कर नास्तिक बन जाते हैं. सब कल्पनाओको साधनो को आकाश कुसुमकी प्राप्तिका उपाय जैसा निकमा जान छोडे बैठते हैं. और पुद्गलानन्द में मशुगुलबन "खिणमित्त सुखा बहुकाल दुखा" अर्थात्-क्षणेक कल्पित सुख भोगव अनन्त काल तक दुःख के भुक्ता बनजाते हैं. यह बात भी प्रत्यक्ष द्वारा सिद्ध हो रही है.

ऐसे पामर प्राणीयों की दिशाका अवलोकन कर सर्वज्ञ कि जिनोने जिन पर्याप्त कर अखन्डानन्द प्राप्त

कारी जन स्वकल्पित आनन्द प्राप्त करनेको अनेक विधी चेष्टा कर रहे हैं, * कोइ ज्ञान, कोइ योग, कोई भक्ति, कोइ धर्म. तो कोइ धन प्राप्ति, स्त्री काम संयोग पुत्रका प्यार इत्यादि अनेक वर्त्तीयों में मशगुल बने हुये दृष्टि गत होते हैं. अखन्डानन्द प्राप्ति के वास्तेही आज तक अनेक शास्त्र की रचना हुइ है,अनेक कार्य-क्रिया अनुष्टानकी योजना हुइ है, और प्रति दिन नविन २ सुधारे होनेही जाते हैं, ऐसी तरह सर्व देशमें सर्व काल में सर्व स्थिति में जोजो अनादि कालसे प्रवर्त्ती बनरही है सो आनन्द प्राप्त करने के लियेही; तोभी आजतक सर्व विश्ववासी प्राणीयो अखंड पूर्णा नन्दी नहीं बने ! ऐसा कोइ भी ग्राम देश दृष्टीगत नहीं होता है कि जहां अखन्डानन्द वर्तता हो. जहां देखें वहां शोक मोह दुःखकी थोडी बहुत प्रतिछांह का अनुभव हुवाही रहता है, जिसे देखो वो अखन्ड आनंदके लिये तडफही रहाहै .इससे सुविदित होताहै

---

* पाठकगणों ! ज्ञान भक्ती योग धर्म यह आनन्द प्राप्ति का उपाय है परन्तु एकान्त नहीं पूर्ण नहीं, इसका खु-लासा आगे ग्रन्थावलोकनमें होगा, इस लिये यहां को-ई प्रकार विकल्प न कीजीये.

कि-जिसकी प्राप्तिके लिये प्राणीयों प्रयास कर रहे हैं उसकी प्राप्ति का जो सच्चा उपाय है वो हाथ नहीं लगा. और जिस २ प्रयास में अल्पज्ञ व अज्ञ मनुष्य लगरहे हैं वो अखन्डानन्द प्राप्तिका सच्चा उपायभी नहीं है. और कपोल कल्पित उपायसे इष्टीतार्थ सिद्धीभी नहीं होता. जो होता तो वरोक्त उपाय करने वाले आज पर्यंत दुःखी नहीं रहते.

और ऐसाभी नहीं है कि अखंडानन्द प्राप्तिका उपाय कोइ दुनियामे हैही नहीं. यहतो सत्य समझिए कि जो वस्तु होती है उसके लियेही प्रयास किया जाता है. परन्तु सच्चा उपाय नहीं मिलनेसे वो कार्य जब सिद्ध नहीं होता है, तब अल्पज्ञ अज्ञानता धारन कर नास्तिक बन जाते हैं. तब कल्पनाओंको साधनो को आकाश कुसुमकी प्राप्तिका उपाय जैसा निकमा जान छोडे बैठते हैं. और पुद्गलानन्द में मश्गुलबन "खिणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा" अर्थात-क्षणेक कल्पित सुख भोगव अनन्त काल तक दुःख के भुक्ता बन जाते हैं. यह बात भी प्रत्यक्ष द्वारा सिद्ध हो रही है.

ऐसे पामर प्राणीयों की दिशाका अवलोकन कर सर्वज्ञ कि जिनोने जिस पयांस कर अखन्डानन्द प्राप्त

व विश्ववर्ती प्राणीयों की प्रवार्त्तिके अवलोकनसे निश्चय से भाष होताहै कि सुख दुःख का मुख्य हेतू ध्यान-विचार-मन की प्रवार्त्तिहीहै. अर्थात्—ध्याता ध्येय रूप बन जाता है. जिससे शुभाशुभ पवर्त्ती होती है और जिससेही सुख दुःख की प्राप्ति होती है.

वो ध्यान क्या पदार्थ है? कितने प्रकार का है? कैसे ध्याता ध्येय रूप बनता है? सुखी दुःखी होता है? कोन से ध्यान से अखन्डानन्द की प्राप्ति होती है ? जिसका खुलासे वार स्वरूप जानने का-अनुभावनेक और प्राप्त करनेका उपाव इस ध्यान कल्पतरुकी छांय में दत्त चित्तसे विश्रान्ती ले रमण करनेसे आपको अनुभव प्राप्त होसकेगा.

ॐ स्कन्ध. ॐ

ध्यान शब्दकी धातु "ध्यै" है, ध्यैका अर्थ-अंतः करण में विचार करना-सोचना ऐसा होता है. ध्यान के भेद शास्त्र में इस प्रकार किये हैं:—

शाखा

सूत्र—से किंतं झाणे,?झाणे! चउविहे पण्णते तंजहाः-

किया, उसका जिनके अतः करण में पूर्ण निश्चय हो गया, उस उपावको वीश्ववर्तीमें अखन्डानन्द प्राप्तिके इच्छक, उसके असत् उपाव के उद्यम में अत्यन्त पी डित होते जीवों को देख करूणा सिंधूका हृदय सद दित हुवा, और अनन्त दान लब्धी की जो शाक्ति आत्मामें प्रगट हुइथी उसका सद्व्यय कर सर्व जीवों को अखन्डानन्दी बनाने सब समक्ष ऐसी अनेक देशकी भषा मिश्रित अर्ध मागधी भाष में महा परिषदमें स द्बोध का प्रकाश किया. जिसे श्रवन मनन पूर्वक आ- राधन कर अन्तान्त जीवोंने अखडानन्द प्राप्त किया उसही प्रभावको आगे चालू रखने उन महात्मा सर्वज्ञ के शिष्य वर्योंने भविष्य काळके भव्यो पर परमोकार की बुद्धिसे शास्त्रोंकी रचना रची सो वर्तमान समयें में परमोपकार कर रहे हैं.

उन शास्त्रोंमें अखन्डानन्द प्राप्तिका सत् उपाय पृथक २ विविक्षित होनेसे व अर्ध मागधी भाषा में होने से वर्तमान कालके अल्पज्ञोको पुर्ण पणे लाभकी प्राप्ति होनेका अभाव जान इस वक्त अनेक देशकी प्रचालित भाषामें ग्रंथ रचागये हैं.

जिन प्राचीन व अर्वाचिन ग्रंथोंका अवलोकन से

व विश्ववर्ती प्राणीयों की प्रवर्त्तिके अवलोकनसे निश्चय से भाप होताहै कि सुख दुःख का मुख्य हेतु ध्यान-विचार-मन की प्रवर्त्तिहीहै. अर्थात्—ध्याता ध्येय रूप बन जाता है. जिससे शुभाशुभ पवर्त्ती होती है और जिससेही सुख दुःख की प्राप्ति होती है.

वो ध्यान क्या पदार्थ है? कितने प्रकार का है? कैसे ध्याता ध्येय रूप बनता है? सुखी दुःखी होता है? कोन से ध्यान से अखन्डानन्द की प्राप्ति होती है ? जिसका खुलासे वार स्वरूप जानने का-अनुभावेनक और प्राप्त करनेका उपाव इस ध्यान कल्पतरुकी छांय में दत्त चित्तसे विश्रान्ती ले रमण करनेसे आपको अनुभव प्राप्त होसकेगा.

स्कन्ध.

ध्यान शब्दकी धातु "ध्यै" है, ध्यैका अर्थ-अंतःकरण में विचार करना-सोचना ऐसा होता है. ध्यान के भेद शास्त्र में इस प्रकार किये हैं:—

शाखा

सूत्र-से किंत झाणे,?झाणे! चउविहे पण्णते तंजहा:-

अट्टे झाणे, रुद्दे झाणे, धम्मे झाणे, सुक्के झाणे,

उववाई सूत्र.

अर्थ–शिष्य सविनय प्रश्न करता है कि-गुरु महा राज! ध्यानके भेद कितने हैं?

गुरु–हे शिष्य! ध्यान के चार भेद भगवंतने फरमाये हैं, वैसेही मैं तेरेसे अनुक्रमें कहताहूं; १ आर्त ध्यान, २ रौद्र ध्यान, ३ धर्म ध्यान; और शुक्ल ध्यान. अंतःकरणमें विचार दो तरहका होता हैः–१ कभी अशुभ अर्थात् बुरा. और कभी शुभ अर्थात्अच्छा. अशुभ विचारकों अशुभ ध्यान, और शुभ विचारको या शुद्ध विचारको शुभ या शुद्ध ध्यान कहते हैं.

उपर कहे सूत्रमें अशुभ ध्यानके दो भेद किये हैं आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान. तैसे शुभ ध्यानकेभी दो भेद कियेहैं–धर्म ध्यान, और शुक्ल ध्यान, इन चारोंही का संविस्तार वर्णन आगे अलग २शाखाओंमें किया जायगा.

" अशुभ ध्यान "

ऊपर कहे चार ध्यानोंमेंसे, अव्वल अशुभ ध्यान, का वर्णन् करताहूं, क्योंकि मोक्षार्थी अशुभ ध्यानका

स्वरुप समजेंगे तब उससे बचकर शुभमें प्रवेश करनेको प्रयत्न वंत हो सकेंगे.

श्लोक—अज्ञात वस्तु तत्त्वस्य रागा द्युप हतात्मनः।
स्वा तन्त्र्य वृत्तिर्या जन्तो स्तद सद्ध्या न मुच्यते॥
ज्ञानार्णव

अर्थ-जिसने वस्तु का यथार्थ स्वरूप नहीं जाना, तथा जिसका आत्मा राग द्वेष मोह इत्यादि दुर्गुणों से पीडितहै ऐसे जीव की स्वाधीन प्रवृत्तिको अप्रसस्त अशुभ ध्यान कहा जाता है. यह ध्यान जीवों के स्व यमेव (विना उपदेश) होता है. क्योंकि यह अनादि वासनाहै.

इसके दो भेदोंमेंसे प्रथम आर्त ध्यान का स्वरूप यहां बताते हैं:—

प्रथम शाखा-"आर्तध्यान"

इस जगत निवासी सकर्मी जीवोंको शुभाशुभ कर्मोंके संयोगसे इष्ट (अच्छे) का संयोग (मिलाप) और अनिष्ट (बुरे) का वियोग (नाश) तथा अनिष्टका संयोग और इष्टका वियोग अनादिसे होताही आया है: उससे जो मनमें संकल्प विकल्प उत्पन्न होना है उसेही 'आर्त ध्यान' समझना. जिनेश्वर भगवानने जिसके मुख्य चार प्रकार कहेहैं.

अट्टे झाणे, रुद्दे झाणे, धम्मे झाणे, सुक्के झाणे,

उववई सूत्र.

अर्थ–शिष्य सविनय प्रश्न करता है कि-गुरु महा राज! ध्यानके भेद कितने हैं?

गुरु–हे शिष्य! ध्यान के चार भेद भगवंतने फरमाये हैं, वैसेही मैं तेरेसे अनुक्रमें कहताहूं; १ आर्त ध्यान, २ रौद्र ध्यान, ३ धर्म ध्यान; और शुक्ल ध्यान. अतःकरणमें विचार दो तरहका होता है:–१ कभी अ शुभ अर्थात् बुरा. और कभी शुभ अर्थातअच्छा. अ शुभ विचारको अशुभ ध्यान, और शुभ विचारको या शुद्ध विचारको शुभ या शुद्ध ध्यान कहते हैं.

उपर कहे सूत्रमें अशुभ ध्यानके दो भेद किये हैं आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान. तैसे शुभ ध्यानकेभी दो भेद कियेहैं–धर्म ध्यान, और शुक्ल ध्यान,इन चारोंही का सविस्तार वर्णन आगे अलग २शाखाओंमें किया जायगा.

" अशुभ ध्यान "

ऊपर कहे चार ध्यानोंमेंसे, अव्वल अशुभ ध्यान, का वर्णन् करताहूं, क्योंकि मोक्षार्थी अशुभ ध्यानका

स्वरुप समजेंगे तब उससे वचकर शुभमें प्रवेश करनेको प्रयत्न वंत हो सकेंगे.

श्लोक—अज्ञात वस्तु तत्त्वस्य रागा द्युप हतात्मनः।
स्वा तन्त्र्य वृत्तिर्या जन्तो स्तद सद्ध्या न मुच्यते॥
ज्ञानार्णव

अर्थ-जिसने वस्तु का यथार्थ स्वरूप नहीं जाना, तथा जिसका आत्मा राग द्वेष मोह इत्यादि दुर्गुणों से पीडितहै ऐसे जीव की स्वाधीन प्रवृत्तिको अप्रसस्त अशुभ ध्यान कहा जाता है. यह ध्यान जीवों के स्व यमेव (विना उपदेश) होता है. क्योंकि यह अनादि वासनाहै.

इसके दो भेदोंमेंसे प्रथम आर्त ध्यान का स्वरूप यहां बताते हैः—

प्रथम शाखा-"आर्तध्यान"

इस जगत निवासी सकर्मी जीवोंको शुभाशुभ कर्मोके संयोगसे इष्ट (अच्छे) का संयोग (मिलाप) और अनिष्ट (बुरे) का वियोग (नाश) तथा अनिष्टका संयोग और इष्टका वियोग अनादिसे होताही आया हैः उससे जो मनमें संकल्प विकल्प उत्पन्न होता है उसेही 'आर्त ध्यान' समझना. जिनेश्वर भगवानने जिसके मुख्य चार प्रकार कहेहैं.

प्रथम प्रतिशाखा-आर्त 'ध्यानके भेद'

अट्टे झाणे चउ विह पण्णंते तंजहाः—१ अमणुण संपओग संपउत्ते, तस्स विप्प ओगसंति समणा एगययावी भवात्ति. २ मणुण संप्पओग संपउत्ते, तस्स अवीप्पओग संति समणा गएया अभवंत्ति, ३ आयंक संपओग संपउत्ते, तस्सविप्पओग संत्ती समणे गएयावी भवत्ति. ४ परिझूसिया काम भोग संपउत्ते, तस्स अविप्पओग संति समणाएगया विभवत्ति.

उववाइ सूत्र.

अर्थ—आर्त ध्यान चार प्रकारसे भगवंतने फरमाया सो कहतेहैं:—१ अमन्योग्य (खराब) शब्दादिक का संयोग होनेसे विचार होवे कि इनका वियोग (नाश) कब होगा; इसकों अनिष्ट संयोग नामे आर्त ध्यान कहना. २ मन्योग्य (अच्छे) शब्दादिका संयोग (प्राप्ति) होनेसे विचार होवे कि- इनका वियोग कदापि न होवो; इसे इष्ट संयोग आर्त ध्यान कहना. ३ ज्वर, कुष्टादि अनेक प्रकारके रोगोंकी प्राप्ति होनेसे विचार होवे कि- इनका शीघ्र नाश होवो. इसे रोगोदय आर्त ध्यान कहना. ४ इच्छित काम भोग की प्राप्ति होनेसे विचार होवे कि-इनका वियोग कदापि न होवो. इसे

भोगीच्छा आर्त ध्यान कहना.

प्रथम पत्र-"अनिष्ट संयोग"

१ " अनिष्ट संयोग नामे आर्त ध्यान," सो जीवने अपने शरीरको, स्वजन स्नेहीआदि कुटुम्ब को, सुवर्णादि धनको, गोधुमादि (गेहुंआदि) धान्य (अनाज) गवादि (गोआदि) पशु, और घरादिको अपने सुख दाता मानालिये हैं. इनके नाश करनें वाले-सिंह-सर्प-बिच्छू-खटमल-ज्युकादि जानवर. शत्रू चोर-नृपादि मनुष्य. नदी-समुद्रादि जलस्थान. अग्नी, वच्छनाग-अफीमादि विप. तीर-तरवारादि शस्त्र. गिरिकंदरादि मृतिकास्थान; तथा भूतादि व्यंतर देव. इत्यादि भयंकर वस्तुके नाम श्रवणकर, स्वरूप अवलोकन (देख) कर, या स्मरण होनेसे, तथा प्राप्त होनेसे मनको संकल्प विकल्प (घबराट) होवे, तब इनके वियोगकी इच्छा करे कि, ये मेरा जीव लेने क्यों मेरे पीछे लगे हैं; मुझे क्यों सतारहेहैं. हे भगवान ! इनका शिघ्र नाश होवे तो बहुतही अच्छा. ऐसा चितवन करे उसे तत्त्वज्ञ पुरुषोंने आर्त ध्यानका प्रथम भेद कहाहै.

द्वितीय पत्र-"इष्ट संयोग"

२ "इष्ट संयोग नामे आर्त ध्यान " सो.

श्लोक– राज्योप भोग शयना सन वाहनेषु;
स्त्रीगंध माल्य वर रत्न विभूषणेषु;
अत्याभिलाप मतिमात्र मुपैति मोहाद्,
ध्यानं तदार्त्तमिति तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः

सागार धर्मामृत.

इष्टकारी, प्रियकारी, राज्येश्वर्यता, चक्रवर्ति, वलदेव, मांडलिक राज्य, तथा सामान्य राज्यकी ऋद्धी. भोग भूमि (जुगलिया) के अखंड सौभागय सुख, मंत्रीश्वर (प्रधान) श्रेष्ट सेनापतियोंके विलास, नव यौवना (मनुष्य देव संबंधी) स्त्रीयोंके संग काम भोगकी, पर्यंकादि (पलंगादि) सय्या, अश्व, गज, रथादि वाहनो (सवारी) की. चुवा, चंदन, पुष्प, अत्तरादि सुर्भीगंध पदार्थोंके सेवनकी, रत्न रजत(चांदी) सुवर्णादिके अनेक प्रकारकेभूषण-दागीने. व रेशमी,जरी जर तारके वस्त्रोंसे शरीरको अलंकृत-सुशोभित कर, मनोहर रूप बनानेकी. इत्यादि तरह२ के काम भोगों भोगवने की जो मोह कर्मके उदयसे अभीलाषा होती है, तथा उपरोक्त पदार्थोंकी प्राप्ति हुइ है उसका उपभोग लेते जोअंतःकरणमें सुख–अल्हाद उत्पन्न होता है, कि मेंकैसे इच्छित सुखका भुक्ता हुं. या उनकी वारम्वार अनुमोदन करनेसे, अहा ! वगेरे स्वभाविक

उद्गार निकलते अंतःकरणमें आनंद का अनुभव करते जो विचार होताहै, उसे तत्वज्ञोंने आर्त ध्यानका दुसरा प्रकार कहाहै.

॥ पाठांतर ॥ कित्तनेक आर्त ध्यानका दुसरा प्रकार "इष्ट वियोग" कहतेहैं, अर्थात्—कालज्ञानादि ग्रंथमें बतलाये हुये स्वप्नादि लक्षणोंसे, या ज्योतिषादि विद्याके प्रभावसे, शरीरका वियोग स्वल्प [थोडे] का-लमे होता जाण, विचार उत्पन्न होय कि—हायरे! अब मैं यह सुंदर शरीर, प्यारे कुटुंब स्नेहीयों, और क-ष्टसे उपार्जन की हुइ लक्ष्मीका त्याग कर चले जाऊं-गा! तथा अपने सहाय्यक स्वजन मित्रोंके वियोग से मूर्च्छित हो गिर पडे, विलापात, आत्मप्रहार[1] या मृत्युका चिंतवन करे; गृह [घर] संपत्तिका किसीने हरण किया, अग्नी से जल [बल] गया, पाणीमें व-हगया—या डूब गया, पृथवी गत निधान [धन] विद्रुप[*] होके निकला. राजा पंचोंने हरण किया. व्यो-पारादिमें टोटा पडगया. या नामूनके लिये मदमें छकाहुवा लग्नादि कार्यमें अधिक व्यय करनेसे, अश-क्तता दारिद्रतादि दुःख प्राप्त होनेसे पश्चाताप करे कि

[1]सिर छातीआदी कूटना. * गडा हुवा धन कोयले पाणी वगैरे ऋद्धी आता है.

श्लोक– राज्योप भोग शयना सन वाहनेषु;
स्त्रीगंध माल्य वर रत्न विभूषणेषु;
अत्याभिलाष मतिमाल सुपेति मोहाद्,
ध्यानं तदार्त्तमिति तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः

सागार धर्मामृत

इष्टकारी, प्रियकारी, राज्येश्वर्यता, चक्रवर्ति, बलदेव, मांडलिक राज्य, तथा सामान्य राज्यकी ऋद्धी. भोग भूमि (जुगलिया) के अखंड सौभाग्य सुख, मंत्रीश्वर (प्रधान) श्रेष्ठ सेनापतियोंके विलास, नव योवना (मनुष्य देव संबंधी) स्त्रीयोंके संग काम भोगकी, पर्यंकादि (पलंगादि) सय्या, अश्व, गज, रथादि वाहनो (सवारी) की. चुवा, चंदन, पुष्प, अत्तरादि सुर्भीगंध पदार्थोंके सेवनकी, रत्न रजत(चांदी) सुवर्णादिके अनेक प्रकारेकभूषण-दागीने. व रेशमी,जरी जरतारके वस्त्रोंसे शरीरको अलंकृत-सुशोभित कर, मनोहर रूप बनानेकी. इत्यादि तरह२ के काम भोगों भोगवने की जो मोह कर्मके उदयसे अभीलाषा होती है, तथा उपरोक्त पदार्थोंकी प्राप्ति हुइ है उसका उपभोग लेने जोअंतःकरणमें सुख–अल्हाद उत्पन्न होता है, कि मैंकेम इच्छित सुखका भुक्ता हूं. या उनकी वारम्वार अनुमोदन करनेसे, अहा! वगैरे स्वभाविक

उद्गार निकलते अंतःकरणमें आनंद का अनुभव करते जो विचार होताहै, उसे तत्वज्ञोंने आर्त ध्यानका दुसरा प्रकार कहाहै.

॥ पाठांतर ॥ कितनेक आर्त ध्यानका दुसरा प्रकार "इष्ट वियोग" कहतेहैं, अर्थात्—कालज्ञानादि ग्रंथमें बतलाये हुये स्वरादि लक्षणोंसे, या जोतिषादि विद्याके प्रभावसे, शरीरका वियोग स्वल्प [थोडे] का. लमे होता जाण, विचार उत्पन्न होय कि—हायरे ! अब में यह सुंदर शरीर, प्यारे कुटुंब स्नेहीयों, और कष्टसे उपार्जन की हुइ लक्ष्मीका त्याग कर चले जाउंगा ! तथा अपने सहाय्यक स्वजन मित्रोंके वियोग से मूर्च्छित हो गिर पडे, विलापात, आत्मप्रहार[1] या मृत्युका चिंतवन करे; गृह [घर] संपत्तिका किसीने हरण किया, अग्नी से जल [बल] गया, पाणीमें बहगया—या डूब गया, पृथवी गत निधान [धन] विद्रुप[*] होके निकला. राजा पंचोंनें हरण किया. व्योपारादिमें टोटा पडगया. या नामूनके लिये मदमें छकाहुवा लग्नादि कार्यमें अधिक व्यय करनेंसे, अशक्तता दारिद्रतादि दुःख प्राप्त होनेसे पश्चाताप करे कि

[1]सिर छातीआदी कूटना. * गडा हुवा धन कोयले पाणी वगैरे द्रष्टी आता है.

हाय ! हाय !! अब क्या करूं ? वगैरे. इत्यादि अंतः करणका विचारभी दुसरा आर्त ध्यान है, और इन्द्रियोंको पोषणे अनेक वाजिंत्र वाराङ्गणा [नाटकणी][§] पुष्प वाटिका[‡] अत्तर,-अबीरादि, षट्रस भोजन, वस्त्र भूषण, सयनाशन, वगैरे' विनाश हुये पदार्थोंका संयोग मिलाने अनेक पापारंभ कार्यका चिंतवन करे, सोभी आर्त ध्यान.

तृतीय पत्र-"रोगोदय"

३ "रोगोदय आर्त ध्यान सो"-(१)सब जीव आरोग्यतादि-सुखके इच्छक हैं. परन्तु अशुभवेदनिय कर्मोंदयसे जो जो रोग-असाताका उदय होताहै,उसे भोगवे विन छुटका नहीं. श्रीउत्तराध्येनजी सुत्रमें फरमायहैं कि "कडाण कम्मण न मोक्ख अत्थी"अर्थात् कृत्त कर्मोंका फल भुक्ते विनछुटका नहीं.● मनुष्य के शरीरपर साडे तीन करोड रोम गिने जाते हैं; और एकेक रोम (रुम-वाल) के स्थानमें पोंणे दो

§ नाचनेवाली. ‡ बगीची.

● कृतकर्म क्षयो नास्ति, कल्प कोटी शतैरपि;
अवश्य मेव भोक्तव्यं, कृतकर्म शुभाशुभम्.

४३२०००००० इतने वर्षोंका एक कल्प किया जाता है. ऐसे क्रोडों कल्पमेंही किये हुये कर्मोंका फल भोगवे विन छुटका नहीं होता है ! !

रोग कहते हैं: तो विचारीये! यह शरीर किले रोगोंका घर है! जहांतक साता वेदनीय कर्मका जोर है, वहांतक सब रोग दबे [ढके] हुये हैं. और पापोदय होते, कुष्ट [कोढ], भगंदर, जलंदर, अतिसार, श्वास, खास ज्वरादि, अनेक उदरविकार रुधिरविकारादि से भयंकर: रोग उत्पन्न हो पीडा [दुःख] देतेहैं; तब चित्त आकुल व्याकुल हो अनेक प्रकारके संकल्प विकल्प उत्पन्न होतेहैं. सो तीसरा आर्त ध्यान(२) और, उन रोगोंका निवारण करने,अनेक औषधोपचारके लिये: अनंत काय एकेंद्रीयसे लगा पंचेंद्रिय तक जीवों का, अनेक तरह आरंभ, समारंभ, छेदन भेदन, पचन पाचनादि, क्रिया करनेका अंतःकरणमें विचार होवे; औषधसे उनका नाश , रन चटपटी लगे: उनकी हानी वृद्धीसे हर्ष शोक होय, हेप्रभु!स्वमन्तरमें भी ऐसा दुःख मत होवो. इत्यादि अभिलाषा होवे सोभी तीसराआर्त ध्यान

चतुर्थ पत्र–"भोगेच्छा"

४ "भोगेच्छा आर्तध्यान" सो – *पांच इन्द्रिय सम्बंधी काम भोग-भोगवणे की इच्छा होय, अर्थात्-अ-

*पांच इंद्रियोंमें कान और आंख यह दो इंद्रियकामी हैं अर्थात् शब्द सुनना और रूप देखना यह दो काम देती है. और.घ्राण. रस. स्पर्श ये तीन भोगी हैं अर्थात्. गंध. स्वाद. और स्पर्शादिका उपभोग लेतीहैं.

चर्णेद्री [कान] से, राग रागणी, कीन्नरीयोंके गायन, और वाजिंत्रोका मंज्जुल मनोहर राग सुननेमें, चक्षुरेंद्री आँख सेनृत्य नाच पोडश शृंगारसे विभूषित स्त्री पुरुष, बगीचे, आतशबाजी(दारू)के ख्याल, महल मंडपोंकी सजाइ, रोशिनी वगैरेकों देखनेंमें, घ्राणेंद्रिय(नाकसे) अतर पुष्पादि सुगंधमें, रसेंद्री(जिव्हा)सें, पट रस भोजन, अभक्ष भक्षण में. और शयनासन, वस्त्र भूषण, स्त्रीआदिके विलास भोगमें, आनंद मानना, इनका संयोग सदा ऐसाही बनारहो. तथा मैं वडा भाग्यशाली हुं, के मुझे इच्छित सुखमय सर्व सामग्रीप्राप्त हुइहै, वगैरे खुशी माननी' सो भोगेच्छा आर्त ध्यान. २ और भोगांतराय कर्मोदयसे, इच्छित सुख दाता सुसामग्रीयोंकी प्राप्ति नहीं हुइ, अन्य राज एश्वर्य, या इन्द्रादिकको रुद्धि सुखका भोग लेते देख, तथा शास्त्र ग्रन्थ द्वारा श्रवण कर, आपकें प्राप्त होने की अंतःकरणमें अभिलाषा करे कि हे प्रभु! एकार्ध्द राज्य मुझे मिल जाय, या कोइ देव मेरे स्वाधीन वश होजाय, तो मे भी एसी मोज म जा भुक्त के मेरा जन्म सफल करूं, जहां तक ऐसे सुख मुझे न मिलें, वहां तक मैं अधन्य हूं. अपुण्यहूं वगैरे विचार करे. (३) और तप, संयम, प्रत्याख्यांनें (पच्चख्खाणा) दि करणी कर. (नियाणा) निश्चयात्मक

चाह] [1] करे, की मेरी करनी के फलसे मुझे राज्य और इन्द्रादिक के वैभव (सुख) की प्राप्ति होवो (४) और अपनी (करणीके प्रभावसे आ. शिर्वाद दे.) अन्य स्वजन मित्रादि को धनेश्वरी सुखी करनेकी अभिलाषा करे, (५) और अपने स्वजन मित्र या पडोसी को सुखी देख आपके मनमें झूरणा करे. कि सबके बीच मेंही एक दरिद्री कैसे रहगया? वगैरे इत्यादि विचार अंतः करण में प्रवृते सो आर्त ध्यनका चौथा प्रकार जानना.

द्वितिय प्रतिशाखा-आर्तध्यानकेलक्षण

अट्ट स्सणं झाणस्स चत्तारि लख्खणा पण्णता तंजहाः— १ कंदणया, २ सोयणया, ३ तिप्पणया, ४ विलवणया.

उववाइ सूत्र.

अस्यार्थः—"आर्त-ध्यानीके चार लक्षण" सो १ आक्रंद—रुदन करे. २ शोक (चिन्ता) करे. ३ आ

---

[1] दशा श्रुत्स्कंध सूत्रमें, नियाणे दो प्रकारके फरमाये हैं:- १ भवप्रत्येक सो—संपूर्ण भवतक चले ऐसा निदान करे, जैसे नारायण वासुदेव पदके नियाणेंसे होते हैं, उनको अन-प्रत्याख्यान संजम न होवे. और २ वस्तु प्रतेक सो किसी वस्तुका प्राप्तीका निदान करे, जैसे द्रोपदीजी, उन्हे वस्तु न मिले वहां तक सम्यक्त्व प्राप्त न होवे.

वर्णेंद्री [कान] से, राग रागणी, कीन्नरीयोंके गायन, और वाजिंत्रोंका मंज्जुल मनोहर राग सुननेमें, चक्षुरेंद्री आँख सेनृत्य नाच षोडश शृंगारसे विभूषित स्त्री पुरुष, बगीचे, आतशबाजी(दारू)के ख्याल, महल मंडपोंकी सजाइ, रोशिनी वगैरेकों देखनेमें, घ्राणेंद्रिय(नाकसे) अतर पुष्पादि सुगंधमें, रसेंद्री(जिव्हा)सें, षट रस भोजन, अभक्ष भक्षण में. और शयनासन, वस्त्र भूषण, स्त्रीआदिके विलास भोगमें, आनंद मानना, इनका संयोग सदा ऐसाही बनारहो. तथा में बडा भाग्यशाली हुं, के मुझे इच्छित सुखमय सर्व सामग्रीप्राप्त हुइहे, वगैरे खुशी माननी" सो भोगेच्छा आर्त ध्यान. २ और भोगांतराय कर्मो दयसे, इच्छित सुख दाता सुसामग्रीयोंकी प्राप्ति नहीं हुइ, अन्य राज एश्वर्य, या इन्द्रादिकको ऋद्धि सुखका भोग लेते देख, तथा शास्त्र ग्रन्थ द्वारा श्रवण कर, आपकें प्राप्त होने की अंतःकरणमे अभिलाषा करे कि हे प्रभु! एकाधर्घ राज्य मुझे मिल जाय, या कोइ देव मेरे स्वाधीन वश होजाय, तो मे भी एसी मोज म जा भुक्त केमेरा जन्म सफल करूं, जहां तक ऐसे सुख मुझे न मिलें, वहां तक में अधन्य हूं. अपुण्यहूं वगैरे विचार करे. (३) और तप, संयम, प्रत्याख्यानि (पच्चख्खाणा) दि करणी रूप. (नियाणा) निश्चयात्मक

चाह] [1] करे, की मेरी करनी के फलसे मुझे राज्य और इन्द्रादिक के वैभव (सुख) की प्राप्ति होवो (४) और अपनी (करणीके प्रभावसे आ. शिर्वाद दे,) अन्य स्वजन मित्रादि कों धनेश्वरी सुखी करनेकी अभिलाषा करे, (५) और अपने स्वजन मित्र या पडोसी कों सुखी देख आपके मनमें झूरणा करे, कि सबके बीच मेंही एक दरिद्री कैसे रहगया? वगैरे इत्यादि विचार अंतः करण में प्रवृते सो आर्त ध्यनका चौथा प्रकार जानना.

द्वितिय प्रतिशाखा-आर्तध्यानकेलक्षण

अट्ट स्सणं झाणस्स चत्तारि लख्खणा पण्णता तंजहाः—
१ कंदणया, २ सोयणया, ३ तिप्पणया, ४ विलवणया.

उववाइ सूत्र.

अस्यार्थः—"आर्त-ध्यानीके चार लक्षण" सो १ आकंद—रुदन करे. २ शोक (चिन्ता) करे. ३ आ

---

[1] दशा श्रुत्स्कंध सूत्रमें, नियाणे दो प्रकारके फरमाये हैं:- १ भवप्रत्येक सो—संपूर्ण भवतक चले ऐसा निदान करे. जैसे नारायण वासुदेव पदके नियाणेसे होते हैं, उनको व्रत-प्रत्याख्यान संजम न होवे. और २ वस्तु प्रतेक सो किसी वस्तुका प्राप्तीका निदान करे, जैसे द्रोपदीजी, उन्हे वस्तु न मिले वहां तक सम्यक्त्व प्राप्त न होवे.

खोंसे अश्रू डाले. ४ विलापात करे.

आर्त ध्यान ध्याता कों बाह्य चिन्होंसे पहिचान-नेके लिये भगवाननें सूत्रसें ४ लक्षण फरमाये हें १-सो अनिष्टका संयोग. २ इष्टका वियोग, ३ रोगादि दुःखकी प्राप्ति, और ४ भोगादि सुखकी अप्राप्ति; यह चार प्रकारके कारण निपजनेसे, सकर्मी जीवों कों कर्मोकी प्रबलता से स्वभाविकही चार काम होते हें.

प्रथम पत्र-"कंदणया"

१ कंदणया=आक्रंद रुदन करे, कि हायरे मेरे ! सुसंयोगका नाश हो ऐसे कु संयोगकी प्राप्ति क्यों होती है ? हा देव ! हा प्रभू ! ! इत्यादि विचार उद्भवनेसे अरडाट शब्दसे रुदन करे.

द्वितीय पत्र-"सोयणया"

२ सोयणया-सोच चिन्त करे, कपालपे हाथ धरे, नीची द्रष्टीकर सुन्नमुन्न हो बैठे, पृथवी खने (खोदे) तृण तोडे, बावला जैसा बने, तथा मूर्छीतहो पडारहे

तृतीय पत्र-"तिप्पणया"

३ तिप्पणया-*आँखोंसे अश्रुपात करे, बात२ में

* श्लेष्मा श्रुबांध वैमुक्तं, प्रेतोभुंक्त यतोऽवशः ॥

उस वस्तुका स्मरण होतेही रो देवे ऊंडे निश्वास डाले.

चतुर्थ पत्र-"विलवणया"

४ विलवणया—विलापात करे. अंग पछाडे- हृदय-पे प्रहार करे; बाल तोडे हाय ओय जुलूम हुवा, गजब हुवा. बडा जबर अनर्थ हुवा, वगैरे भयंकर शब्दोच्चारण करे, और क्लेश टंटे झगडे करे, तथा दीन दयामणे शब्दोच्चारण करे. वगैरे सब आर्त ध्यानी-के लक्षण जानना. और भी आर्त ध्यानी के लक्षणः

शङ्का शोकभय प्रमाद कलह चिन्ता भ्रमोभ्रान्तयः
उन्मादो विषयोत्सुक त्वम सकृन्निद्राङ्ग जाड्यश्रमः ॥
मूर्च्छा दीभि शरीरिणाम विरतं लिङ्गानि बाह्य न्यल-
मार्ता धिष्टन चेतसां श्रुत धरै व्यवर्णितानि स्फुटम् ॥

ज्ञानार्णव.

अर्थ—प्रथमतो हर बातों में शंका[संदेह]होताहै. फीर शोक, भय, प्रमाद, असावधानी, क्लेश, चित्तभ्रम भ्रान्ती, विषय सेवन की उत्कंठा. निरंतर निद्रागमन, अंगमें जडता, शिथिलता, चित्तमें खेद, वस्तु में मूर्च्छा, इ

अतः न रोदितव्यं हि. क्रियाः कार्याः स्वशक्तिभिः

मरने वालेके पीछे उनके स्वजन केही रुदन करके अश्रु और श्लेषाम डालते हैं. उने वो मरने वाले खाते हैं. ऐसा जिनादश ग्रंथमें कहा है.

त्यादिचिन्ह आर्तध्यानी के प्रगट होते हैं,ऐसा शास्त्रके पार गामी विद्वानोंका फरमान है.

आर्तध्यानके"-पुष्प और फल"

आर्त ध्यानीकों अप्राप्त-वस्तुकों प्राप्त करने की अत्यंत उत्कंठा (आशा वांच्छा) रहतिहै. अहोनिश उधरही लक्ष लगा रहता है,जिससे अन्य कामका अनेक तरहसे बीगाडा होताहै, हरकत पडतीहै. धर्म करणि संयम तपादि कर के भि *कुंडरिक की तरह यथा तथ्य लाभ प्राप्त करसक्ते नहीं हैं.

---

*जबू द्वीपके पुर्व महाविदेहकी, पुष्कलावती विजयकी, पुंडरीकणी राज्यधानीके, पद्मनाभ राजाके. कुंडरिक कुँवरने दिक्षा धारण करी. पुंडरीक कुंवरको राज प्राप्त हुवा, भाइको राज्य सुख भोगवने देखे कुंडरीक का मन ललचाया. और गुरुका संग छोड मेहलके पीछेकी अशोक वाडीमें गुप्त आके बैठे.मालीसे खबर मिलतेही पुंडरीक राजा तुर्त भाइके दर्शन करने आये,और मुनिका चित्त उदास देख पुछनेसे उनने राज वैभवकी परशंसा करी मुनिका मन चलीत देख, राजा अपने वस्त्र भूषण उतार मुनिकों दिये और मुनिका उतारा हुवा वेष राजा धारण कर गुरुजीके दर्शन करने चले, तीन दीन उपवाससें गुरुजीको भेट,लुखम, सुखम शुद्ध अहार भोगवनेसे अत्यंत पीडा [दुःख]हुवा और आयुष्यपुर्ण कर सर्वार्थ

तो भी इच्छा-तृष्णा तृप्त नहीं होती है. भर्तृहरी ने कहाहै कि—"तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा" अर्थात् हम जीर्ण [वृद्ध] होगये, परंतु तृष्णा-वांच्छा जीर्ण न हुइ. ! क्यों कि इस श्रष्टी में एकेक से अधिक २ पदार्थ पडे हैं, वो सब एकही वक्तमें तो प्राप्त होही नहीं सक्ते हैं. प्राप्त हुये विन तृष्णावंतकी तृष्णा भी शांत नहीं होतीहै: और तृष्णा शांत हुये विन दुःख नहीं मिटना है. इस विचार से निश्चय होता हैं कि-आर्त ध्यान सदा एकांत दुःखही का कारण है. जैसा यह इस भवमें दुःख दाता है; इससेभी अधिक परभव में दुःखप्रद समजीये. क्योंकि जो प्राप्त वस्तुपे अत्यंत लुब्धता रखता है. जिससे उसके वज्र (कठिण-चीकणे) कर्म वंधतेहैं. वो कर्म फिर दुर्गतियों में ऐसे दुःख दाता होयेगें कि-रोते २ भी नहीं छूटेंगे. ऐसा विचार सम्यग दर्शीश्रावक साधु इस आर्तध्यानका त्याग कर सुखी होनेका उपाय करें.

यह आर्त ध्यान सकर्मि जीवोंके साथ अनादि कालसे लगा है, यह विना संस्कार स्वभाव सेही उत्पन्न होता है. यह प्रथम क्षणमें रमणिक है तथापि अंत क्षणमें अपथ्य अहार जैसा दुःख प्रद होताहै. इसके चार पाये तो पांचवे गुणस्थान पर्यान्त होते हैं. और निदान विन तीन पाये छट्टे गुणस्थान

राय कर्मोदयसें, प्राप्त हुये पदार्थोंका भी भोग नहीं लेसक्ता है; अन्यके भोग सुख देख झुरना पडता है. आर्त ध्यान ऐसी पक्की मोहब्बत करता है कि भवांतरोंकी श्रेणियों (भव-भ्रमण) में सातही बना रहता है, प्रीति नहीं तोडता है,

[२] और आर्त ध्यानि प्राप्त हुवे भोग सुखपें अत्यंत लुब्ध (गृधी) होता है. [देवादिक के सुख अनंत वक्त भुक्त के भी ऐसा समजता है] जाणे ऐसी वस्तु मुझे कहिंभी मिलीही नहीं थी, ऐसा जाण, उसको क्षणमात्रभी अलग नहीं करता है. ऐसी अत्यंत असक्तताके योगसे, इस भवमे शूल सुजाक गरमी चित्तभ्रमादि अनेक रोगोंसे पिडित हो, औषधि पथ्यादिमें संलग्न हो, प्राप्त हुये पदार्थ भोगव नहीं सक्ता है. घरमें रही हुइ सामग्रीयोंको देख २ झुरताही रहता है. इस रोगसे कब छुटूं और इनका भोग लेवूं ! !

(३)औरभी आर्तध्यानीको जो वस्तु प्राप्त हुइ है उससे दूसरी वस्तु अधिक श्रवण कर, या देख कर उसे प्राप्त करनेकी अभिलाषा होती है; यों उत्तरोत्तर वस्तुओं भोगवनेकी अभीलाषही अभीलाषा में उसका जन्म पूर्ण हो जाता है; वृद्धावस्था प्राप्त हो जाती है,

तो भी इच्छा-तृष्णा तृप्त नहीं होती है. भृर्तृही ने कहाहै कि-"तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा" अर्थात् हम जीर्ण [वृद्द] होगये, परंतु तृष्णा-वांच्छा जीर्ण न हुइ. ! क्यों कि इस श्रष्टी में एकक से अधिक २ पदार्थ पडे हैं; वो सब एकही वक्तमें तो प्राप्त होही नहीं सक्ते हैं. प्राप्त हुये विन तृष्णावंतकी तृष्णा भी शांत नहीं होतीहै: और तृष्णा शांत हुये विन दुःख नहीं मिटता है. इस विचार से निश्चय होता है कि-आर्त ध्यान सदा एकांत दुःखही का कारण है. जैसा यह इस भवमें दुःख दाता है; इससेभी अधिक परभव में दुःखप्रद समजीये. क्योंकि जो प्राप्त वस्तुपे अत्यंत लुब्धता रखता है. जिससे उसके वज्र (कठिण-चीकणें) कर्म बंधतेहैं. वो कर्म फिर दुर्गतियों में ऐसे दुःख दाता होयेगें कि-रोते २ भी नहीं छूटेंगे. ऐसा विचार सम्यग दर्शीश्रावक साधु इस आर्तध्यानका त्याग कर सुखी होनेका उपाय करें.

यह आर्त ध्यान सकर्मि जीवोंके साथ अनादि कालसे लगा है, यह विना संस्कार स्वभाव सेही उत्पन्न होता है. यह प्रथम क्षणमें रमणिक है तथापि अंत क्षणमे अपथ्य अहार जैसा दुःख प्रद होता है. इसके चार पाये तो पांचवे गुणस्थान पर्यान्त होते है. और निदान विन तीन पाये छट्टे गुणस्थान

तक होते हैं. इस ध्यान वाले के कृष्ण, नील, कपोत यह तीनही अशुभ लेशा रहती है,इस ध्यानमें मरने वालेकी विषेश कर तीर्यंच गतीही होती है. यह ध्यान 'हेय' अर्थात् छोडने योग्य है.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके
सम्प्रदाके बाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलक
ऋषिजी रचित ध्यानकल्पतरु ग्रन्थ
की प्रथमशाखा आर्तध्यान नाम
समाप्तः

द्वितीय शाखा- "रौद्रध्यान"

श्लोक – रुद्र क्रूराशयः प्राणी प्रणीत स्त त्त्व दर्शिभिः।
रुद्र स्य कर्म भवो वा रौद्र मित्यभि धीयते ॥
ज्ञानार्णव,

अर्थ–जो क्रूर आशय (परिणाम) वाला प्राणी होता है उसे रुद्र कहा जाता है, और उस रुद्र प्राणी के कार्य अथवा भाव·परिणाम को रौद्र ध्यान कहा जाता है.

जैसे मदिरा पान करने से मनुष्य की बुद्धि विकल हो जातिहै, और वो विशेषत्व क्रूर कर्मो में ही आनन्द मानता है, तैसेही जीव अनादि काल से कर्म रूप मदिरा के नशेमें मतवाले हुवे हुवे कुकर्मो में ही आनन्द (मजाह) मानते हैं. उन कुकर्मोके आनन्द से जो अन्तः करण में विचार होताहै उसे तत्त्वज्ञ पुरुषों ने रौद्र–भयानक ध्यान फरमाया है.

प्रथम प्रतिशाखा-"रौद्र-ध्यानके भेद"

सूत्र–रोद्दे झाणे–चउविह पण्णते तंजहा –१ हिंसाणुबंधी, २मोसाणु बंधी, ३ तेणाणु बंधी, ४सारक्खणाणुबंधी.

अर्थ—रौद्र भयंकर (ध्यान) के चार प्रकार भगवंत ने फरमाये सो यहां कहते हैं:—१ हिंसानुवंधी रौद्र ध्यान सो-हिंसक कर्मोका अनुमोदन (परशंसा) करे, २ मृषानुवंन्धी रौद्र ध्यान सो-मिथ्या (झूठे) कर्मोंका अनुमोदन करे, ३ तस्करानु बन्धी रौद्र ध्यान सो-चोरी के कर्मोका अनुमोदन करे, और ४ संरक्षणानु बन्धी रौद्र ध्यान सो-विषय सुख के रक्षक कर्मों का अनुमोदन करे. इस चारोंहि का आगे सविस्तर वरणन् किया जाता है.

प्रथम पत्र-"हिंसानुवंधी"

१ "हिंसानुवंधी रौद्र ध्यान" सो:—
संछेदनैर्दमनैर्तांडिने तापनैश्च,
बन्ध प्रहार दमनैश्च विकृन्तनैश्च;
यस्येह राग मुपयाति नचानु कम्पा,
ध्यानंतु रौद्र मिती तत्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः;
सागर धर्मामृत

अस्यार्थ—छेदन, भेदन, ताडन तापन—करना.—बन्धन बांधना, प्रहार मारना, दमन करना, कुरूप करना, इत्यादि कर्मोमें जिसका अनुराग [प्रेम] होवे. और यह कर्म देख जिसको दया नहीं आवे. सो

हिंसानुवन्धी रौद्र ध्यान.

[१] 'दुःख किसकों भी प्रिय नहीं है,' वेचारे जीव कर्माधीनतासे, पराधीनता, निराधारता, असमर्थता पाये हैं; हीन दीन दुःखी हुये हैं. एकेंद्री यादि अवस्था प्राप्त हुइ है, अहो निश सुखके इच्छक हैं; और यथा शक्ति सुख प्राप्तिका उपाय करने खपते हैं, उन वेचारे जीवोंको, अर्थे (मतलवसे) अनर्थे (विना करना) दुःख देना, सताना, या उनकों दुःखसे पीडाते हुये देख हर्ष मानना सो रौद्र ध्यान. एकेन्द्रीयसे लगा पंचेन्द्रीय जीव पर्यंत कीसीभी जीवोंकों, या जीव युक्त किसीभी पदार्थोंकों, स्वयं अपने हाथसे; तथा पर-दूसरेके हाथसे प्राण रहित करते देख, टुकडे २ करते देख, लोहकी श्रृंखला —वेढि में वन्धनमें डालते देख, रस्सी सूत शणादिक से वांधते देख, कोटडी भूवारे (तल घर) कारागृह (केदी खाने) में कब्ज किये देख, कर्ण, नाशिका, पूँछ सींग, हाथ पांव, चमडी, नख, वगेरे किसीभी अंगोपांग का छेदन भेदन करते देख, कत्तल खानेमें वेचारे जीवोंका वध करते समय उनका आक्रांद श्रवण कर, उनके टुकडे तडफडते देख, वगेरे अनेक तरह जीवोंको दुःख देते, या उनके वध करते देख आनंद माने,

कि बहुत अच्छा हुवा, यह ऐसाहिथा, इसे मारना-ही चाहिये; बंधनमें डालनाही चाहिये; फांसी शूली देनाही चाहिये; बडा जुलमी था, बचता तो गजब कर डालता, पाप कटा मरगया, पृथ्वीका भार हलका हुवा! वगेरे २ शब्दोचार करे, आनंद माने, सो हिंसानुबंन्धी रौद्र रौद्र ध्यान.

(२) औरभी हाहा! यह महेल, मंदिर, बंगला हाट-दुकान, हवेली, कोट, किल्ला, खाइ, बुरजों, तीर, स्थंभ या मृतिका पाषाणादिकके खिलोणे, मूर्त्ति भंडोपकरण (बरतन) वगेरे, बहुत अच्छे बने. अच्छा: रंग कोरमुणीआदि करे सुशोभित किये; शाबास कारिगरकों पूरा शिल्पबेनाथा कि जिसने ऐसी मनोहर वस्तु बणाइ. ऐसेही कूप, बावडी, नल, तलाव, होद, कुंड, झरणा, झारी, लोटा, गिलास, कळशा, वगेरे बहुतही अच्छे मनोहर बने हैं. क्या स्वादिष्ट शीतल सुगंधित्त पाणी है. कैसा उमदा फुवारा छूटता है. कैसा उमदा छिटकाव हुवा है. चूला, भट्टि अंजिन, मील, दीवा, पिलसोत, हंडी, गिलास, झुमर चीमनी वगेरे बहुतही अच्छे सुशोभित हैं, क्या उमदा झगमग रोशनी होरही है, क्या रंगी बेरंगी आतशबाजी (दारूकेख्याल) छूट रहे हैं, क्या धूपकी सुगंधी

मघमघा रहीहै. क्या शीतल सुगंधी हवा आती है. क्या उमदापंखा पंखी चलरहे हैं,कैसा झुला घूमता है, क्या मंजुल बाजिंत्रोंका नाद है. क्या उंचे२विचित्राकार वृक्षों का समूह शोभ रहा है. यह झाडों काटके प्रासाद, स्थंभ, पाट, वगेरे बनाने योग्य है. यह फल बडे मिष्ट हैं भक्षण करने योग्य हैं, गुण करता हैं; शाक्र बडा स्वादिष्ट बना. क्या लीली २ हरीयाली छा रही है: इसे देखनेंसे बडा आनंद होता है. क्या मनोहर हार तुर्रे बनाये. औषधियां कंद मुलादिक पौष्टिकस्वादिक कैसे अच्छे हैं. यह कीडे, खटमल, डंस, मच्छर, प्रलय के जीव हैं, इनकों जरूरही मारना. जलचर, मच्छादि भूचर,गवादि, वनचर शूकरादि, खेचर, पक्षी आदि, पचनादी कर भक्षणे योग्य हैं. यह अश्व गजादि की कैसी सजाइ सजी है. सेना शत्रूका कट्टा करने जैसी है, बहुत अच्छे चित्र विचित्र पक्षीयोंकों पींजरमें रखे हैं. अजायब घरकी अजब छटा है. *मुषेसे रोगोत्पत्ति होती है यह मारने योग्य हैं. सर्प विच्छूवादि विषारी जीवोंको अवश्य मारना, बडा पुन्य होगा, सिंहकी

* प्लेग रोगके प्रगट होने घरमें मूषे (चूवे-उंदिर) मरके घरके मालिक को चेताते हैं रोगसे बचाने उपकार करते हैं. उसे मूढके उसे मारते हैं यह बडी अज्ञान दशा है.

शिकार क्षत्रियोंको अवश्य करना चाहिये. कैसा शूर सुभट है की एक पलकमें हजारोंका संहार करता है.इत्यादि विचारको हिंसानुबन्ध रौद्रध्यान कहना.और भी अश्वमेध यज्ञ, घोडे को अग्निमें होमनेसे; गोमेध यज्ञ गौका, अजामेध बकरेका, और नरमध मनुष्य का, अग्निमें होम करने (जलाने) से, वडा धर्म होता है. स्वर्ग मिलताहै. यह विचार भी रौद्रध्यानका है. कीतनेक पापशास्त्रके अभ्यासी कितनेक जानवरोंके अंगोपांग, मांस, रक्त, हड्डी, चर्म इत्यादि सेवनेसे रोग नाशती मानते हैं. कितने क्रीडा निमित्त कुत्तेआदि शीकारी जानवरोंसे बेचारे गरीव पशु पक्षीयोंको पकडाके मजा मानते हैं, कितनेक वंदर रींछ आदि जीवोंके पास नृत्य गायनादिके ख्याल तमाशा देखनेमें मजा मानते हैं. कुकुट, भैसें, मेंढे या मनुष्यादिकी लडाई देख मजा मानते हैं. सो भी हिंसानुबंधी नामे रौद्रध्यान है.

कितनेक जीवोंके संहार के लिये, शतघ्नी (तोप) बंदूक, धनुष्य-बाण, खड्ग, कटार, छुरी, चक्र आदीका संग्रह करते हैं; या शस्त्र देख, जीवों के संहारनेकी इच्छा करते हैं. कितनेक घटा, घटी, हल,बखर, कुदाली, पावडी ऊखल, मुशल, सरोता, दांतरडा, कातर, वगैरेका सं-

ग्रह करते हैं. तथा इन को द्रव्य संहारकी इच्छा करते हैं. हाथ में आये चलानेकी इच्छा करते हैं, खाली चलाके देखते हैं, सो भी हिंसानुबन्धी रौद्र ध्यान.

औरभी किसीका बुरा चिंतवना, अपनेसे अधिक रूपवान, धनेश्वर्य, गुणीजन, पुण्यप्रतापी, बहुल परिवारी सुखी देखके ईर्ष करे, उनको दुःख होनेका विचार करे कि इसके पीछे मुझे कोइ नहीं पूछता है, यह मेरे सुखमें या लाभमें हरकत कर्ता है, मुझे हरवक्त दबाता है सताता है यह कब मरे और पाप कटे! वगैरे विचार करे सोभी हिंसानुबन्धी रौद्र ध्यान.

और पृथव्यादि छही काय के जीवोंकी हिंसा होवे, ऐसा यज्ञ, होम, पूजा, वगैरेका उपदेश दे, या ग्रन्थ रचे, तैसेही औषधियों के शास्त्र रचते, दुष्ट (घातक) मंत्रका साधन करते, विभत्स कथा कादम्बरी वगैरे रचते व पढते वक्त. हिंशक, चोर, जार, दुष्ट, दुर्व्यसनी-की संगतमें रहते, और निर्दयी क्रोधी, अभीमानी, दगाबाज, लोभी, नास्तिक, इनके मनमें हिंसानुबन्धी रौद्रध्यान का विशेष वास होता है.

तैसेही हिंसासे निपजती हुइ वस्तु, जैसे—१ गिरनीमें

१ गिरनीके आटेको बराबर जमाके उपर सक्कर भुरभुरा-के देखनेसे हलने चलने बहुत जीव दिखते हैं.

पीसा आटा, २ चीनी सक्कर, ३ हड्डी या हाथि दांत के चूडे, वगेरे, ४ कचकडेकी बनी वस्तु, ५ पांखोंकी टोपीयो वगेरे, ६ चमडेके पूठे वगेरे, ७ अंग्रेजी दवाइयों, ८ साबन मेणबत्ती, ९ रेश्मी कपडे, १० खराब केशर, ११ चरबीका घृत [घी] वगेरे हिंसक वस्तुका भोगोप भोग करते मनमें जो मजा मानते हैं, वोभी हिंसानु बन्धी रौद्रध्यान गिना जाता है.

२चीनी सक्करमें हड्डीयोंका चूरा विशेष होताहै,और,गायके रक्तसे शुद्ध करतेहैं.३हाथी दातके लिये७०००० हाथी फ्रान्स देशमें दरसाल मारे जातेहैं.४ काछवेको गरम पानीमें डुबाके मारके उसके चमडेकी जो वस्तु बनाते हैं उसे कचकडेकी कहते हैं. ५ जीवते पक्षीयोंकी पांखो झडपेसे उखाड लेते हैं, वो टोपी वंगेरेपे लगाते हैं. ६ जीवते पशु, का.चमडा निकालते हैं, कितनेक स्थान चमडेके लियेही विषादि प्रयोगसे पशूको मार उसके चहीयोंके पूठे. नावन नगारे, वगेरे बनते हैं. ७ अंग्रेजी दवाइयोंमे जानवरों के मांसका अर्क व दारुका भेल होता है. काडलीवर आइल यह मच्छीका तेल होता है, ऐसी बहुतसी है ८ साबू मेणबत्ती में चरबीका भेल होता है. ९. कितनेक केशर में मांस के छोंटे होते हैं. १० रेशमी कीडेको गरम पाणीसे मार रेशम लेते हैं. ११ कितनेक घी (घृत) में भी चरबी का भेल आता है. ऐसी अखबारोंमें बहुधा खबरें प्रगट हुइ हैं, और उसे पढके उपरोक्त वस्तु छोडते नहीं हैं उन्हें आर्य कैसे कहना !

ऐसेही बोर, मूले प्रमुखकी भाजी, जुवार बाजरीके भुट्टे, सुला अनाज व औषधि, विना देखे कोईभी सजीव वस्तु भोगवते मजा माननेसेभी हिंसानुबन्ध रौद्रध्यान गिना जाता है, क्यों कि इनमें त्रस जीवोंका विशेष संभव है.

महाभारत संग्रामोंके इतीहास कथा पढते सुनते जो उनकी मनमें अनुमोदन होवे, सो भी हिंसानुबन्धी रौद्रध्यान.

इत्यादि हिंसानुबंन्ध रौद्रध्यानका बहुत बयान है, सबका मतलब इतनाही है कि, किसीको भी दुःख देनेका विचार होवे या दुसरे के वधसे वस्तु बनी उसकी अनुमोदन करे वोही हिंसानुबंधी रौद्रध्यान.

द्वितीय पत्र–"मृषानुबन्धी."

२ "मृषानुबन्धी रौद्रध्यानः"—

अमत्य चातुर्य बलेन लोकाद्वितं ग्रहीष्याभि बहु प्रकारं;
तथास्वमतङ्गपुराकराणि,कन्यादिरत्नानीच बन्धुराणि ॥
असत्य वागवंचनया निजानंत,प्रवर्तय त्यत्रजनंवराकम्
सद्धर्म मार्ग दत्तिवर्तनंनमदोद्धतोयःसहि रौद्रधामा॥२॥

ज्ञानार्णव.

अर्थ–विचार करे कि मैं असत्यतासे चतुर्यता करके, मेरे कर्मोको प्रगट न होने देते, अनेक प्रकारसे

लोकोंको ठग कर मेरा मतलब पूरा करूं, मन कल्पित अनेक शास्त्र दया रहित रचकर मन माना मत चलावूं, लोकोंको वाक्य चातुरीसे मोहित कर उनके पाससे सुन्दर कन्या, रत्न, धन, धान्य गृह (घर) ग्रहण करूं, और मेरा जीवन सुखे चलावूं. इत्यादि असत्य विचार जिसके अंतःकरणमें होवे उसे मदोद्धत मृषानुबन्धी रौद्रध्यानका मंदिर (घर) समझना चाहिये.

मृषा=नही रक्खा, अर्थात, झूठेने, जगतमें बुरा पदार्थ कुछ बाकी रक्खा नहीं, सब, उसनेही ग्रहण कर लिया. ऐसा खराब झूठापना है, और छोटे बडे सब झूठकों खराब समजते हैं, क्योंकि झूटा कहनेसे सब चिडते हैं;' तो भी आश्चर्य है की फिर उसे नहीं छोडते हैं, देखिये! इस ध्यानकी सत्ता कैसी प्रबल है, कि खराब काममेंही आनंद मनाता है. कितनेक अपनी चातुरी बताते हैं कि हम कैसे विद्वान हैं. कैसा प्रपंच रचा कि—अंगहीन, रूपहीन, इन्द्रियहीन, और गुणहीन कन्याको भी कैसे बडे स्थान दिलादी; और नगदी इत्ने रुपे दिला दिये. बुढ्ढेका, रोगिष्टका, नपुंसकका कैसी युक्तिसे लग्न करादिया, अब वो दोनो भलांइ तांब उम्मर रोवो! अपना तो मतलब होगया. ऐसेही गाय अश्वादि पशुवोंकों, तोता मैनादि पक्षीको,

पेंच रचनेमें, हस्त चालाकीसे, या इन्द्रजालसे अनेक कौतुक वतानेमें, मंत्र जंत्रादिका आडंवर वडा अपनी प्रतिष्ठा [महिमा] सुण खुश होवे. शास्त्रार्थ करते [व्याख्यान देते] अपने मरम [हर्ज] की वातकों छिपावे, अर्थको फिरावे, अनर्थ करे. झुठे गप्पेसे परिषदाकों रींजाके आनंद माने. दया, सत्य, शीलादी गुण रहित शास्त्र हैं, जिनमें फक्त संग्राम झगडे, या लीला, कितुहल की कथा होवे उन्हें श्रवण कर आनंद मानें. इत्यादि सर्व मृषानुवन्धी रौद्र ध्यान समझना.

मृषानुवन्धीका अर्थ तो वहुतही होता है; परंतु सारांश इत्नाही है कि झुठे काममे आनंद माने उसहीका नाम मृषानुवन्धी रौद्र ध्यान जाणना.

तृतीय पत्र—"तस्करानुवन्धी".

३ "तस्करानुवन्धी रौद्रध्यान" सो—

यश्चौर्याय शरीरिणा महरहश्चिन्ता समुत्पद्यते,
कृत्वा चौर्यमपिप्रमोद मतुलं कुर्वन्तियत्संततम्;
चौर्येणापि हृतेपरैः परधने यज्जायते सुभ्रम—
स्तच्चौर्यप्र भवंदीन्त निपुणा रौद्रंसुनिन्दास्पदम्

ज्ञानार्णव.

अर्थ— चोरी करनेकी सदा चिन्ता रहे; चोरी करके अति हर्ष माने; अन्यके पास चोरी करा, लाभकी

⊙ और उनका अपमान करें उनके शिर झूठा कलंक चडावे, निंदा करे; और अपनी झूठी वातकों दूसरे मान्य करते देख हर्ष माने, कंन्यादान, ऋतुदान, ठहराके कुलीम स्त्रीयोंको भृष्ट करे. धर्म निमित हिंसा करनेमें दोष नहीं ऐसा ठहरावे, ब्रह्मचारी नाम धरा, व्यभिचार सेवन करे, और महात्मा वगेरा नामसे वोलाते आनंद माने, सोभी मृषानुबन्धी रौद्र ध्यान.

वधिर (वहिरे) अन्धे, लंगडे, आदि अपंगको; कुष्टादि रोगिको, निर्बुद्धी, इत्यादिकी हांसी करे; इन्हे चिडावे, चिडते देख मजाह माने. जूवा-तास (पत्ते). ‡शतरंज, वगेरे ख्यालोंमें, सहजही झूठ वोलाता हैं. निकम्में विवादमें, प्रवादियोंको दगासे छलनेमें, झूठे

⊙मनहरः—सज्जनकों देखकर दुर्जन करत कोप,
ब्रह्मचारी देख कामी कोप करे मनमें.
निशके जगैया ताकों देख कोप करे चोर,
धर्मवंत देख पापी झाल उठे तनमें;
शूरवीर देखकर, कायरकरत कोप;
कवीयोंको देख मूढ हांसी करे जनमें.
धनके धनीकों देख निर्धन कोप करे,
विनाही निमित खाकडारेतिहूं पनमें ॥१॥

‡ सो रंज करनेवाली.

पेंच रचनेमें, हस्त चालाकीसे, या इन्द्रजालसे अनेक कौतुक वतानेमें, मंत्र जंत्रादिका आडंवर बडा अपनी प्रतिष्ठा [महिमा] सुण खुश होवे. शास्त्रार्थ करते [व्याख्यान देते] अपने मरम [हर्ज] की वातको छिपावे, अर्थको फिरावे, अनर्थ करे. झुठे गप्पेसे परिपदाको रींजाके आनंद माने. दया, सत्य, शीलादी गुण रहित शास्त्र हैं, जिनमें फक्त संग्राम झगडे, या लीला, कितुहल की कथा होवे उन्हें श्रवण कर आनंद मानें. इत्यादि सर्व मृपानुवन्धी रौद्र ध्यान समझना.

मृपानुवन्धीका अर्थ तो वहुतही होता है; परंतु सारांश इत्नाही है कि झुठे काममे आनंद माने उसहीका नाम मृपानुवन्धी रौद्र ध्यान जाणना.

तृतीय पत्र—"तस्करानुवन्धी".

३ " तस्करानुवन्धी रौद्रध्यान" सो—

यश्चौर्याय शरीरिणा महरहश्चिन्ता समुत्पद्यते,
कृत्वा चौर्यमपिप्रमोद मतुलं कुर्वन्तियत्संततम्:
चौर्येणापि हृतेपरैः परधने यज्जायते संभ्रम—
स्तच्चौर्यप्र भवंदान्ति निपुणा रौद्रंसुनिन्द्यास्पदम्

श्लोक.

अर्थ— चोरी करनेकी सदा चिन्ता रहे; चोरी कर के अति हर्प माने; अन्यके पास चोरी करा, लानेको

प्राप्ती हुइ देख, खुशी होवे; चोरी कर्ममें कला कौशल्यता बतानेवालेकी प्रशंसा करे; इत्यादि विचार करे सो तस्करानुबन्धी रौद्र ध्यान अति निंदनीय है.

जीव तृष्णा रूप विकराल जालमें फसे हुये सर्व जगतकी अन्न, धन्न लक्ष्मी, कुटुंबकी ऐश्वर्यता(मालकी) किये चहाते हैं, परंतु इत्ने पुण्य करके नहीं लाये कि सर्वाधिपति बने? और प्रमादी (आलसी)ओंसे सीधा द्रव्य मिलाके इच्छा त्रप्त करने, पापोदय से उनकों चोरी सिवाय दूसरा उपायही कौनसा दिखे. इस हेतू से वो चोरीयानुबन्धी रौद्र ध्यानमें चड़ते हैं, विचार करते हैं कि-घटासे आच्छादित अभ्रयुक्त अन्धारी रात्रिमें कृष्ण वस्त्र धारण कर, गुप्तपने जा खासदे द्रव्य लावूंगा. क्या मगदूर है कोइ सामने आय; मैं शस्त्र कलामें ऐसा प्रवीण हूं कि—एक झटकेमें बहुतोंके बटके (टुकडे), करडालूं, और ऐसा सटकूं कि किसकी माने दूध पिलाय है जो मुझे पकडे. मैं अनेक वियाका जानहूं, सबको निद्रा गस्त करसक्काहूं. बडे २ जंजीर और तालोंको एक कंकरीसे तोड सका हूं. सैन्यको स्थंभन कर सक्का हूं. अंजन सिद्धिसे पाताल का निधान-गुप्त द्रव्य और अंधकारमें प्रकाश तुल्य देख सक्काहूं. इत्यादि अनेक कलाका धरनहार मैं हूं.

क्या मगदूर कोइ मेरी बरोबरी कर सके. हजारों सु-
भट मेरे हुक्ममें हें, वोभी मेरे जेसे कलामें पूर, और
शूर वीर हें. मेंने वडे २ नरेंद्रोंको धुजादीये हें. अब
में थोडेही कालमें ईश्वरो (मालकों) का संहार कर,
सर्व ऋद्धि सिद्धिका श्वामी बन, निश्चिंत मजाह भो-
गवुंगा· अमुक स्त्री महा रूपवंत हे, उसकाभी हरण
करुं. अमुक भूषण, वस्त्र, पाल, पशु, मनुष्य, इन सर्व
उत्तम पदार्थोंकों मेरे स्वाधीन कर उनके उपभोगसे
मेरी आत्मा तृप्त करुं, इत्यादि विचार अंतःकरणमें
होवे सो तस्करानुबन्धी रौद्र ध्यान.

ऐसेही कितेक नामधारी साहूकारों लोकोंकों सठाई
बताने उत्तम२ वस्त्र भूषण तिलक-छापे, माला, कंठी
से शरीर विभूषित कर, माला फिराते, वडे धर्मात्मा
बन ऊंचीर गादी तकीयोंके टेके दुकान पे विराजमान
होतेहें. शिकार आइ के माला हलाते भगवतका ना-
म उच्चारते मीठे २ बोल, उस भोलेकों पान वीडी
आदि के लालचसे भरमा के ऐसी हुंस्यारी से ठगाइ
चलाते हें कि क्या मगदूर कोइ समझतो जाय! मोल
में, बोलमें, तोलमें, मापमें, छापमें, जबाबमें ठगाइ
चला, बस पहोंचे वहां तक उसे लूटनेमें कसर नहीं

प्राप्ती हुइ देख, खुशी होवे; चोरी कर्ममें कला कौशल्यता बतानेवालेकी प्रशंसा करे; इत्यादि विचार करे सो तस्करानुबन्धी रौद्र ध्यान अति निंदनीय है.

जीव तृष्णा रूप विकराल जालमें फसे हुये सर्व जगतकी अन्न, धन्न लक्ष्मी, कुटुंबकी ऐश्वर्यता(मालकी) किये चहाते हैं, परंतु इसे पुण्य करके नहीं लाये कि सर्वाधिपति बने? और प्रमादी (आलसी)ओंसे सीधा द्रव्य मिलाके इच्छा त्रप्त करने, पापोदय से उनकों चोरी सिवाय दूसरा उपायही कौनसा दिखे. इस हेतू से वो चोरीयानुबन्धी रौद्र ध्यानमें चडते हैं, विचार करते हैं कि-घटासे आच्छादित अभ्रयुक्त अन्धारी रात्रिमें कृष्ण वस्त्र धारण कर, गुप्तपने जा खासदे द्रव्य लावूंगा. क्या मगदूर है कोइ सामने आय; मैं शस्त्र कलामें ऐसा प्रवीण हूं कि–एक झटकेमें बहुतोंके बटके (टुकडे), करडालूं, और ऐसा सटकु कि किसकी माने दूध पिलाय है जो मुझे पकडे. मैं अनेक विद्याका जानहूं, सबको निद्रा गस्त करसक्ताहूं. बडे २ जंजीर और तालोंको एक कंकरीसे तोड सक्ता हूं. सैन्यको स्थंभन कर सक्ता हूं. अंजन सिद्धिसे पाताल का निधान-गुप्त द्रव्य और अंधकारमें प्रकाश तुल्य देख सक्ताहूं. इत्यादि अनेक कलाका धरनहार मैं हूं.

किसीके मकान, वगीचा, धर्मशाला, वस्त्र, भूषण, वरतन, भोजन, पाणी, अन्न, फल, पुष्पादि,तृण कंकर जैसा निर्माल्य पदार्थ भी उसके मालककी आज्ञा विन, देखके, स्पर्शके, या भोगवके, आनंद माने सोभी चौर्यानुवंन्ध रौद्रध्यान.

जो जो अन्यके पदार्थ सुणने में, देखनेमें, व जाणनें में आवे, उनको ग्रहण करनेंकी, अपनें तावें करनें-की कि भोगवणें की अभिलाषा होवे, वोही तस्करानुवन्ध तीसरा रौद्रध्यान.

चोर चोरी करके वस्तु लाया, उसको सस्ते भाव में लेके मजा माने, चोरको सहाय देवे खान पान वस्त्रादी से साता उपजा उनके पास चोरी करावे, और माल आप लेके आनंद माने. राजका दाण (हाँतल) चोरा के खुशी होवे, जिस वस्तु वेंचनें की अपने राजमें राजाने मनाकी होय, उसे गुप्त लाके वेंचे, और खुश होवे, इत्यादि तस्करानुवन्धी रौद्र ध्यान के अनेक भेद हैं. सबका मतलब इतनाही है कि मालककी रजा (आज्ञा) विन, या उसके मन विन जबर दस्तीकर जो वस्तुपे अपनी मालकी जमाके आनंद माने; सोही तस्करानुवन्धी रौद्र ध्यान.

रखते हैं. और विश्वास उपजानें गायकी, वच्चेकी भगवानकी, दमडी २ के वास्ते कसम [सोगन] खा-जाते हैं, इच्छित लाभ हुये बडे खुशी होतेंहैं. अच्छा माल धता खोटा देते हैं, अच्छा बुरा भेला कर देते हैं; हिसावमें, व्याजमें उनका घर डूवो देते हैं. ऐसेर अनेक चोरी कर्म भर वजारमें कर साहुकार कहलाते हैं, अपनें चालाकीको होंश्यारी समझ वडा हर्ष मानते हैं, सोभी चोरियानुवन्धी रौद्रध्यान.

ऐसेही कितनेक साधु ७ ओंका, शरीर दुर्बल देख कोइ पूछे महाराज! आप तपस्वी हो? तव तपस्वी न होने परही कहे कि-हां! साधू तो सदा तपस्वी होतेहैं, सो तपकर चोर· ऐसेही शुद्धाचारविन, मलीन वस्त्रा; दि धारण कर आचारवंत वजे, श्वेत वाल होनेसे स्थीवर (वृद्ध) वजे, रूपवंत हो राजऋद्धी त्यागनेंवा-ला वजे, मूर परिणामी होके दांभिक पणेसे वैरागी वजे· वगेरे धर्म टगाइ कर आनंद माने सोभी तस्क-रानुवन्धी रौद्र ध्यान.

७तव तेणे वय तेणे, रुवे तेणेअ जे नराः

आयार भाव तेणेअ, कुव्वइ देवेइ किव्विसा १

अर्थ-आचारका, मतका, रूपका, तपका, भाव का चोर, मरके किल्विषी (देवमें चंडाल जैसे) देव होने हैं.

किसीके मकान, वगीचा, धर्मशाला, वस्त्र, भूषण, वरतन, भोजन, पाणी, अन्न, फल, पुष्पादि,तृण कंकर जैसा निर्माल्य पदार्थ भी उसके मालककी आज्ञा विन, देखके, स्पर्शके, या भोगवके, आनंद माने सोभी चौर्यानुवंन्ध रौद्रध्यान.

जो जो अन्यके पदार्थ सुणने में, देखनेमें, व जाणनें में आवे, उनको ग्रहण करनेंकी, अपनें तावें करनें-की कि भोगवणें की अभिलाषा होवे, वोही तस्करानुवन्ध तीसरा रौद्रध्यान.

चोर चोरी करके वस्तु लाया, उसको सस्ते भाव में लेके मजा माने, चोरको सहाय देवे खान पान वस्त्रादी से साता उपजा उनके पास चोरी करावे, और माल आप लेके आनंद माने. राजका दाण (हाँसल) चोरा के खुशी होवे, जिस वस्तु वेंचनें की अपने राजमें राजाने मनाकी होय, उसे गुप्त लाके वेंचे, और खुश होवे, इत्यादि तस्करानुवन्धी रौद्र ध्यान के अनेक भेद हैं. सवका मतलव इतनाही है कि मालककी रजा (आज्ञा) विन, या उसके मन विन जवर दस्तीकर जो वस्तुपे अपनी मालकी जमाके आनंद माने; सोही तस्करानुवन्धी रौद्र ध्यान.

चतुर्थ पत्र-"संरक्षण"

वन्हारम्भ ग्रहेषु नियतं रक्षार्थ मभ्युद्यते ।
यत्संकल्प परम्परां वितनुते प्राणीह रौद्राशयः ॥
यच्चालम्ब्य महत्व मुन्नतमना राजेत्यहं मन्यते ।
तत्तुर्यं प्रवदन्ति निर्मलधियो रौद्र भवाशंमिनाम् ॥

ज्ञानार्णव.

अर्थ—जो प्राणी रौद्र (क्रूर) चित्त होकर बहुत आरंभ परिग्रोंमें रक्षार्थ नियमसे उद्यम करे, और उसमेंही महत्ता - अपने मोटे पनेका अवलम्बन करके - उन्नत चित्त हो ऐसामानेकि-में इन सबका मालक हूं. इत्यादि परिणामोंकी प्रवृत्तीको तत्वज्ञ महा पुरुषों ने संसार की वांछा करने वाले जीवोंका चोथा विषय संरक्षण नामक रौद्र ध्यान कहा है.

४ "विषय संरक्षण रौद्र ध्यान—इस जगतमें सब जीव पापही पापीहैं ऐसाभी नही समझना; तथा सब पुण्यात्मा हैं ऐसा भी नही समझना. सर्व संसारी जीवोंके पुण्य और पाप दोनों आनादि से लगे हैं. पापकी वृद्धी होनेसे दुःख की विशेपता, और पुण्यकी वृद्धी होनेसे सुखकी विशेपता होती है; ज्यादा होना है सोही दृष्टि आता है; तोभी उसका प्रतिपक्षी गुन यनाही रहता है.

जिनके पुण्यकी अधिकता होती है उनको सुख दाइ मन्योग्य सामग्रीयोंका संयोग मिलता है, वो उसका वियोग कदापि नहीं चहाते है. [यह वर्णन् आर्त ध्यानके दूसरे भेदमें होगया हैं] परंतु वस्तुका स्वभावही "अध्रुव असास्व अमी" अर्थात् अध्रुव, अशाश्वत:क्षण-भंगूर है. "समय२ अनंत हानी" भगवंत ने फरमाइ सो सत्य है. वस्तुका स्वभाव क्षण २ में पलटता २ किसी वक्त वो सर्व वस्तु नष्ट होजातीहै; उसे नष्ट नहोने देने—अर्थात् बचानेके जो उपाय किये जांय उसीका नाम विषय संरक्षण रौद्र ध्यान है.

राज लक्ष्मी प्राप्त होनेसे विचार होवेकि-रखे मेरे राज्यको कोइ परचक्रीआदि हरण करे. इस लिये अव्वलही बंदोवस्त करे, चतुरगणी सैन्य, (हाथी, घोडे, रथ, पायदल) उमदा २ पराक्रमीयोंका संग्रह करूं. धोकेके स्थान छावणी डालूं, उद्धतोंके संहारका उपाय चिंतवे, शत्रूके राजमें मनुष्य रख खबर लेता रहूं. उमरावादीको इनाम इकरामसे संतुष्ट रखूं कि वक्तमें जान झोंकदे. पुक्त पुस्ती, उंडी खाइ, शतघ्नी आदि शस्त्र युक्त उंच्च बुरजो, पक्का किल्ला बनावूं. धनुष्य बाण खड्गादि अनेक शस्त्र वक्तरोंका संग्रह कर रक्खूं. धनुर्वेदादि शिक्षा ग्रहण कर संग्राम विद्या में

चतुर्थ पत्र-"संरक्षण"

बव्हारम्भ ग्रहेषु नियतं रक्षार्थं मभ्युद्यते ।
यत्संकल्प परम्परां वितनुते प्राणीह रौद्राशयः ॥
यच्चालम्ब्य महत्व मुन्नतमना राजेत्यहं मन्यते ।
तत्तुर्यं प्रवदन्ति निर्मलधियो रौद्र भवाशंसिनाम् ॥

ज्ञानार्णव.

अर्थ—जो प्राणी रौद्र (क्रूर) चित्त होकर बहुत आरंभ परिग्रेमें रक्षार्थ नियमसे उद्यम करे, और उसमेंही महत्ता - अपने मोटे पनेका अवलम्बन कर के - उन्नत चित्त हो ऐसामानेकि-मैं इन सबका मालक हूं. इत्यादि परिणामोंकी प्रवृत्तीको तत्वज्ञ महा पुरुषों ने संसार की वांछा करने वाले जीवोंका चोथा विषय संरक्षण नामक रौद्र ध्यान कहा है.

४ "विषय संरक्षण रौद्र ध्यान—इस जगतमें सब जीव पापही पापीहैं ऐसाभी नहीं समझना; तथा सब पुण्यात्मा हैं ऐसा भी नहीं समझना. सर्व संसारी जीवोंके पुन्य और पाप दोनों आनादि से लगे हैं. पापकी वृद्धी होनेसे दुःख की विशेषता, और पुण्यकी वृद्धी होनेसे सुखकी विशेषता होती है; ज्यादा होना है सोही दृष्टि आता है; तोभी उसका प्रतिपक्षी गुन बनाही रहता है.

ोग्य वस्त्र आहार, पाणी, मकान से सुख देवूं दंश, मच्छर, वगेरे क्षुद्र प्राणियोंके भक्षणसे, बचावूं, शत्रूओं से रक्षण करने-शस्त्र सुभटोंका बंदोबस्त करूं, क्षुधाको इच्छित भोजनसे, तृषाको शीतोदकसे, वात पित्ता-दि रोगोंको औषधोपचारसे, मंत्रादिसे-विंतादिके उप-सर्गसे रक्षण कर इस शरीरको अखंड सुखी रक्खू. ऐसा विचार करे. तथा अपना गौरवर्ण-स्तेज (दमक दार) पुष्ट शरीर देख खुशी होवे; और अभक्षादिसे पोषण करनेकी इच्छा करे. और शरीरके, स्वजन संम्बान्धियोंके संपात्तिके नाश करनेवाले जो हैं उनपे दुष्ट परणाम लावे, उन्हे-देख क्रोधातुर हो जावे, उन के नाशके लिये अनेक उपायोंकी योजना (विचार) करे. और अपना शरीर धन वगेरे दूसरेके तावेमें होय उनको स्वतंत्र करने अनेक कुयुक्तीयोंका जो विचार होवे वह सब विषय संरक्षण नामे रौद्र ध्यान समझना.

ऐसे इस ध्यानके अनेक भेद हैं. परंतु सबका तात्पर्य येही है कि इस ध्यान में विशेष कर अपना रक्षण और अन्यको परिताप उपजानेका विचार रहता है, इसलिये इसे रौद्र (भयंकर) ध्यान कहा जाता है.

द्वितीयप्रतिशाखा-रौद्रध्यानीकेलक्षण

सूत्र—रोद्दस्सणं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णाता तं जहा – १ उसणदोसे, २ बहुलदोसे, ३अणाणदोसे, ४ अमरणांतदोसे.

अर्थम्—रौद्र ध्यानीके ४ लक्षण—१ हिंसादि पापों का विचार करे, २ विशेप (अखंड) विचार करे, ३ अज्ञानीयोंके शास्त्रका अभ्यास करे, और ४ मृत्यू होवे वहां लग पापका पश्चाताप करे नहीं.

रौद्र=भयंकरही जिस ध्यानका नाम, उसका विचार, कर्तव्य और स्वरूप भयंकर होवे यह तो स्वभाविक है. विचार मगजमें रमण कर आकृती धारण कर उसही कार्यमें प्रवर्तने शरीरकी प्रेरना करता है.

रौद्र ध्यान (विचार) होनेसे रौद्र कार्यके विपयमें जो प्रवृति होती है. उसके मुख्य चार भेद भगवानने फरमायें हैं:

प्रथम पत्र-"उपण दोप."

१ उपण दोप, सो हिंसा, झूठ, चोरी, और विपय संरक्षण, इन ४ हीकी पोपणताके लिये जो जो काम करे सो उपण दोप. जैसे—हिंसाकी पोपणता [वृद्धि] करने—अनेक पावडे, कोदाली, खुरपें, वगेरे पृथवीके

खोदने फोडनेके शस्त्रका संयोग मिलावे, अधूरे होय तो हाथालगा, धार सुधरा पूरे करावे, और पृथ्वी छेदन भेदनके आरंभमें उन्हे लगावे. एसेही पाणीके आरंभकी वृद्धिके लिये-चडस, रेंहट, मशक, या-घडा, कलशा, वगेरे वर्त्तनो कूवा, बावडी, तलाव, नल, फुवारे, होद, आदि स्थान वणवाके पाणीका आरंभ करे करावे, अग्निके लिये-चूले, भट्टी, दीवे, चिलमो, आतसवाजी, वगेरे करावे और को उस काममे लगावे. हवाके आरंभके लिये – पंखी, पंखा, वाजिंत्र, वगेरे, सबजी हरीके वाग, वगीचे, वाडी, इत्यादि लगावे. या पत्र पुष्प फल, तृणादिका-छेदन, भेदन, पचन, पाचन, भक्षण, करे करावे. त्रसके आरंभकेलिये-धूम्रादिक प्रयोगसे मच्छर डांस खटमल, आदिकोमारे. जाल फासासे जलचर, भूचर, खेचर आदीको कब्जे करे. तरवार भालादि शास्त्रसे छेदन भेदन ताडन तर्जन करे. मनुष्य पशूको कठिण (घाव पडजाय) ऐसे बंधनसे बांधे, कठोर प्रहार करे, अहार पाणीकी अंतराय देवे अंगोपाग छेदन भेदन करे. सत्ता उपरांत काम लेवे मेहनत करावे. सदा निर्दय होके अयत्नासे एकांत स्वार्थ साधने, या विना कारण अन्यकों संताप उपजाने उपरोक्तादि जो जो कर्तव्य करे उसे रद्र

ध्यानी समझना.

ऐसेही—झूठका पोषण करने अनेक पाप शास्त्र-काम शास्त्र, कादम्बरी, पठन करे; झूठे झगडे जीतने अनेक चालाकोंकी संगत, व कायदे—कानूनोका अभ्यास करे झूट ख्याल कविता बनावे, चकार मकारादि गालीका उच्चार करे; विभत्स [अयोग्य] शब्द बोले, निडर निर्लज्ज होके प्रवर्ते. ऐसेही—चोरीकी पुष्टिके लिये-चोरोंके शस्त्र-कोश, कुदाल,गुप्ति, वगेरे संग्रह करे, चोरीका कलाका अभ्यास करे. गोआदि जानवर पाले, चोरोंकी संगतमें रहे, धाडापाडे, चालाकोंसे अन्यका माल हरण करे, और विषय संरक्षणके पोषणकेलिये श्रोतेंद्रीयके पोषणके लिये-मृदंगादि बणाने जीवते पशूवोंका चर्म [चमडा] निकलावे. सारंगी-आदि बनाने-गवादीकी आतो (नशो) तोडावे, चक्षू इंद्रिके पोषण को शृंगार, सामग्री, सजाने- सुवर्ण रत्नोंके अनेक आगरों [खजानों] मोतीयोंको चिरावे, सण कपासादि पिलावे, कतावे, गिरनीआदि द्वारा वस्त्रादि बनवावे, अनेक शृंगार सजे, या स्त्रीआदिको शृंगारके उनके नाटक ख्यालादि देख, बगीचादि लगावें. घाणेंद्रियके पोषण यंत्रादि प्रयोगसे अत्तरादि निकलावे, पुष्पादि सुगंधि द्रव्यका सेवन करे. पुष्प

वटिकादि बनाके उपभोग लेवे, रसेंद्रिय पोषणे-मादि रा मांस भोगवे. कंदमूल आदि अभक्ष खावे. पोष्टिक उन्मादिक वस्तुका सेवन करे. रसायन भस्मादि सेवन करे, वैदेजकी गुटिकादि सेवन कर महा कामी बने, स्पर्शेन्द्रियके पोषणे-अनेक पुष्पादि सेजका शयन उत्तम वस्त्र भूषणोंसे श्रृंगार सज हार, तुर्रे, अतर, पुष्पादिसे शरीर सज, चूंचूं करती पगरखीयों पहर, अकड मकड चले. वेश्यादि नृत्यमें आगिवानी भागले गान तानमें गुलतान बन तान तोडे, मशगुल बन जावे. कामके चौरासी असनोंकी तसवीरों का वारंवार अवलोकन करे. इत्यादि तरह पंचेंद्रीयके पोषणके लिये जो उपायोंकी योजना करे, उसे उष्ण दोष ना मे रौद्र ध्यानी समझना.

द्वितीय पत्र-"बहुल दोष."

'बहुल दोष' सो उपरोक्त इन्ही कामोंको विशेष करे अर्थात् ज्यों ज्यों करे त्यों त्यों ज्यादा २ इच्छा बढती जाय. और इच्छा को तृप्त करने अधिक २ कर्ता जाय, परंतु तृप्ती आय ही नहीं, उसे बहुल दोष कहना.

तृतीय पत्र-"अज्ञान दोष."

३ "अणाण दोष" सो—रौद्र ध्यानका स्वभावही है कि वो उत्पन्न होता तुर्त सद्ज्ञानका नाशकर, जीवको अज्ञानी-मूढ बना देता है. सूकार्यसे प्रीति उतार कुकर्ममें संलग्न कर (जोड) देता है. सच्छास्त्र श्रवण, सत्संगमें अप्रीति अरुचि होती है. और२९पाप *सूत्रोंके अभ्यासमें प्रीति होवे. विषयमें प्रवृत्ति करावे ऐसी कवीता, कल्पित ग्रंथो, कोकशास्त्र वगेरे पढे सुणे, और कुशास्त्रकि जिसमें हिंसा, झूट, चोरी मैथुन, वगेरे पाप सेवनमें निर्दोषता बताइ होय उनका तथा वशीकरण, उच्चाटन, अकर्षण, स्थंभनादि विद्याका अभ्यास करे. गालीयों गावे, ठट्ठा मस्करी करे. पुरुषोंको स्त्रीयोंके वस्त्र भूषण पेहरायके नृत्य गान कुचेष्टा करावे; दयामय उत्तम धर्मको त्याग,

---

* २९. पापसूत्र—१ भूमिकंप, २ उत्पात. ३ स्वप्न. ४ अंगफुरनेका, ५ उल्का पातका, ६ पक्षीयोंके स्वरका, [कोक] ७ व्यंजन-निलमसका, ८ लक्षणसामुद्रिक, इन ८के अर्थ-पाठ, और कथा यों ८×३=२४ और २५ काम कथा. २६ विद्या-रोहणीआदि २७ मंत्र, २८ तंत्र. २९ अन्यमतीके आचारके.

हिंसा धर्ममें राचे. कामी, कपटी, लोभी, कनक कान्ता धरी, स्त्रीके भोगी, धूप पुष्प अत्तीरादिकी सुगंधमें मस्त रहने वाले, सचित अहारी या मांस मदीरा भोगवने वाले, रंगी वे रंगी वस्त्रों और भूपणोंसे शरीरको श्रृंगारने वाले, रुष्ट हुये नाश करे, और तुष्ट हुये इच्छा पुरे, एसे राग द्वेप से भरे हुये; इत्यादि अनेक दुर्गुण धारीको देव गुरु जानके माने पूजे, भक्ति करे. त्यागी, वैरागी, शांत दांत, वितरागी देव गुरुका त्याग करे, अपमान करे, इन्द्रियों और कपाय की पोपणतामें धर्म और आत्माका कल्याण समझे. सच्च कामोंपर अरुचि, और कूकामों पर रुचि जगे, यह सव अणाण दोप (अज्ञान दोप) नामे रौद्र ध्यानीके लक्षण जाणना.

चतुर्थ पत्र-"अमरणांत दोप."

४'अमरणात दोप सो"-रौद्र ध्यानीका वज्र जैसा कठिण हृदय होताहै, दूसरेके सुख दुःखकी उसे विलकुलही दरकार नहीं रहती है, वो फक्त अपनाही सुख चाहताहै; अपने से अधिक दूसरेको देख दुःखी होवे, और उसके यश सुख का नाश करनें अनेक उपाय करे. निर्दयता क्रूर परिणाम से त्रस थावरका वध (घात). करे. उनको तरासते

तडफते देख खुशी होवे, ज्यादा २ संताप उपजावे. निडर निष्ठूर, पाप-अकार्य करना बिलकुलही अचकाव नहीं, झूट बोलना डरे नहीं, चोरीसे हटे नहीं. मैथुन कियामें अति असक्त (लुब्ध) परिग्रहकी अत्यंत मूर्छा, क्रोध मान, माया, लोभ की अति प्रबलता. राग द्वेशका घर. महा क्लेशी, चुगलखोर, गुणीके गुण को ढांकनेवाला, उनके शिर खोटा आल (बज्जा) देनेवाला, अपनी वस्तुपे अत्यंत प्रेमी दूसरेकी वस्तु का अत्यंत ईर्षी, दगाबाज, उपर मीठा और मनमें खोटा. कुगरु, कुदेव, कुधर्मपे श्रद्धा, प्रतीत, आसता रखनेवाले; इत्यादि अष्टादश [१८] पापमें अनुरक्त, धर्मका नाम मात्र अच्छा नहींलगे, मृत्युके. बीछोनेपे पडा (मृत्यु नजीक आयेपर) भी, अपने किये हुये कर्म का बिलकुलही पश्चाताप नहीं होवे; एसा कठोर. धर कुटुंबमेंही अत्यंत लुब्ध, ऐसे भावसहीत प्राण छोड (मरके) अन्यगतिमें सिधावे सो असरणांत दोष नामे लक्षण जानना.

"रौद्रध्यानके-पुष्प और फल."

रौद्र ध्यानीके सदा क्रूर परिणाम रहते हैं, मत्सरभर से पूर्ण हृदय भग होता है. अहो निदा पापिष्ट.

विचारही मनमें रमण करता है, जिससे वज्र कर्मोंका बंध सदा होताही रहता है. इसकी आत्मासे धर्म कर्म बिलकुल नहीं बनता है. जो देखा देख किया भी तो क्रूर प्रकर्तीके सबबसे उसका अच्छा फल नष्ट होजाता है. हाथमें कुछ नहीं आता है, अर्थात् उसके विचारसे कुछ होता नहीं है. होणहार हो तब तो हुवाही रहता है. परंतु उसके मलीन परिणामसे उसके कर्मोंका बन्ध अवश्य पडता है, और उन कनिष्ट कर्मोंका बदला देने, रौद्र ध्यानीकी नरक गती होती है. वहां यहांके किये हूये कर्मोंके फल भुक्तता है! परमाधामी [यम] देव, हिंसा करनेवालेकों-जैसी तरह उसने हिंसा करी होय वैसेही वो मारते हैं. अर्थात् काटनेवालोको काटते हैं. छेदनेवालेका छेदन भेदन करते हैं. सिंह सर्प, बिच्छू, कीडे, मच्छर वगेरे क्षूद्र जीवोंके घातकको, क्षूद्र जीवोंके जैसा रूप धारण कर उसे चीर फाड खाते हैं; मांस भक्षीको खिलाते हैं. मदिरा पानीको उकलता २ सीसा, तरूवा, तांबा पिलाते हैं. विषय लुब्धीको अग्नि मय लोह पुतलीके साथ संभोग कराते हैं. रागणीयोंके रसीये कान, रूप लुब्धकी आँख, गंध विलासीका नाक, जिव्हाके लोलपीकी जीव्हाका छेदन भेदन करते हैं. ताते खारे पाणीसे

भरी हुइ 'वैतरणी' नदीमे न्हलाते हैं. तरवारकी धार सेभी अतितीक्षण पत्र वाले शाल्मली वृक्ष तले बेठा के हवा चलाते हैं. कुंभी पाकमें पचाते हैं. कसाइयों की तरह शरीर के तिल २ जितने टूकडे करते हैं. इत्यादि कर्म उदय आते हैं, तब * सागरो वंधतक रो २ के दुःख भोगवते हैं. छूटने मुशकल होजाते हैं. ऐसा यह रौद्र ध्यान दो.नो भवमें रौद्र [भयंकर] दुःख दाता जाणना.

रौद्र ध्यानीके बहुधा कृष्ण लेश्या मय परिणाम रहते हैं. यह हिंसा, झूट, चोरी; मैथुन, परिग्रह यह पंच आश्रव तथा मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, अशुभ जोग यह पंच आश्रव, का सेवने वाला, ज्यूं कर्मोके फल भोगवता अशुद्ध परिणामके योग्य से पीछा वैसेही कर्मोका बंध करता है. यों भवांतरकी श्रेणीमें परिभ्रमण कियाही करता है. रौद्र ध्यानीका संसारसे छूटका होना बहुतही मुशकिल है. अनंत संसार रूलता है. इस लिये यह रौद्र ध्यान 'हेय'

* चार कोसका ऊंडा और चौरस कूवेमें, देव कुरुक्षेत्रके युगलीयोंके बाल औसमें डाले नहीं ऐसे बारीक कतरके ठसो ठस भरे. और सौसौ वर्षमें एकेक रज निकालने से खाली होजावे उतने वर्षका एक पल्योपम होता है. और दस क्रोडाक्रोडी कूवे खाली होवे. उतने वर्षका एक सागरोपम होता है.

त्यागने योग्य हैं.

"दोनो समुच्चय"

यह आर्त और रौद्रध्यान, अष्टादश पापसे भरे हुये, महा मलीन, सत्पूर्षोंके निंदनिय, अनाचरणीय हैं. यह दोनो ध्यान विना अभ्याससे पूर्व कर्मोदयसे स्वभाविकही उत्पन्न होते हैं; और कर्मोंकी प्रवलता रहती है वहांतक, निरंतर हृदयमें रमन करतेही रहते हैं. उच्चस्थान प्राप्त हुये वडे २ ज्ञानी ध्यानी तपी, संयमी, मुनिको यह प्राप्त होके एक क्षणमें पाताल गामी बणादेते हैं, ऐसे ये प्रवल हैं; मोक्षमार्ग में अ-गला (भोगल) समान आड आके अटकाने वाले हैं, सद्वृत्तिका नाश करनेवाले हैं. कलंक जैसे काले, काम जैसे विपारी, पापवृक्षके वीज हैं. अन्य द्रव्यादि-कका छोडना सहज है, परंतु इनसे वचना वहुतही मुशकील है. इनका पराजय (नाश) तो एक प्रवल प्रतापी महा मुनीराजही करके अनंत अक्षय अव्यावाध मोक्षके सुख प्राप्त करते हैं.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदा य के वाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलक ऋषि जी रचित 'ध्यान कल्पतरु' ग्रंथकी द्वितिय-शाखा रौद्रध्यान नामे समाप्त.

भरी हुइ 'वैतरणी' नदीमें न्हलाते हैं. तरवारकी धार सेभी अतितीक्षण पत्र वाले शाल्मली वृक्ष तले बैठा के हवा चलाते हैं. कुंभी पाकमें पचाते हैं. कसाइयों-की तरह शरीरके तिल २ जितने टूकडे करते हैं. इ-त्यादि कर्म उदय आते हैं, तब * सागरो पंधतक रो २ के दुःख भोगवते हैं. छूटने मुशकल होजाते हैं. ऐसा यह रौद्र ध्यान दोनो भवमें रौद्र [भयंकर] दुःख दाता जाणना.

रौद्र ध्यानीके बहुधा कृष्ण लेश्या मय परिणाम रहते हैं. यह हिंसा, झूट, चोरी; मैथुन, परिग्रह यह पंच आश्रव तथा मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, अशुभ जोग यह पंच आश्रव, का सेवने वाला, ज्यूं कर्मोके फल भोगवता अशुद्ध परिणामके योग्य से पीछा वैसेही कर्मोका बंध करता है. यों भवांतरकी श्रेणीमें परिभ्रमण कियाही करता है. रौद्र ध्यानीका संसारसे छूटका होना बहुतही मुशकिल है. अनंत संसार रुलता है. इस लिये यह रौद्र ध्यान 'हेय'

---

* चार कोसका ऊंडा और चौरस कुवेमें. देव कुरुक्षेत्रके जुगलीयोंके बाल ऑग्मके डाल नहीं बटके ऐसे बारीक करके ठसो ठस भरे. और सोसो वर्षमें एकेक रज निकाले सो खाली होजावे उतने वर्षका एक पल्योपम होता है. और दश कोडाकोडी कुवे खाली होवे. उतने वर्षका एक सागरोपम होता है.

त्यागने योग्य है.

"दोनो समुच्चय"

यह आर्त और रौद्रध्यान, अष्टादश पापसे भरे हुये, महा मलीन, सत्पूर्षोके निंदनिय, अनाचरणीय हैं. यह दोनो ध्यान विना अभ्याससे पूर्व कर्मोदयसे स्वभाविकही उत्पन्न होते हैं; और कर्मोकी प्रवलता रहती है वहांतक, निरंतर हृदयमें रमन करतेही रहते हैं. उच्चस्थान प्राप्त हुये वडे २ ज्ञानी ध्यानी तपी, संयमी, मुनिको यह प्राप्त होके एक क्षणमें पाताल गामी वणादेते हैं, ऐसे ये प्रवल हैं; मोक्षमार्ग में अर्गला (भोगल) समान आडे आके अटकाने वाले हैं, सदवृत्तिका नाश करनेवाले हैं. कलंक जैसे काले, काम जैसे विपारी, पापवृक्षके वीज हैं. अन्य द्रव्यादिकका छोडना सहज है, परंतु इनसे वचना वहुतही मुशकील है. इनका पराजय (नाश) तो एक प्रवल प्रतापी महा मुनीराजही करके अनंत अक्षय अव्यावाध मोक्षके सुख प्राप्त करते हैं.

परम पुज्य श्री कहानजी ऋपिजी महाराजके सम्प्रदाय के वाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलक ऋपि जी रचित 'ध्यान कल्पतरु' ग्रंथकी द्वितीय-शाखा रौद्रध्यान नामे समाप्त.

उपशाखा-शुभध्यान.

मोक्ष कर्म क्षया देव, ससम्यग्ज्ञानतः स्मृतः
ध्यान साध्यं मतं तद्धि, तस्मात् द्धितमात्मनः

भावार्थम्–मोक्ष कर्मके क्षय होनेसे होता है. कर्म क्षय सम्यग् ज्ञानसें होते हैं, और सम्यग् ज्ञान शुभ ध्यानसे होना है; इस लिये मुमुक्षुओंको ध्यानही आत्म कल्याणका हेतू है.

प्रथम शाखा-"ध्यानमूल"

इस जगत् में दो वातों अनादिसे चली आती है; एक अच्छी, और दूसरी उसके प्रतिपक्षकी बुरी [खराव] एककसें एककी पहचान होती है. जैसे रात्रिसे दिनकी, और दिनसे रात्रिकी; शीतसे उष्णकी और उष्णसे शीतकी; आचारीसे व्यभिचारीकी और व्यभिचारीसे आचारीकी इत्यादि. सर्व पदार्थोके गुणकी परिक्षा कर, दशवैकालिकजी सूत्रके फरमाने मुजब " जं सेयंतं समायरे " अर्थात् जो श्रेय-कल्याण-

कर्ता अच्छे मालम पडे उसेही अङ्गीकार करे,स्वीकारे.

अशुभ ध्यानमें प्रवृति तो विना प्रयास स्वभा विक रीतसेही होती है. क्यों कि उसका अनादि स-म्बंध है. परंतु शुभ ध्यानमें प्रवृति होनी बहुतही मु-शकिल है. क्यों कि कोइभी शुभ कार्य सहजमें नहीं वनता है. जैसे किसी विषके प्रयोगसे अचेत हुवा पु-रुष किंचित विष दूर होनेसे चैतन्यताका अवलम्बन होवे है, तथा जैसे प्रचुर निद्रा में सूता हुवा पुरुप एक देश निद्राका अभाव होनेसे कुछ स्मरण शक्ति-वंत होवे है. ओर जैसे पित्तादि विकार करि मूर्छित पुरुप के विकार अंत-किंचित दूर होनेसे कुछ चैतन्य ता प्रकटे है. तैसेही निगोदादि एकेन्द्रिय पर्याय में अनंतानन्त काल परिभ्रमण करते को अकाम [विन-मन-परवश्यपने] कष्ट सहन करने किंचित कर्मांश पत-ला पडनेसे द्वीन्द्रिआदि त्रस पर्याय की प्राप्ति होती है. ओर फिर कर्मोंकी अधिकता होनेसे निगोदादि में चले जाते हैं, यों अनन्तान्त वक्त आवा गमन करते२ अति कठिणतासे अनन्तान्त पुण्यों की वृद्धि होते पं-चेन्द्रिय की पर्याय पर्यंत जीव आता है. ओर पंचे-न्द्रिय होय करभी क्रूर कर्मोंका आचरण कर पीछा निगोदादि में चला जाताहै. तथा पंचेन्द्रियही बना रह

तो नरकादिमें असंख्य काल व्यतीत करे है. यों अनन्तान्त दुःख भोगवते २ ज्यों ज्यों अशुभ कामांस घटता जाय पुण्यांश की वृद्धि होती जाय त्यों त्यों जीव घुणाक्षर * न्यायवत् मनुष्य पनेमें समुत्पन्न होता है. तिसमें भिआर्य क्षेत्र,उत्तम कुल, पूर्ण इन्द्रियइत्यादि सामग्री मिलना बहुतही मुशकिल है, सोभी पुण्योदयसे प्राप्त होजाय; तोभि शुभ ध्यानकी लायकंता प्राप्त होनि बहुतही मुशकिल है. क्योंकि जिस आत्मामें अनादि भव्य सिद्धताका गुन होता है, उस हीका आत्मा कषाय मलको विशुद्ध कर सम्यक्त्व रत्न को प्राप्त करसक्ता है. वोही आत्मा अनादिसे प्रवर्त हुवे स्वाभाविक रूप आर्त रौद्र ध्यानका स्वरूप जान उससे अपनी आत्माको भिन्न-अलग कर शुभ ध्यानकी योग्यता को प्राप्त होता है. इसलिये शुभ ध्यानके लिये अव्वल सम्यक्त्वकी जरूर है, क्यों कि सम्यक्त्वी ही शुभ ध्यान में प्रवेश करने समर्थ होते हैं. इसलिये अव्वल यहां सम्यक्त्वकी दुर्लभता बताते हैं.

* जैसे-कोइ घुण नामक जीव काष्ट में उत्पन्न होकर उसके भक्षण के लिये उसे कोरते सहज में ही किसी अक्षर का आकार कोरा जाय है. तैसे जीवको मनुष्य पर्यायाकि प्राप्ति होय है.

सम्यग दर्शन उपजता है सो आनादि वासादि मिथ्यात्वकि उपजता है. परन्तु संज्ञी-पर्याप्ता-मंदकषायी, भव्य,गुण दोषके विचारयुक्त, सकार उपयोगी (ज्ञानी) और जाग्रत अवस्था वाला; इन गुणयुक्तको सम्यग् दर्शनकी प्राप्ति होती है; परं इनसे उलट-असंज्ञी, अप्रर्याप्ता, तीव्रकषायी, अभव्य, दर्शनोपीयोगी, मोह निद्रासे अचेत और संमुर्छिम, इनकों नहीं उपजता है. और पंचमी करण लब्धी भी जो उत्कृष्ट करण लब्धी अनिवृति करण उसके अंत समयमें प्रथम उपशम सम्यक्त्व प्रगट होता है.

"पंचलब्धि"

१ क्षयोपशम लब्धि, २ विशुद्ध लब्धि, ३ देशना लब्धि, ४ प्रयोग लब्धि, और ५ मी करण लब्धि, इन पंच लब्धियोंकी यथाक्रम प्राप्ति होनेसेही, सम्यग् दर्शनकी प्राप्ति होती है. चार लब्धि तो कदाचित भव्य तथा अभव्य के भी होती है. परन्तु करण लब्धि तो जो सम्यक्त्व और चारित्रकों अवश्य प्राप्त होनें वाले हैं उन्हेही होवेंगा.

अब "पंचलब्धिका स्वरूप" बताते हैं

१ जिस वक्त ऐसा जोग बनें की, जो ज्ञानावर्णि

आदिक अष्ट कर्मकी सर्व अप्रशस्त प्रकृतिकी शक्ति. का जो अनुभाग, सो समय २ प्रते अनंत गुण कमी होता अनुक्रमें उदय आवे; तब क्षयोपशम लब्धीकी प्राप्ति होवे. २ क्षयोपशम लब्धिके प्रभाव से जीवके साता वेदनिय आदी शुभ-प्रकृतीके बन्धका कारण धर्मानुराग रूप शुभ परिणामकी प्राप्ति होवे, सो दूसरी विशुद्ध लब्धि. * ३ छे द्रव्य नव पदार्थका स्वरूप, आचार्यादिकके उपदेश से पेछाणें, सो देशना लब्धि.§ यह तीन लब्धि कर संयुक्त जीव समय २ विशुद्धता की वृद्धि कर, आयु विन सात कर्मकी अंतः कोटा कोटी सागर मात्र स्थिती रहे; उस वक्त जो पूर्व स्थिति थी उसे एक कांडक घात (छेद) कर उस कांडके द्रव्यकी शेष रही हुइ स्थिति विशेष निक्षेपण करे, और घातिक कर्मका, अनुभाग, (रस) सो काष्ट तथा लता रूप रह, परं शैल (पर्वत) स्थिति रूप नहीं. औ

---

* अशुभ कर्मोका रसोदय घटनेसे संक्लेश प्रणाम की हानी होवे, तब विशुद्ध प्रणाम की वृद्धी स्वभावेही होती है.

§ नरकादि स्थानमें उपदेशक नहीं हैं, वहां पूर्व जन्मके और सत्यके संस्कार से व परमाधामी देव के उपदेशसे सम्यक्त्व होता है.

र अघाती कर्मका, अनुभाग, नींब या कांजी रूप रहे. परं हलाहल विष रूप नहीं. पूर्वे जो अनुभाग था उसे अनंत का भाग दे, बहुत भाग अनुभागका छेद, शेष रहा अनुभाग विषय प्राप्ति करे हे. उस कार्य करनेकी योग्यताकी प्राप्ति, सो "प्रयोगता लब्धि" * और भी संक्लेश परिणाम सज्ञी पंचेन्द्रि पर्याप्ताके जो संभवे, ऐसे उत्कृष्ट स्थिति वन्ध, और उत्कृष्ट स्थिति अनुभाग का सत्व होतें जीवके प्रथम उपशम सम्यक्त्व नहीं ग्रहण होवे हे. तथा विशुद्ध क्षपक श्रेणी विषे संभव ते ऐसा जघन्य स्थिति वन्ध और जघन्य स्थिति अनुभाग प्रदेशका सत्व होतें भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होवें, प्रथम उपशम सम्यक्त्व के सन्मुख हुवा जो मिथ्या द्रष्टी, सो विशुद्धताकी वृद्धि कर वधता हुवा प्रयोग लब्धिके प्रथम समयसे लगाके पूर्व स्थिति के संख्यातवे भाग मात्र अंतः (एक) कोटा कोटी सागर परिणाम आयुष्य बिन सात कर्मका स्थिती वन्ध करे हे, उस अंतः कोटा कोटी सागर स्थिति वन्धके पल्य के संख्यात वा भाग मात्र कमी होते, स्थिती वन्ध अंतर्मुहूर्त पर्यंत सामान्कता केलिये करे हे; ऐसे

---

* यह प्रयोगता लब्धि भव्य अभव्यके सामान्य होवे हे

क्रमसे संख्यात स्थिति बंध श्रेणी कर पृथक् (७०० तथा ८००) सागर कम होवे हैं, तब दूसरा प्रकृती बन्धाय श्रेणीस्थान होवे, ऐसेही क्रमसे इत्ना स्थिति बन्ध कमी करते एकेक स्थान होवे. यों बन्धके ३४ * श्रेण्णी स्थान होते हैं. इसमें लगाके प्रथम उपशम सम्यक्त्व तक बंध नहीं होवे (यहांतक चौथी लब्धि) ५ पांचमी करणलब्धि सो भव्य जीवकेही होती है, इसके ३ भेद-१ अधःकरण, २ अपूर्व करण, ३ अनिवृति करण[:]. इनमें अल्प अंतर महूर्त प्रमाणे काल तो अनिवृतीकरण का है, इससें संख्यात गुणाकाल अपूर्व करणका; और इससे संख्यात गुणाकाल अधः प्रवृति करणका होता है, सो भी अंतर महुर्त प्रमाणें होहै.[!] और भी इस अधः प्रवृति करण कालके विषय अतीतादि त्रिकाल वृर्ती अनेक जीव संवन्धी इस करणकी विशूद्धता रूप परिणाम असंख्यात लोक प्रमाणें हैं, वो परिणाम अधः प्रवृती करणके, जिते समय हैं उतेमें सामान वृद्धि लिये समय २ में वृधि होते

* इसका विशेष खुलासा लब्धी सार ग्रन्थ मे है.

: करण कषाय की मंदता को कहते हैं.

! अंतर मुहुर्त के भेद असंख्य हैं.

है, इससे इस करणके नीचेके समयके परिणामकी संख्या और विशुद्धता उपर के समय वर्ती किसी जिवके परिणाम से मिले है, इसने इसका नाम अ-धःप्रवृतिक है. इस अधः प्रवृति करण के चार आव-श्यक-१समय २ प्रते अनंतगुण विशुद्धता की वृद्धि. २ स्थिति बन्ध श्रेणी, अर्थात् पहले जित्ने परिमाण लिये कर्मका स्थिति बन्ध होताथा, उसे घटावे २स्थि ती बंध करे. ३ साता वेदनिय आदि दे प्रशस्त कर्म प्रकृतिका समय २ अनंतगुण वृद्धि पाते गुड, सक्कर, मीश्री और अमृत, समान चतुस्थान लिये अनुभाग बन्ध है. ५ असाता वेदनीआदी अप्रशस्त कर्म प्रकृति, समय २ अनंतगुण कमी होती नींब, कांजी, समान द्वि स्थान लिये, अनुभाग बंध होता है. परन्तु हला-हल जैसा नहीं. यह ४ आवश्यकजाणने.

२ अधः प्रवृति करणका अंतर मुहूर्त काल व्यतीत भये, दूसरा अपूर्व करण होता है. अधःकरणके परि-णाम से, अपूर्व करणके परिणाम असंख्यात लोक गु-णें हैं, सो बहुत जीवोंकी अपेक्षा से; परन्तु एक जी व की अपेक्षासे तो एक समय में एकही परिणाम हो-ता है; और एक जीवकी अपेक्षासे तो जित्ने अंतर मुहुर्त के समय हैं उत्नेही होते हैं. ऐसेही अधःकरण

के भी एक समय मे एक परिणाम होवे हे.और बहोत जीवकी अपेक्षासें असंख्य परिणाम जाणनें. अपूर्वकरणकेभी परिणाम समय २ सदश कर वर्धमान होते हें. इस अपूर्व करणके परिणाममें नीचेके समयके परिणाम तुल्य उपरके समयके परिणाम नहीं हें. प्रथम समयकी उत्कृष्ट शुद्धतासेद्वितिय समयकी जघन्य शुद्धता अनंत गुणि हे. ऐसे परिणाम अपूर्व पणा हे. इसलिये इसका अपूर्व करण नाम हे.

अपूर्व करणके पहले समय से लगके अंतः समय तक अपने जघन्यसे अपना उत्कृष्ट, और पूर्व समयके उत्कृष्टसें उत्तर समय के जघन्य, यों कर्मके परीणामें अनंतगुणी विशुद्ध लिये, सर्पकी चालवत् जाणना. यहा अनुकृष्टी नहीं हें. अपूर्व करणके पहले समयसे लगाके जवत् सम्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी का पूर्ण काल जो जिस कालमें गुण संक्रमण कर, मिथ्यात्व को सम्यक्त्व मोहनी, मिश्र मोहनी, रुप परगमावें, उस कालके अंत समय पर्यंत-१ गुण श्रेणी,२ गुण संक्रमण, ३ स्थिति खंड, ४ और अनुभाग खंडन यह चार आवश्यक होवें, और भी स्थिति बंध श्रेणी है सो अधः करणके प्रथम समय से लगा गुण संक्रमण पूर्ण होनेके कालपर्यंत होवे हे. यद्यपि प्रयोग

लब्धिसेही स्थिति वन्वके श्रेणी होतीहै, तथापि प्रयोग लब्धिसे सम्यक्त्व होनेका अनवस्थित पना है यह नियम नहीं; इसलिये ग्रहण नहीं किया. और भी स्थिती वन्ध श्रेणीका काल, और स्थिती कांड कान्डोत्करणका काल यह दोनों सामान अंतर मुहुर्त माल है. वहां पूर्व वंधाथा ऐसा सत्तामें कर्म परमाणु रूप द्रव्य उसमेसे निकाले जो द्रव्य गुण श्रेणीमें दीये, उस गुण श्रेणी- के कालमें समय २ में असंख्यात गुणा अनुक्रम लिये पंक्तिवंध जो निर्जरा का होना, सो गुण श्रेणी निर्जरा है. २ और भी समय२ प्रते गुणाकारका अनुक्रम ते व्यवक्षित प्रकृति के परमाणु पलट कर,अन्य प्रकृति रूप होके परिणमें सो गुण संक्रमण. ३ पूर्व वन्धीथी वो सत्ता में रही कर्म प्रकृतिकी स्थितिका घटाना सो स्थिति खन्ड है. ४ और पूर्व वन्धे थे ऐसे सत्तमें रहा हुवा अशुभ प्रकृतिका अनुभाग घटना, सो अनुभाग खन्डन. ऐसे चार कार्य अपूर्व करणमें अवश्य होते हैं.

अपूर्व करणके प्रथम समय सम्बन्धी प्रशस्त अप्रशस्त प्रकृतिका जो अनुभाग सत्व है, उससे उसके अंत समय विषे प्रशस्त प्रकृतिका अनंतगुण वृद्धि होना, और अप्रशस्त प्रकृतिका अनंतगुण रुमी हो-

ता, अनुभाग सत्त्व होता है; सो समय २ प्रती अनंतगुण विशुद्धता होनेसे, प्रशस्त प्रकृतिका अनंत गुणा अनुभाग कान्डका महात्म कर, अप्रशस्त प्रकृतीके अनंत में भाग अंत समयमेंसंभवता है. ※

ऐसे अपूर्व कर्ण विषय कहे जो स्थिती कान्डादि कार्य सो विशेष तो तीसरे अनिवृति करण विषय जाणना. विशेष इत्ना हैकि यहां समान समय वर्ती अनेक जीवके सदृस प्रणामही हैं. इस लिये जितने अनिवृति करणके अंतर महुर्तके समय हैं, उत्नेही अनिवृति करणके परिणाम हैं. इससे समय २ प्रते एकेकही परिणाम हैं, और जो यहां स्थिति खन्डन, अनुभाग खन्डादिकका प्रारंभ औरही परिमाण लिया होता है, सो अपूर्व करण सम्बंधी जो स्थिति खंडादिक उसके अंत, समयही समाप्त पना हुवा.

यहां यह प्रयोजन है कि-जो अनिवृति करण के अंत समय विषे, दर्शन मोहनी और अन्तानु बन्धी चतुष्क, इनकी प्रकृति, स्थिति, प्रदेश, अनुभाग, का समस्त पने उदय हे.नेको अयोग्यता रूप उपसम

※ इन स्थिति खन्डादि होनेका विशेष अर्थ।कारमें। हैं परंतु यहां ग्रन्थ गौरवके लिये नहीं लिखा.

होनेसे, तत्वार्थकी श्रद्धान रूप सम्यक्त्व होता है वो ही उपशमिक सम्यक्त्व है.

सूत्र—सम्यग्दृष्टि श्रावक विरतानन्त वियोजक दर्शन मोह क्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपक क्षीण मोह जिनाः क्रमशोऽसङ्ख्येय गुणनिर्जरा
तत्वार्थ सूत्र अ० ९

अर्थ—प्रथम उपशम सम्यक्त्व की उत्पत्तिके अनिवृत्ति करणे के अंत समय में वर्त्तता विशुद्धता कर विशुद्ध जो सातिशय मिथ्या दृष्टी उसके आयु कर्म विन सप्त कर्मकी निर्ज्जरा का जो गुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य असंख्यातगुणाहैं. १उससे असंयति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान को प्राप्त होतेही अंतर्मुहूर्त पर्यंत समय २ असंख्यात गुणकार कोलिये गुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है. २, उससे देशवृत्ति गुणस्थानके अंतर्मुहूर्त पर्यंत निर्ज्जरा होने योग्य कर्म पुद्गल रूप गुण श्रेणी द्रव्य असंख्यात गुणा है ३, उनसे सकल संयम ग्रहण करनेके आदिका अंतर्मुहूर्त पर्यंत समय २ असंख्यात गुणाकार रूप कर्मकी निर्ज्जरा होने योग्य द्रव्य असंख्यात गुणा है. [†]४,

[†] यह सप्तम अप्रमत संयत नाम गुणस्थानी के होता है. क्योंकि छठा प्रमत्त संयती गुणस्थानतो सप्तमें से पढे हुवे को होता है.

ता, अनुभाग सत्त्व होता है; सो समय २ प्रती अनंतगुण विशुद्धता होनेसे, प्रशस्त प्रकृतिका अनंत गुणा अनुभाग कान्डका महातम कर, अप्रशस्त प्रकृतीके अनंत में भाग अंत समयमेंसंभवता है. *

ऐसे अपूर्व कर्ण विषय कहे जो स्थिती कान्डादि कार्य सो विशेष तो तीसरे अनिवृति करण विषय जाणना. विशेष इत्ना हैकि यहां समान समय वर्ती अनेक जीवके सदृस प्रणामही हैं. इस लिये जितने अनिवृति करणके अंतर महुर्तके समय हैं, उत्तेही अनिवृति करणके परिणाम हैं. इससे समय २ प्रते एके कही परिणाम हैं, और जो यहां स्थिति खन्डन, अनुभाग खन्डादिकका प्रारंभ औरही परिमाण लिया होता है, सो अपूर्व करण सम्बधी जो स्थिति खंडादिक उसके अंत, समयही समाप्त पना हुवा.

यहां यह प्रयोजन है कि-जो अनिवृति करण के अंन समय विषे, दर्शन मोहनी और अनंतानु बन्धी चतुष्क, इनकी प्रकृति, स्थिति, प्रदेश, अनुभाग, का समस्त पने उदय हानेकी अयोग्यता रूप उपसम

* इन स्थिति खन्डादि होनेका विशेष अधीकारभी है परंतु यहां ग्रन्थ गौरवके लिये नहीं लिखा.

होनेसे, तत्वार्थकी श्रद्धान रूप सम्यक्त्व होता है जो ही उपशमिक सम्यक्त्व है.

सूत्र—सम्यग्दृष्टि श्रावक विरतानन्त वियोजक दर्शन मोह क्षपकोपशमकोपशान्तमोहक्षपक क्षीण मोह जिनाः क्रमशोऽसङ्ख्येय गुणनिर्जरा

तत्वार्थ सूत्र अ० ९

अर्थ—प्रथम उपशम सम्यक्त्व की उत्पत्तिके अनिवृत्ति करणे के अंत समय में वर्त्तता विशुद्धता कर विशुद्ध जो सातिशय मिथ्या दृष्टी उसके आयु कर्म विन सप्त कर्मकी निर्ज्जरा का जो गुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य असंख्यातगुणाहैं. १ उससे असंयति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान को प्राप्त होतेही अंतर्मुहूर्त पर्यंत समय २ असंख्यात गुणकार कोलिये गुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है. २, उससे देशवृत्ति गुणस्थानीके अंतर्मुहूर्त पर्यंत निर्ज्जरा होने योग्य कर्म पुद्गल रूप गुण श्रेणी द्रव्य असंख्यात गुणा है ३, उनसे सकल संयम ग्रहण करनेके आदिका अंतर्मुहूर्त पर्यंत समय २ असंख्यात गुणाकार रूप कर्मकी निर्ज्जरा होने योग्य द्रव्य असंख्यात गुणा है. [*]४,

[*] यह सप्तम अप्रमत्त संयम नाम गुणस्थानी के होता है क्योंकि छठा प्रमत्त संयती गुणस्थानतो सप्तमें से पड़े हुवे को होता है.

४उनसे * अनंतान वंधी आदि द्वादश कषाय, नव नोकषाय परिणमन करावे तीन करणके प्रभावसे उनके असंख्यात गुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य है५, † उनसे दर्शन मोहको क्षपावनेवालेके गुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य असंख्यात गुणा है ६,उनसे अपूर्व करणादि तीन गुण स्थानी कषायके उपशम करनेवालेकेगुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य असंख्यातगुणा है७,उनसे उपशांत कषाय गुणस्थानी सकल मोहनीय को उपशम कीया उनके गुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य असंख्यात गुण है ८, उनसे क्षपक श्रेणी वाले अपूर्व करणादि तीन गुणस्थान वाले के गुण श्रेणी निर्जरा द्रव्य असंख्यात गुण है ९. और उनसे केवली जिनेस्वर के गुण श्रेणी निर्ज्जरा द्रव्य असंख्यात गुण है १०.

इन दश स्थान को प्राप्त होय उनके आदिके अंतर्मुहूर्त पर्यंत परिणामकी विशुद्धताकी अधिकता

---

*अनंतानु बंधीकी विसंयोजना अविरत देशविरत,प्रमत्त संयति अप्रमत्त संयति इन चार गुणस्थानमें होयहै.जिस गुणस्थानमें विसंयोजना करे.यहाँ अंत मुहूर्त पर्यंत समय२ असंख्यात गुणी निर्ज्जरा होती है.

† दर्शन मोहका क्षपना करणत्रयके समर्थ श्रुत केवली मनुष्य के अविरतादि चार गुणस्थान में होता है.

कर समय २ प्रति आयुविना सप्त कर्मोके प्रमाणु द्रव्योंकी निर्ज्जरा होती हे. यहां निर्ज्जरातो स्थान२ प्रति असंख्यात गुणी हे, और निर्ज्जरा होनेका काल स्थान २ प्रत असंख्यात वे भाग घटता २ हे. यों ज्यों ज्यों कषाय की मंदता रूप परिणामों की विशुद्धता में आगे २ वढते जाते हैं, त्यों त्यों ज्ञानादि निजात्म गुणका प्रकाश अधिक २ वढते जाते हैं. त्यों त्यों अधिक २ ध्यान की योग्यता - लायकना के योग्य आत्मा होता है. और इन सिवाय ज्ञानार्णव ग्रंथ में ध्यानीके ८ लक्षण कहे हैं.

श्लोक—मुमुक्षुर्जन्म निर्विण्णः शान्तचित्तोवशीस्थिरः;
जिताक्षः संवृतोधीरो, ध्याता शास्त्रेप्रशस्यते.

अर्थ १ मुमुक्षु अर्थात् मोक्ष जाने की जिसे अभीलापा होवेगा वोही ध्यानका कष्ट सहेगा; आत्म निग्रह करेगा. २ विरक्त-जिनका पुद्गल परिणित सुखोंसे वृत्ति निवृत्ति हे उन्हीके प्रणाम ध्यानमें स्थिरता करेंगे, ३ शांतवृति-जो परिसह उपसर्ग उपनेशांत परिणाम रखेंगे, वोही ध्यानका यथातथ्य फल प्राप्त करसकेंगे, ४ स्थिर स्वभावी-जो मनादि योगोंका कुमार्ग से निग्रह कर, ध्यानमें वृत्तिको स्थिर करेंगे, वोही ध्यानी हो सकेंगे, ५ स्थिरासनी-जिसस्था न;

ध्यानस्थ हो वहांसे चल विचल न करे; व ध्यानके कालतक आसन बदले नहीं; वोही सिद्धासनी कहे जाते हैं, ६ जिताक्षा कहीये कांक्षा - वांछाको जीतने वाला अर्थात् जिसे किसी प्रकारके संसारिक सुखोंकी अभिलाषा नहीं होवे. तथा जितेंद्रिय-श्रोत्रादी पंच इंद्रियोंको, शब्दादि पंच विषयसें, रागद्वेषकी निवृत्ति कर, धर्म मार्गमें संलग्न करेंगे, वोही ध्यान सिद्धीको प्राप्त होवेंगे, ७ संव्रतात्मा जिनने अपणी अंतर आत्मको संव्रत कर,हिंसादि पंचाश्रवसे निववारी, अहिंसादि पंचमहाव्रत स्वीकार किये तथा अनादि परिणति रूप संसर्गकर, जो अंतःकरणकी वृतिकों विकार मार्ग में प्रवर्ति कराती हे उन वार्तियोंको अंतरिक ज्ञान आत्माकी प्रबल प्रेरणा कर निर्ताड, खान पान की ❀ लोलुपता त्यागी, वोही ध्यान सिद्धि करसकेंगे. ८ धीर होय–अर्थात् ध्यानस्त हुये फिर कैसाभी

❀ एकदम लोलुपता घटनी मुशकिल है, इस लिये थोडी२ लोलुता घटानेका सदा अभ्यास रखना चाहीये, जैसे यह वस्तु नहीं खाइतो क्या! यह वस्त्र नहीं पहरा तो क्या! यह काम अव्वल तो मुशकिल लगेगा, परंतु फिर सहज होजायगा यों सर्व वस्तु उपरसे लोलुता घटानेकी यह बहुत सहजकी रीती है. यों करनेसे कोइ वक्त निर्ममत्वताको प्राप्त होसके हैं.

कठिण परिसह उपसर्ग आनेसे बिलकुल ही परिणामोंको चल विचल नहीं करें. क्यों कि ध्यान में प्रवेश करते पहिले "अप्पाणं वोसिरामि" अर्थात् में इस शरीरको वोसीराता हूं-इसकी ममत्व छोडता हूं, यह शरीर मेरा नहीं, में इसका नहीं, ऐसा कहके बेठते हैं: तो जब यह शरीर अपनाही नहीं, तो फिर इसका भक्षण करो, दहन करो या छेदन भेदन करो, कुछ भी करो, अपनेको क्या फिकर. ऐसा निश्चय होय, तबही ध्यानकी सिद्धीको प्राप्त हो सक्ता है. ध्यान किया सो कर्मका क्षय करने किया, और कर्मका क्षयतो विना उपसर्ग, विना दुःख देखे नहीं होता है, जो परिसह उपसर्ग पडेहैं, वो कर्मका क्षय करनेही पडे हैं. ऐसे कर्ज चुकाती वक्त पीछा नहींजहटना. ऐसा दृड निश्चयसे धैर्य धारणसेही ध्यान सिद्ध होता है. इन आठगुणोंके धारने वालेही ध्यान सिद्धिको प्राप्त होते हैं. ऐसा जाण शुभध्यान करनेवाले मुमुक्षु जनोंको पहले अष्टगुण क्रमसे अभ्याससे प्राप्त करने चाहिये.

द्वितीय उपशाखा-"शुभध्यान विधि:"

कोई भी कार्य यथा विधि करने से इष्ट कार्य को

शीघ्र सिद्ध करता है, इस लिये यहां मोक्ष कार्य की सिद्धि करने वाला जो ध्यान है उसके करने की विधि बताते हैं:-

दुहा-क्षेत्र द्रव्य काल भाव यह, शुभाशुभ वसु जान;
अशुभ तजी शुभ आचरी, ध्या ध्याता धर्म ध्यान;

१ क्षेत्र, २ द्रव्य, ३ काल, और ४ भाव, यह ४ शुभ-अच्छे; और ४ अशुद्ध-खोटे. यों ८ भेद होते हैं. जिसमेंसे ४ अशुद्धको त्याग कर, शुद्धका जोग मिलाके है ध्यान ध्याताओ ! शुद्ध-धर्मध्यान ध्यावो.

ध्यानमें मनको स्थिर करने क्षेत्र. द्रव्य. काल. भावकी शुद्धिकी बहुतही जरूर है. अव्वल क्षेत्रकी शुद्धाशुद्धि बताते हैं.

प्रथम पत्र-"क्षेत्र."

१ अशुद्ध क्षेत्र'- दुष्टराजाकी मालकीका क्षेत्र, अधर्मी, पाखंडी, म्लेंच्छ, कुलिंगी रहते हों; ऐसे क्षेत्रमें रहनेसे उपसर्ग उपजनेका संभव है. जहां पुष्प, फल, पत्र, घूप, दीप, या मदिरा, मांस, होवे ऐसे स्थानमें मन चंचल होनेका संभव है. जहां व्यभिचारी स्त्री पुरुष किडा करें, चित्राम किये होवे. काम क्रिडाके शास्त्रों का पटन होता होय. वाजिंत्र वजते होय. ऐसे स्था-

तमें, धिकार उत्पन्न होनेका संभव है. जहां युद्ध-मं-
ल्ल कुस्तीयां लडाई झगडे होते होवें. झगडेके शास्त्र
पढते होय. पंचायती करते होय, वहां विखवाद होने-
का संभव है. जहां अन्यके प्रवेश करनेकी मालिका
दिकने मना करी होय वहां रहनेंसे चोरी, क्लेश, और
स्थानसे निकालनेका संभवहै. जहां जुवा खेलते होय,
कैदी रहते होय, मद्य (दारू) मांस विकता होय,
पारधी रहता होय, सिल्पिक (करिगिर चमार, सो-
नार, लोहार, रंगारे, इत्यादि) रहते होय. वहां चि-
त्तविभ्रह होनेका संभव है. जहां नपुंसक, पशू (तिर्यंच)
कुलंछनी, भांड, नट, खट. इत्यादि अयोग्य रहते होय.
वहां, अप्रतीत होनेका संभव है. इत्यादि अयोग्य स्था-
न वर्जके ध्यान करे.

२ शुभ क्षेत्र=निर्जन स्थान—जहां विशेष मनुष्यादि-
की बस्तीयां आवागमन न होय. समुद्रके, तथा न-
दीके तट (किनारे) पर वृक्षोंके समोहमें, बेलीके
मंडपोंमें, पर्वतो की गुफामें. श्मशानोंकी छत्रियोंमें,
सूके झाडकी कोचरमें, शुन्य ग्राम या शुन्य गृह (घर)
में. वरोक्त (जो अशुद्ध क्षेत्रमें वर्ही उन) वावतोंसे
वर्जित देवालयमें. इत्यादि स्थान फ्रासुक (निर्जिव)
होय, वह ध्यान करने योग्य स्थान है. ऐसे स्थानमें

ध्यान करने से चित्तमें समाधी (शांती) रहती है.

द्वितीय पत्र-"द्रव्य."

३ 'अशुभ द्रव्य'-जहां अस्थि, मांस, रक्त, चर्म मेद चरबी और मृत्यूक जानवरोंके कलेवर, खान, पान, पक्कान, तंबोल, औषधियों, अतरादी तेल, शैय्या (पल्यंकादि), आसन, स्त्री पुरुषके शृंगारके वस्त्र भूषण कामासन, स्त्रीआदिके चित्र, इत्यादि द्रव्य होय, वहां ध्यानीयोंका चित्त स्थिर रहना, मनका निग्रह [वश] होना मुशकिल है.

४ शुभ द्रव्य-शुद्ध निर्जीव पृथ्वी-शिल्लापटपे-काष्टासन=पाठ बजोट (चौकी) पे. पारलके आसनपे ऊन, सूत, आदि शुद्ध वस्त्रपे ध्यानस्थ होनेसे परिणाम स्थिर रहनेका संभव है. ध्यान इच्छककों अहार थोडाकरे सो भी हलका [तांदुलदि] विशेष घृत मशालसे बनावार्जित, शीतादि कालमें, प्रकृतियोंको अनुकुल (सुखदाता) वक्तके और वजनके परिमाणयुक्त; निर्जीव, और निर्दोष, शुद्ध करनेसें चितको स्थिर

⊛ अप्फोव मंडवंमि झायइझोंवियासवे-उत्तरा०अ०१८ अर्थ-गर्दभाली मुनि अफोव (नागरवेल) के मंडपमें ध्यान ध्यारहे हैं. आश्रवहा त्यागके.

शक्ते हैं.

ध्यान इच्छकको आसन-मुख्यतो पद्मासन
पालखी घाल दोनो साथलोपे दोनो पग चडा दोनों
हाथ एकस्थान विकसे कमलके समकर, पेटके पास
नीचे रखके स्थिर होय] पर्यंकासन (पालखी घाल
बैठे) दंडासन (खडेरहे)ये तीन हैं. और तो वीरासन,
लगडासन. अम्बखुजासन, गोदूआसन, वगैरेसे इस
वक्त विशेष वक्त स्थिर रहना मुशकिल हैं. स्मरणा
तो तीन अंगलीयों [तर्जनी. मध्यमा. अनामिका *]
के नव वेंड (सन्धीरेखा) कों चार वक्त गिणनेसे
१२×९=१०८ एकसो आठ होते हैं. सोही उत्तम है.
: और माला तो मध्यम तथा कनिष्ट गिनते हैं. ध्या-
नी कों ध्यानमें स्थिर होते-नासाग्रदृष्टी मेखोनमेख
स्थिर कर, चित्रकी मूर्तिके जैसा स्थिर हो. निश्चल
हो, मुख फाडको ढीली छोड, चित्तको सर्व व्याधी
सर्व विकल्पसे मुक्त कर बैठनेसे, ध्यानकी सिद्धी शु
लभतासे होनेका संभव है.

* कनिष्ठा (छोटी अंगुलि) और अंगुष्ट छोडके.

: इसेही नोकरवाली कहते हैं. नकों मूंतादिकों.

तृतीय पत्र–"काल."

५ 'अशुभ काल'–[1]पहला, दूसरा, और तीसरा आरा माठेरा, [कुछकमी] तथा छट्टा आरा, इन में धर्मीजनोंके अभावसें ध्यान होनेका कम संभव है. और भी अती उष्ण काल, अती शीत काल, अती जीवोत्पतिका काल. दुष्काल. विग्रह काल. रोगग्रस्त काल, इत्यादि काल ध्यानमें विग्रह करनेवाले गिणे जाते हैं.

६ 'शुभ काल' ध्यानके लिये सर्वोत्तम काल तो चोथा आरा गिणा जाता है. क्यों कि उसमें वज्र ऋषभनराचादि संघेन और ध्यान करनेके अनुकूल जोगवाइयोंकी विशेषता थी. जिससे महान (मरणांतिक) संकट सहन करभी, अडोल [स्थिर] रहतेथे. इस पंचम कालमें संघेणादिककी न्युनतासे, उस मुजब ध्यान हो नहीं सक्ता है. तो भी सर्वथा नास्ती नही समझना, क्यों कि गुण कारक वस्तु तो हमेशा गुणही करती है; चौथे आरेमें सक्करमें ज्यादा मिठास होगा, और अब्वी काल प्रभावसे कमी पडगया हो-

---

[1] ये तीन आरा ध्यान साधनेके, लिये ही अशुद्ध हैं. और सिरह नहीं समझना.

ा, तोभी सक्कर तो मीठीही लगेगी. ऐसेही इस कालमें भी यथा विधि किया हुवा ध्यान, गुणकर्ताही होगा. और भी ध्यान कर्ता पुरुष शीत उष्णादि का लमें अपनी प्रकृतिके अनुकूल समय विचारे. श्री उ-त्तराध्येनजी सूत्रमें तो "बीयं झाणझियाइह" ऐसा फरमाया है. अर्थात् दिनकी और रात्रिकी दूसरी पो-रसी (पहर) में ध्यान धरे. और कितनेक ग्रंथोंमें पिछली रात्रि [रात्रिका चौथा पहर.] ध्यानके लि-ये उत्तम लिखा है.

यह द्रव्य क्षेत्र और कालके विधि की विवक्षा अर्था-त् शुभाशुभ कहने का मतलब फक्त अपूर्ण ज्ञा-नी और अस्थिर चित्तवालोंके लिये है. पूर्ण ज्ञानी और अडोल वृत्ति कि जिनका चित्त निरविकारी हो-गया है, उन्हे तो सर्व क्षेत्र-द्रव्य-काल अनुकूलही होता है.

चतुर्थ पत्र- "भाव"

७ 'अशुद्ध-भाव, अशुभ या अशुद्ध भा... वरणन. आर्त और रौद्र ध्यान में बताया वोही ... ज्ञना विषय, कषाय, आश्रव, अशुभयोग, अस... चपलता, विकलता, अधैर्यता, नास्तिकता, क... राग द्वेष रूप परिणति. वगैरे सर्व अशुभ जोग...

गये हैं. इन से भावोंकी मलीनता होती है.

८ शुभ, भाव, ४ प्रकारके हैं. सो—

मैत्री प्रमोदकारुण्य, मध्यस्थानि नियोजयेत्॥
धर्मध्यान मुपस्कर्तु, तद्धि तस्य रसायनं ॥१॥
योग शास्त्र.

अर्थ–१ मैत्री भाव, २ प्रमोदभाव, ३ करुणा भाव, ४ और मध्यस्थभाव, इन चारोंही भाव संयुक्त होनेसे, धर्म ध्यानकी रसायन (हूबहू–स्वाद) पैदा होती है.

१ "मैत्री भाव"–"मितिमें सव्व भूएसु, वेरं मज्झं ण केणइ" अर्थात्–सर्व जीव मेरे मित्र (दोस्त) हैं; इस लिये मेरा किसीके साथ भी किंचित् मात्र वैर विरोध नहीं है. इस जगत् वासी सब जीवोंके साथ अपना जीव माता-पिता-स्त्री-पुत्र-बन्धू-भगिनीआदि जितने सम्बंध हैं वो सब एकेक जीवके साथ अनंत २ वक्त कर आया है. श्री भगवतीजी तथा जंबूद्विप प्र-

सूत्र–मैत्री करूणा मुदितो पेक्षाणां सुख दुःख पुण्या पुण्य विषयाणां भावना तश्चित प्रसादनम. ३३ पतांजल योग दर्शन.

अर्थ–सुखी प्राणीयोंसे मित्रता, दुःखीसे दया, धर्मात्मापे हर्ष, और पापीयोंपे मध्यस्त वृत्ति. इस तरै वृत्तने से चित्त प्रसन्न रहता है.

ज्ञानीने फरमाया है कि- "असई अदुवा अणंत खुत्तो"
अर्थात् संसारमें इन जीवने, अनंन जन्म मरण कर,
सर्व जगत् फरसा है. इस अनुसारसे जगत् वासी भ-
व जीव अपणे मित्र हैं; इस भवके कुटुम्बपे प्रेम रह-
ता है, वैसाही सब जीवोंके साथ रक्खे, सुक्ष्म (दृष्टि-
न आवे सो) बादर (दृष्टि आवेसो) त्रस (हले चले
सो) स्थावर [स्थिर रहे सो] इन सब प्रकारके
जीवोंको अपणी आत्म समान जाणे. सबको सुखी
चहावे सो मैत्री भाव.

२ प्रमोद भाव"—इस जगतमें अनेक सत्पु-
रुष अनेक २ गुणके धरने वाले हैं. कितनेक ज्ञानके
सागर हैं. बहोत सूत्रोंके पाठी [पढे हुये] स्याद्वाद
शैली कर जिनागम की रेस श्रोता गणोंके हृदय में
ठसाने वाले, सिद्धान्तकी सन्धी मिलाने वाले तर्क
वितर्क कर गहन विषयको सरल कर बताने वाले,
नय निक्षेप प्रमाणादि न्यायके पारगामी, कुतर्कीयोंका

*यथा आत्मानःप्रियप्राणाः, तथा तस्यापि देहिनां॥
इति मत्वंन कर्तव्यं, घोर प्राणी वधो बुद्धैः॥१॥
अर्थ—जैसे अपने प्राण अपनेको प्रिय हैं, वैसेही सबही
के जानके किसी भी प्राणीका वध कदापि नही कर
योही बुद्धिवंत.

शांतपणें समाधान करने वाले, अमर कारक सद्बोधसे धर्मकी उन्नतिके कर्ता, चमत्कारिक कवीत्व शक्ति व वक्त्व शक्तिके धारक, ऐसे २ अनेक ज्ञान गुणके धारक हैं. कितनेक शांत दांत स्वभावी, आत्म ध्यानी, गुणग्राही, अल्पभाषी, स्थिरासनी, गुणानुरागी, सदा धर्म रूप आराम (बाग) में अपनी आत्माके रमाणे वाले हैं. कितनेक महान तपस्वी मास क्षमनादि उग्र २ तपके करनेवाले, उपवास अंबिलादि करनेवाले, षड्रसके विगयके त्यागी, एक दो द्रव्यपेही निर्वाह करनेवाले. शीत, ताप, लोच, आदिकाया क्लेस तपके करनेवाले हैं. कितनेकको ज्ञानाभ्यास की ओर तपश्चर्या करनेकी शक्ती नहीं है तो भी वो स्वधर्मीयोंकी भक्ति करते हैं, अहार वस्त्र, शय्यासन, आदि प्रतिलाभ साता उपजाते हैं. कितनेक ग्रहस्थ तन मन धनसे चारही तीर्थकी भक्तिके करनेवाले, धर्मकी उन्नति के करने वाले, प्राप्त हुये पदार्थ को लेखे लगानेवाले हैं. ऐसे २ उत्तमोत्तम अनेक गुणज्ञोके दर्शन कर, परसंशा श्रवण कर खुशी होवे. धन्यभाग्य हैं कि हमारे धर्ममें ऐसे २ नर रत्न उत्पन्न हो धर्म दीपाते हैं. यह महा पुरुषों सदा जयवंत रहो ! ऐसा विचार उनका सत्कार सन्मान करे. साता उपजावे, दूसरेको

उनकी भक्ति करते देख. हर्ष पावे, सो प्रमोद भावना.

३ 'करुणा' जगत्वासी जीव कर्माधीन हो अनेक कष्ट पाते हैं. कितनेक अंतराय कर्मकी प्रबलता से हीन दीन दुःखी होरहे हैं. खान, पान, वस्त्र गृह करके रहित हो रहे हैं. कितनेक वेदनिय कर्मकी वृद्धि होनेसे कुष्टादि अनेक रोगों करके पिडित होरहे हैं. कितनेक काष्ट-खोडा बेडी आदी बंधन में पडे हैं, कितनेक शत्रुओंके तावेमें पडे हैं. कितनेक शीत, ताप, क्षुधा. तृषादि अनेक विपत्ति भोगवते हैं. कितनेक अन्ध, लूले, लंगडे, बधिर, मुके, गुंगे आदि अंगोपांग रहित होरहे हैं कितनेक पशु, पक्षी, जलचर, घनचर हो पराधीनता भोगवते हैं; वध, बंधन, ताडन, तर्जना सहन करते हैं, हिंसकोंके हाथ कटते हैं. इत्यादि अनेक जीव अनेक तरहकी विपत्ति (दुःख) भोगवते हुये; सुखके लिये तरसते हैं. हमें कोइ सुखी करो! जीवित्व दान देवो! दुःख संकटसे उगारो! वगेरे दीन दयामणी प्रार्थना करते हैं. उन्हे देख दुःखी होय, करुणा लावें. और उनको उस दुःखसे छोडाने यथा शक्ति यथा योग्य प्रयत्न उपाय करे, उन्हे सुखी करे सो करुणा भावना.

४ 'मध्यस्थ भाव'-इस विश्वमें कितनेक भारी

कर्मि पापिष्ट जीव सद्गुण सद्कर्मको त्याग, खोटे का स्वीकार करते हैं. सदा क्रोधमें संतप्त, मानमे अकडे हुये, मायासे भरे हुये, लोभमें तत्पर रहते हैं. निर्दयतासे अनाथ प्राणीयोंका कट्टा करते हैं. मदिरा मांस कंदमूलादि अभक्षका भक्षण करते हैं. असत्य चोरी, मैथुन में पटूता (चतुरता) बताते हैं. विषय लंपट वेश्या पर स्त्री गमन में आनंद मानते हैं, जु-गारा [जूवा] दि दुर्व्यसन में लुब्ध अष्टादश पापोंमें अनुरक्त, देव गुरु धर्मके निमित हिंसा करने वाले, हिंसामें धर्म माननेवाले, कुदेव, कुगुरु, कुधर्मकी प्रति, ष्टा वडाने वाले, अच्छेकी निंदा करनेवाले अपनी २ प्रशंसामें मग्न. इत्यादि पापी जीवोंको देख राग द्वेष रहित मध्यस्त् परिणामसे विचार करे कि - आहा! देखो इन बेचारे जीवोकी कैसी विषम कर्म गति हैं; चार गती रूप संसारमें अत्यन्तकष्ट सहन करते २ अनंत कष्टसे मुक्त [छूटका]करनेवाली अनंतानंते पु ण्योदयसे, मनुष्य जन्मादि उत्तमोत्तम सामग्रीयों प्रा प्त हुइ है. इसे व्यर्थ गमते हैं! कुमार्गमें लगाते हैं! सुखकी इच्छासे दुःख उपार्जन करते हैं. कंकरकी ख रीदमें चिंतामणी रत्न, और विषकी खरीदमें अमृत देते हैं, सुधारेके स्थान बीगाडा करते हैं, हे प्रभू! इन

बेचारे अनाथ पामर जीवोंकी इन कुकर्तव्यके फल भोगवते क्या दशा होगी! कैसी वीटंवणा पायेंगे? तब कैसे पश्चाताप करेंगे? परन्तु इन बेचारे जीवोंका क्या दोष है, यह तो सब काम अच्छे करनेके लियेही खपते हैं, परन्तु इनके अशुभ कर्म इनको सद्बुद्धि उपजनें नहीं देते हैं. जैसा २ जिनका भवितव्य (होनहार) होय, वैसा २ ही बनाव बनारहता है. इत्यादि विचारसे मध्यस्थ पणे उपेक्षा=उदासीनता धरे सो मध्यस्थ भावना.

इन चारही भावनाकों भावते (विचारते) हुये और इसमें कहे मुजब प्रवर्तते हुये जीव राग, द्वेष, विषय कषाय क्लेश, मोहादि शत्रूओंका नाश करने सामर्थ्य (शक्तिवंत)होते हैं. यह भावना भावनेवालेके हृदयमें उक्त शत्रुकों प्रवेश करनेका अवकाश(स्थान) ही नहीं मिलशक्ता है.

तृतीय उपशाखा-"शुभध्यान साधन.

श्लोक-अष्टावङ्गानि योगस्य यान्युक्तान्यार्य सूरिभिः
चित्तप्रसत्तिमार्गेण बीजंस्युस्तानि मुक्तये॥१॥
ज्ञानार्णव.

अर्थात्-पूर्वाचार्यों ने चित्त-मन की प्रसन्नता-ध्यान की सिद्धी करनेके लिये आठ अंग फरमाये हैं,

सो यहां कहते हैः—

गद्य—कौश्चियमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयइत्यष्टवङ्गानि योगस्यस्थानानि॥१॥

अर्थ—१ यम, २ नियम, ३ आसन ४ प्राणायाम, ५ प्रत्यहार, ६ धारण, ७ ध्यान और ८ समाधी, इन आठ प्रकारके साधन से योगाभ्यास [ध्यान] सिद्ध होता है.

प्रथम पत्र-"यम".

"अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्य परिग्रह यमा" अर्थात्—यमके पांच भेद हैः—(१) 'अहिंसा' सो—त्रस स्थावर सर्व प्राणियोंको स्वात्म तुल्य जाने, मैत्री भाव धारन करे, जिससे सब प्राणी सज्जन बने. [२] 'सत्य'-इन्द्रियोंसे और मनसे जैसे भाव जानने में आये होवें वह किसीको दुःख दाता न होवें गुणकेही कर्ता होवें ऐसा वचन अवसर सिर बोले, जिस से वचन सिद्धि होवे. ३ 'अस्तेय'—सचेतन्य अचेतन्य वस्तु जिस बिन काम आगे नहीं चले उतनीही, उस का मालक अंतःकरणके उत्सहा से देवे सो ग्रहण करे. जिससे सर्व इच्छित मिले. ४ 'ब्रह्मचर्य'-इन्द्रियों और मनको विकार मय बनावे ऐसे शब्दादि विषयों

से निवृत्ति धारण करे. जिससे शरीरका और बुद्धि का बल बढे. ५ 'अपरिग्रह'—मनोज्ञ अमनोज्ञ वस्तु पर रागद्वेष मय भाव नहीं करे. जिससे त्रिकालज्ञ बने. इन पांचही यमको पूर्णता से धारण करे.

द्वितीय पत्र—"नियम"

"शौच संतोष तप स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः" अर्थात्—नियमके भी पांच भेद हैं:—

(१) 'शौच'* बाह्यमें सात दुर्व्यसन [ठगाइ, ईर्षा मदान्धता, परपरणति रमणता, स्वपसे अधिक संचय, मिथ्य वर्तन, अन्यको क्षोभ, और अनाचार] का त्याग करे, अशुचि अंगसे अलग रक्खे, जिससे संसर्गीको

---

*श्लोक—सत्य शौचं तप शौचं। शौचं मिन्द्रिय निग्रह॥
सर्व प्राण भूत दया शौचं। जलं शौचं तु पंचमः॥१॥
अर्थ—सत्य बोलनेसे, तप करनेसे, इन्द्रियोंका निग्रह करने से जीवोंकी रक्षाकरनेसे और जल पानीसे यह पांच तरहसे शुची होती है.

श्लोक—अशुचि करुणाहीनं। अशुचि नित्य मैथुनं॥
अशुचि परद्रव्येषू। अशुचि पर निन्दा भवेत्॥१॥
अर्थ—दया रहित, नित्य मैथुन सेवन करने वाला, चोरी करने वाला और निंदक यह चार सदा अशुद्ध ही रहते हैं.

चाणक्य निति

घृणा न होवे, और अभ्यान्तर शुचिसे काम क्रोधादिसे अलग रहे. जिससे मन निर्मळ होवे.[२]'संतोष'- अन्न नित्य क्षुधा की शान्ति करे उतना, वस्त्र गुप्त अवयव ढके उतना या शीतादि से बचावे उतना, और मकान शय्या जितना लोभी, अनित्य वासी हो ग्रहण करे, अधिक इच्छा नहीं करे, जिससे निर्दोष बने सुखी होवे. (३) शीत, ताप, क्षुधा, तृषा, ताडन, तर्जन वाक्य प्रहार इत्यादि कष्ट समभावसे सहे, धर्म, वृद्धसेवा सद्गुणका आचरण करे जिससे, ऋद्धि सिद्धिकी प्राप्ति होवे. (४) 'स्वाध्याय'–शास्त्रोंका पठन मनन व ॐकार नमस्कार (नवकार) आदि स्मरण करे जिससे इष्ट देव प्रसन्न होवें, इच्छित कार्य सिद्ध होवे. [५] 'प्रणिधान'–ईश्वरमें सब भाव समर्पण करे, अर्थात्–होनहार किसीभी प्रयत्न से टाला नहीं टले ऐसा जान शुभाशुभ वर्तावसे मन विग्रह नहीं करे, जिस से समाधी भाव की प्राप्ति होवे. इन ५ नियम को धारे.

तृतीय पत्र-"आसन"

समं काय शिरो ग्रीवा। धारयन्न चलंस्थिरः ॥
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं। स्वादशा श्चान वलोकयत्॥१॥

प्रशा न्तात्मा विगत भीर्ब्रह्मचारी वृत्तेस्थितः ॥
मनः संयम्य मच्चितो युक्त आसीत मत्परः॥२॥
युञ्जन्नेव सदात्मानं योगी नियत मानसः ॥
शान्ति निर्वाण परमां मत्सं स्था मयि गच्छति ॥ ३ ॥

गीताजी

अर्थ—श्रीकृष्ण कहते हैं कि—अहो धर्मराज ! जो शरीर मस्तक और गरदनं को स्थिर कर. इधर उधर न देखते फक्त नाशिका के अग्रपर दृष्टी को स्थिर कर अंतःकरणको अत्यन्त निर्मळ कर, भय रहित और ब्रह्मचर्य सहित मनका संयम कर मेरी तरफ लगाता है. मेरे कोही सर्वस्वय जानता है,ऐसे योगीयों ही मेरी सहायता से निर्वाण और परम शान्तिको प्राप्त होते हैं.

[विशेष आसनका खुलासा पीछे शुभ द्रव्य में किया है सो जानना.] जिस आसन से शरीर की और मन की स्थिरता रहे वोही आसन श्रेष्ट है.

☞ उपर कहे यम और नियमसे बाह्याभ्यन्तर आत्माको पवित्र कर, आसन लगा, दृढ हो फिर ध्यान की सिद्धीके लिये प्रणायामादि क्रिया करनी सो कहते हैं.

घृणा न होवे, और अभ्यान्तर शुचिसो काम क्रोधादिसे अलग रहे. जिससे मन निर्मळ होवे.[२]'संतोष'-अन्न नित्य क्षुधा की शान्ति करे उतना, वस्त्र गुप्त अंग्यत्र ढके उतना या शीतादि से बचावे उतना, और मकान शय्या जितना लोभी, अनिस वासी हो ग्रहण करे, अधिक इच्छा नहीं करे, जिससे निर्दोष बने सुखी होवे. (३) शीत, ताप, क्षुधा, तृषा, ताडन, तर्जन वाक्य प्रहार इत्यादि कष्ट समभावसे सहे, धर्म वृद्धसेवा सद्गुणका आचरण करे जिससे, ऋद्धि सिद्धिकी प्राप्ति होवे. (४) 'स्वाध्याय'-शास्त्रोंका पठन मनन व ऊँकार नमस्कार (नवकार) आदि स्मरण करे, जिससे इष्ट देव प्रसन्न होवें, इच्छित कार्य सिद्ध होवे. [५] 'प्रणिधान'-ईश्वरमें सब भाव समर्पण करे, अर्थात्-होनहार किसीभी प्रयत्न से टाला नहीं टले ऐसा जान शुभाशुभ वर्तावसे मन विग्रह नहीं करे, जिस से समाधी भाव की प्राप्ति होवे. इन ५ नियम को धारे.

तृतीय पत्र-"आसन"

समं काय शिरो ग्रीवा। धारयन्न चलंस्थिरः ॥
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं। स्वादशा श्चान वलोकयत्॥१॥

प्रशा न्तात्मा विगत भीर्ब्रह्मचारी व्रुतेस्थितः ॥
मनः संयम्य मच्चितो युक्त आसीत मत्परः॥२॥
युञ्जन्नेव सदात्मानं योगी नियत मानसः ॥
शान्ति निर्वाण परमां मत्सं स्था मयि गच्छति ॥ ३ ॥

गीताजी

अर्थ—श्रीकृष्ण कहते हैं कि—अहो धर्मराज ! जो शरीर मस्तक और गरदन को स्थिर कर. इधर उधर न देखते फक्त नाशिका के अग्रपर दृष्टी को स्थिर कर अंतःकरणको अत्यन्त निर्मळ कर, भय रहित और ब्रह्मचर्य सहित मनका संयम कर मेरी तरफ लगाता है. मेरे कोही सर्वस्वय जानता है,ऐसे योगीयों ही मेरी सहायता से निर्वाण और परम शान्तिको प्राप्त होते हैं.

[विशेष आसनका खुलासा पीछे शुभ द्रव्य में किया है सो जानना.] जिस आसन से शरीर की और मन की स्थिरता रहे वोही आसन श्रेष्ट है.

☞ उपर कहे यम और नियमसे बाह्याभ्यन्तर आत्माको पवित्र कर, आसन लगा, दृड हो फिर ध्यान की सिद्धीके लिये प्रणायामादि क्रिया करनीं सो कहते हैं.

चतुर्थ पत्र-"प्रणायाम"

" तस्मि न्सति श्वास प्रस्वास यार्गति विच्छेदः प्रणा याम" -अर्थात् श्वास्मो श्वास का रोकना सो प्रणायाम.

प्रणायाम करने वालेको शुद्धस्थान, स्वच्छ बिछांना, चिन्ता रहित मन, और रोग रहित शरीर की अवश्यक्ता है, भोजन किये बाद तथा मल मूत्र की बाधा होते प्रणामयाम की क्रिया करना उचित नही हैं. इन बातोंको पूर्ण विचार कर फिर उपरोक्त आसन से ठहर-बैठ प्राणायामकी क्रिया प्रारंभ करना चाहिये. प्रथम अपने इष्ट देवका स्मरण-उँ व अर्हं का जाप करे, फिर ऐसा संकल्प करे कि मैं शरीर शुद्धि के लिये प्राणायाम प्रारंभ करताहूं-फिर प्राणायाम की क्रिया प्रारंभ करे सो कहते हैं

बाह्य प्रणायाम

प्रथम इंडा नाडी (जीमनी नासीका) से धीरे धीरे प्राण वायु उदरमें या हृदयमें भरना इसे कुंभक प्राणायाम कहते हैं [दो मिनिट] ठहर ना, इसे पूरक प्राणाहाम कहते हैं. और फिर पिंगला (डावी नाशिका) से उस भरे हुवे वायु को धीरे धीरे निकाल ना इसे रेचक प्राणायाम कहते हैं. एसा साधन

होवे तब समझना चाहियेकि में प्रणाम क्रियाको साध सकूंगा. या प्रणायाम साधक को ऐसी तरह त्रिकाल (शुद्ध मध्यान और श्यामा में) अस्सी २ [८०] वक्त साधन करना चाहीये यों दो महीनेतक साधन करने से सुषुमना का उत्थान हुवा गिना जाता है, और इस उत्थान होनेसे आत्म ध्यान करनेकी योग्यता प्राप्त होती है, मनकी स्थिरता होती है, और शरीर के अंदरका प्राण वायु बहुत शुद्ध होजाताहै-

ऐसे दो महीने हुवे बाद केवल कुंभक प्रणायाम की क्रिया प्रारंभ की जाती है, केवल कुंभककी क्रिया में भी प्रणायाम की माफिक सर्व विधी करना चाहिये. विशेषत्व इतनाही हैकि क्षण (दोमिनट) से अधिक काल यथा शक्ति हृदयमें व उदर में वायुको रोक रखना, उसे केवल कुंभक प्रणायाम कहा जाता है ऐसी तरह त्रिकाल प्रथम बीस-बीस [२०-२०] वक्त, नंतर तीस-तीस [३०-२०] वक्त दो महीने करनेसे केवल कुंभक प्रणायाम की सामान्य सिद्धि हुइ कही जाती है. यह केवल कुंभक की क्रिया करने से पित्त से कफसे उत्पन्न होने वाली के दर्दों हृदरोग आदि की शान्ति होती है. शरीर हल्का होता है. और इस क्रियाके करनेसे मन को कम्प लगता है जिससे मन से जो

चतुर्थ पत्र-"प्रणायाम"

"तस्मि न्सति श्वास प्रस्वास यार्गति विच्छेदः प्रणा याम"-अर्थात् श्वासो श्वास का रोकना सो प्रणायाम.

प्रणायाम करने वालेको शुद्धस्थान, स्वच्छ बिछोना, चिन्ता रहित मन, और रोग रहित शरीर की अवश्यक्ता है,भोजन किये बाद तथा मल मूत्र की बाधा होते प्रणमयाम की क्रिया करना उचित नहीं हैं. इन बातोंको पूर्ण विचार कर फिर उपरोक्त आसन से ठहर-बैठ प्राणायामकी क्रिया प्रारंभ करना चाहिये. प्रथम अपने इष्ट देवका स्मरण-उँ व अर्हं का जाप करे, फिर ऐसा संकल्प करे कि में शरीर शुद्धि के लिये प्राणायाम प्रारंभ करताहूं-फिर प्राणायाम की क्रिया प्रारंभ करे सो कहते हैं

बाह्य प्रणायाम

प्रथम ईडा नाडी (जीमनी नासीका) से धीरे धीरे प्राण वायु उदरमें या हृदयमें भरना इसे कुंभक प्राणायाम कहते हैं [दो मिनिट] ठहर ना, इसे पूरक प्राणाहाम कहते हैं. और फिर पिंगला (डावी नाशिका) से उस भरे हुवे वायु को धीरे धीरे निकाल ना इसें रेचक प्राणायाम कहते हैं. एसा साधन

होवे तब समझना चाहियेकि मैं प्रणाम क्रियाको साध सकूंगा. या प्रणायाम साधक को ऐसी तरह त्रिकाल (शुभ्र मध्यान और श्यामा में) अस्सी २ [८०] वक्त साधन करना चाहीये यों दो महीनेतक साधन करने से सुषुमना का उत्थान हुवा गिना जाता है, और इस उत्थान होनेसे आत्म ध्यान करनेकी योग्यता प्राप्त होती है, मनकी स्थिरता होती है, और शरीर के अंदरका प्राण वायु बहूत शुद्ध होजाताहै-

ऐसे दो महीने हुवे बाद केवल कुंभक प्रणायाम की क्रिया प्रारंभ की जाती है, केवल कुंभककी क्रिया में भी प्रणायाम की माफिक सर्व विधी करना चाहिये. विशेषत्व इत्नाही हैकि क्षण (दोमिनट) से अधिक काल यथा शक्ति हृदयमें व उदर में वायुको रोक रखना, उसे केवल कुंभक प्रणायाम कहा जाता है ऐसी तरह त्रिकाल प्रथम बीस-बीस[२०-२०] वक्त, अंतर तीस-तीस [३०-३०] वक्त दो महीने करनेसे केवल कुंभक प्रणायाम की सामान्य सिद्धि हुइ कही जाती है. यह केवल कुंभक की क्रिया करने से पित्त व कफसे उत्पन्न होने वाली के दर्दों रुदनेग आन्त की शान्ति होती है. शरीर हलका होता है. और इस क्रियाके करनेसे मन को शान्ति लगता है जिससे मन के जो

अनेक प्रकारके विकल्प उठते हैं घोघंध पडजाते हैं.

पंच वायुकी शुद्धिका उपाय.

श्लोक—हृदि प्राणो गुदेऽपान समानो नाभिमण्डले ॥
उदानः कण्ठ देशेस्यात् व्यान सर्व शरीरगः१॥॥

अर्थ-हृदयमें प्राण वायु रहता है, गुदा में अपान वायु रहता है, नाभि मंडल में समान वायु रहता है, कण्ठ में उदान वायु रहता है और सब शरीर में व्यान वायु रहता है.

प्राण वायु के जयके लिये हृदय में चित्तवृत्ति का स्थापन कर 'ऐं' मंत्र का स्मरण करते हैं, अपान वायु के जयके लिये नाभि मंडल में चित्त वृत्तिका स्थापन कर 'रौं' मंत्र का जप करते हैं, समान वायु, के जयके लिये नाभि मंडल में चित्त वृत्तिका स्थापन कर 'पैं' मंत्रका ध्यान करते हैं. उदान वायुका जय करने कण्ठ स्थान में चित्त वृत्ति को रोक 'व्लौं' मंत्र साधते हैं, और व्यान वायु के जयके लिये सर्व शरीर मे चित्त वृत्ति का रमण कर 'क्लौं' मंत्र साधते हैं. यह जप एकाग्रता से एक मुहूर्त किया जाता है. ऐसी तरह पंच वायुके साधन से जठराग्नि की प्रबलता होती है, जिससे शरीर सम्बन्धी अनेक रोग बलकर भस्म होते हैं, शरीरकी पुष्टि और लाघवता

हलका पना प्राप्त होता है, जल अग्नि आदि उपद्र से बचाव वगेरे बहुत से द्रविक गुण होते हैं. ऐसा हेमचन्द्राचार्य विरचित योग शास्त्रका कथन है.

☞ "देखा देखी साधे योग, पडे पिण्ड के वढे रोग" इस आँकडी को ध्यान मे लेकर यह प्रणायाम की क्रिया गुरु गम विन नहीं करना चाहीये.

आभ्यान्तर—प्राणायाम.

वाहिर आत्म भाव जो-शरीर वाणी और मन में आत्म वुद्धि, जड चेतन्यकी अज्ञानता, पुद्गलिक प्रणाति में तन्मयता उनका त्याग करे सो आभ्यन्तर रेचक प्राणायाम. आत्माको ज्ञान-दर्शन-चरित्र गुणों कर पूरना सो पूरक. और उपशम क्षयोपशम भावको स्थिर करना सो आभ्यन्तर कुंभक प्राणायाम. ऐसे दोनों प्रकार प्राणायाम करने से ज्ञाना भरण दूरहो आत्मज्ञान जोती प्रदिप्त होती है.

पञ्चम पत्र—"धारणा"

प्राणायामकरने से मन विग्रह होजाय तो उसको स्थिर करने प्रत्यहार करना पडता है, प्रत्यहार कर्ता अपने मन को वाहिरात्म भावसे=इन्द्रियों कोंशब्दादि विषय से-पुद्गल प्रणति से मन को अत्यन्त खेंच

कर, उदयिक भाव के स्वभाव में जाति चित्त वृत्ति को मोड-फेर कर क्षयोपशम उपशम और क्षायिक भावकी वृद्धि करे, शरिर के किसी भी एक अव्यय पर मनको स्थापन कर एकाग्रता लगावे जिससे मन स्वाधिन हो जाता है. यों कुछ काल मनकी एकाग्रता हुवे बाद फिर मनकी अंत्तर वृत्ति कर धारणा धारन करे सो कहते हैं-

पश्चम् पत्र-"धारणा"

"देशबंध श्चित्तस्य धारणा" अर्थात्-फिरते हुवे चित्त (मन) को रोक इष्टमें एकाग्रता करे सो धारणा

जैसे कामी का मन कामनीमें, लोभीका मन धनमें, और विद्यार्थीयों का मन विद्यामें विन प्रेरा हुवाही अहो निश रमण करता है, तैसा. बल्के इससे भी अधिक चित्तवृति धारणा धारन करने वाले ऋषिश्वर की एकान्त तत्त्वार्थ-महाशास्त्रोंके रहस्य में अखन्ड रमण करती है. जैसे वासुदेव प्रति वासुदेव के सन्मुख सर्व स्वय मे पराजय करने वीरत्व की प्रेरना कर प्रवर्ते हैं. तैसे कर्म शत्रु का पराजय करने चित्तवृत्ति को अखन्ड संलग्न कर. विचारे कि मैं अनन्त ज्ञानादि चतुष्टय का धारक अनन्त शक्तिवन्त हूं. और मेरे प्रति

पाक्षि यह कर्म शत्रू ने मेरे को निज स्वभाव से भुला अनन्त दुःख रूप विटम्बना में डाला यह भान अ-बही मुझ को हुवा सो मेरे अहो भाग्य ! येही मेरे सुधारेके चिन्ह हैं. अब गफलत मे रह कर इस अनोखी लब्धी को गमाना मुझे बिलकुल ही उचित नहीं, है, ऐसाद्रढ निश्चयकी धारण करे, जिससे संसारिकस व पदार्थों परसे रागद्वेष की प्रणती मंद पडजाती है. सम भावी आत्मा बन जाती है. आत्मोन्नती होतीहै. और आगे कर्म शत्रूओंका नाश करने ध्यान करे सो कहते हैं:—

सप्तम् पत्र—ध्यान

"तत्र प्रत्येयक तानता ध्यानम्" धारण के पश्चात ध्यान होता है. जिसकी धारण करी उसमें तन्मय-अभिन्न होवे-सो ध्यान.

(ध्यान के विषय का तो यह ग्रन्थ हैही, तो भी कुछ यहां कहते हैं) ध्यान के दो भेदः—१ नव. नवकार नममोत्थुण लोगस्स, ऊँ, अर्हँ, व अन्यमत रितिसे सोहं, हंस तत्त्वमसि अहं, ब्रह्मस्मि, इत्यादि पदोंका आलम्बन कर जो ध्यान चिन्तन किया जाय उसे, व किसी भी बाह्य तथा अंतर-(आत्म भाव) प्रत्यक्ष परो

क्ष पदार्थ [परभाव] पर दृष्टी स्थापन कर उसके द्रव्य गुण पर्याय का ज्ञान भाव से जो विचार किया जाय उसे सालम्ब ध्यान कहा जाता है. २ और फक्त आत्म द्रव्य का विकल्प रहित जो चिन्तन होता है उसे निरालम्ब ध्यान कहते हैं. ऐसी तरह ध्यान करने से समाधीकी प्राप्ति होती है सो कहते हैं:-

अष्टम् पत्र "समाधि"

"तदेवार्थ मात्र निर्भासं स्वरूप शुन्यमिव समाधि' अर्थात्-ध्यान के पीछे समाधि होती है. समाधि में ध्याता भान भूल ध्येय रूप बनजाता है, आत्मानुभव संपूर्णतासे प्राप्त होता है. निर्विकल्पवृत्ति से आत्म स्वरूप में रमणना होती है. यहांही अखन्ड सुख का भुक्ता बन जाता है. समाधीवन्त की मुखमुद्रा सदा प्रफुलित, वचन शीतल निर्विपर्यी और काया अत्यन्त गौरव गुण की धारक निश्चल, अकुटिल, किसीकोभी खेद नहीं उपजे ऐसी बन जाती है.

"संयमेकत्र संयम" धारणा ध्यान और समाधि इन तीनों की एकत्रता होनासो ही संयम है. संयम से ही सर्वसुख और परमपदकी प्राप्ति होती है.

शुभध्यानस्य "फलं"

इस विधिसे किया हुवा ध्यान इस जीवको मोक्ष पंथ लगानें वाला है, हृदयके ज्ञान दीपककों प्रदिप्त करने वाला है, अतिंद्रीय- मोक्षके सुखको प्राप्त करने वाला है. यों ध्यान में प्रवेश करनेसे ही, अध्यात्म दिशा शांतीकी प्राप्ति होती है. इन्द्रीयोंके विषय उसके चित्तकों आकर्षण कर सक्ते नहीं हैं, मोह निद्रास्वभावसे समय २ नष्ट होती, सर्व क्षय होजाती है, और ध्यान निद्रा (समाधी) की प्राप्ती होती है. इस तरेसे शुद्ध ध्यान में प्रवर्तनेसें जीवकों महा पराक्रम प्रगटता है. वीतराग दशाकों प्राप्त होता है. उसवक्त ध्याताको मुक्ति सुखका अनुभव यहांही (इस लोक में) होने लगता है. ऐसी प्रबल शक्तिके धारन करने वाला ये विधि युक्त किया हुवा ध्यान है.

यह क्षेत्रादी ८ प्रकारके शुद्धाशुद्ध ध्यान साधनोंमें से अशुद्धको त्याग शुद्धको ग्रहण करनेवाले और यम नियम आदि अष्ट प्रकारके जो साधन बताये उनकी साधना यथा विधि करनेसे ध्याता ध्यानकी सिद्धीको प्राप्त हो सकेंगे.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदाय के बालब्रम्हाचारी मुनी श्री अमोलक ऋषिजी रचित ध्यानकल्पतरु की शुभध्यान नामे उपशाखा समाप्त.

तृतीयशाखा—"धर्मध्यान"

जैसे पहिले अशुभ ध्यानके दो भेद [आर्त-ध्यान और रौद्रध्यान] किये, तैसे शुभध्यान के भी दोही भेद जाणना:—धर्म ध्यान, और २ शुक्ल ध्यान इनका वर्णन अब आगे चलेगा.

पहले उपशाखामें शुभध्यान करने की विधि बताइ. अब यहां ध्यानस्थ हूये पीछे, अच्छा जो विचार करना सो कहते हैं. अच्छे विचार दो तरह से होते हैं,—१ एकांत कर्मोंकी निर्जरा कर, सर्व कर्मोको नष्ट कर, मोक्षरूप फलका देने वाला, उसे शुक्लध्यान कहतेहैं. इसका बयान आगे किया जायगा. और २ जो विशेष अशुभ कर्म तथा किंचित् शुभ कर्म का नाश करे. और निर्जरा और पुन्य प्रकृति का उपार्ज, न करे सो धर्मध्यान; इसका वर्णन यहां करता हूं.

सूत्र-धम्मेझाणे चउविहे चउप्पडायारे पण्णंते तंजहा.
अर्थ—धर्म ध्यान के-चार पाये. चार लक्षण, चार
लम्बन, और चार अनुप्रेक्षा. यों सोलह भेद श्री
र्थिकर भगवंत ने फर माये हैं. वैसेही यहां कहतेहैं:-

प्रथम प्रतिशाखा-धर्मध्यानके 'पाये'

सूत्र— आणा विजय. अवाय विजय.
विवाग विजय. संठाण विजय.

अर्थ—धर्म ध्यान के चार पाये:—१
आज्ञाविचय. २अपाय विचय, ३ विपाक
विचय. और ४संठाण विचय.

जैसे तरु वृक्ष) की चिरस्थाई के लिये पाया
(जड) की मजबुताइ की जरूर है. तैसे ही ध्यानको
स्थिर करने के लिये चार प्रकारके विचार करते हैं:-
१ श्री भगवंत ने इन जीवके उद्धारके लिये हेय(छो-
डने योग्य) ज्ञेय (जाणने योग्य) उपादेय (आ-
दरने योग्य) क्या क्या हुकम फरमाया? उसका विचा-
र करे सो आज्ञा विचय धर्मध्यान. २ यह जीव अनंत
कालसे क्यों दुःखी है? यह दुःख दूर कायसेहोते हैं.
एसा विचार करना सो अपाय विचय धर्म- ध्यान,३
कर्म क्या हैं? कैसे उत्पन्न होते हैं? और क्या क्या

फल देते हैं ? यह विचार करे सो विपाक विचय धर्म ध्यान. और ४जिस जगत् में इस जीवकोपरीभ्र मण करते अंनत काल व्यतिक्रांत होगया, उस जगत् का कैसा आकार है? यह विचार करेसो संठाण विचय धर्म ध्यान,

इन चारहीका विस्तार से वर्णन आगे कहते हैं:-

प्रथम पत्र-"आज्ञा विचय"

"आज्ञा विचय", धर्म ध्यानके ध्याता ऐसा ध्येय (विचार) करेकि-इस विश्वमें रहे हुये वहोतसे जीव आत्म कल्याण की इच्छा करते हैं, वो आत्म कल्याण एक श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञामें प्रवर्त्तने (चलने) से ही होता है. श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञामेंही रहके साधू, श्रावक जो करणी करते हैं, वो करणी ही आत्म कल्याणकी करने वाली है. आज्ञासे ज्यादा कमी और विपरीत श्रद्धन करे, वोही मिथ्यात्व की गिनतीमे है. इस लिये श्री जिनेश्वर भगवान की आज्ञा क्या है? उसका अव्वल विचार करनेकी वहुत आवश्यकता (जरूर) है, श्री जिनेश्वर भगवान सर्व ज्ञाता (केवल ज्ञान) को प्राप्त हो, अधो (नीचा) मध्य (बिचला) उर्ध (उंचा) तीनही लोकमें, भूत(गया)

भविष्य [होनेवाला] और वर्त्तमान (वर्ते सो) इन ती-
नही कालमें, जीव और पुद्गलकी अनंतानंत पर्यायों.
का जो परावर्त्तन [पलटा] हो रहा है उनका प्रकाश
किया. तब्ही आपन उनके हुकमसे जगत् के चराचर
(चल स्थिर) पदार्थोंके कोविद [जाण] हुये हैं. और
अगोचर [विन देखते] पदार्थोंके गुण और पर्याय इतंने
सूक्ष्म-अग्राही हैं कि अपन तो क्या, परन्तु वडे २ चार
ज्ञानके धारी, द्वादशांग के पाठी, महा मुनिवरों केही
ग्रह्य (लक्ष) में आनें मुशकिल होते हैं. जो पदार्थ
अपने समजमें नहीं आते हैं, तो भी उन्हे अपन शा-
स्त्रादिमें पडकर सत्य मानते हैं. यह निश्चय अपनकों
श्री तीर्थेश्वर भगवानकी आज्ञाके मानने सेही हुवा हैं;
क्यों कि अपन निश्चयसे समजते हैं कि श्री वीतराग
देव राग द्वेष रहित हैं, उन्हे किसीकानी पक्ष नहीं हैं,
कि वो कभी अन्यथा [झूठ] बोलें. श्री सर्वज्ञ प्रभूने
कैवल्य ज्ञानमें जैसा देखा वैसा फरनाया, वो सर्व
सत्य है.

श्री जिनेश्वर भगवाननें जोजो फरमाया है उसमे-
का कुछ आवश्यक्य ज्ञान यहां श्लोक करके कहतेहैं.
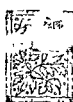
श्लोक सुत्रार्थ मार्गणा महाव्रत भावनाच,
पञ्चेन्द्रियर्योप शमता ति दयार्द्र भावः;
बन्ध प्रमोक्ष गमना गति हेतु चिन्ता,
ध्यानतु धर्म मिति तत्प्रवदन्ति तज्ञ्ः.

सागार धर्मामृत

अस्यार्थ—सुत्रोंका अर्थ' जीवोंकी मार्गणा, महाव्रत भावना, पांच इन्द्रियों दमनका विचार, दयार्द्रभाव, कर्मसे बन्धनका और छुटनेका उपाय—का विचार, चार गति और ५७ हेतुकी चिंतवना, इत्यादि विचार करे उसे धर्म ध्यानका ध्याता श्री तत्वज्ञ प्रभूने फर, माया है.

ध्यान कर्ताको श्रुतज्ञानकी अव्वल आवश्यक्ता हैं; इस लिये पहले यहां श्रुनज्ञान का वरणन करते हैं.

"सूत्रार्थ"

गाथा—सुयकेवलं च णाणं, दोणी वि सरिसा-
णि होति बोहओ. सुयणाणं तु परो-
रकं, पचरकं केवल णाणं.

गोमट्सार.

अर्थ—श्रुत ज्ञान और केवलज्ञान दोनों बरोबर हैं-, फरक इत्नाही है कि श्रुत ज्ञान तो परोक्ष है और केवल ज्ञान प्रत्यक्ष है, क्योंकि-केवली भगवानने जोजो भाव

...णे हैं; वो सर्व [प्रकाशे उल्ले] श्रुत
... श्रोता गणको समजा सके हैं, और के-
...सेही नरक स्वर्ग जावत मोक्ष तक की
...थ जाणते हैं. वो भी श्रुत ज्ञान ही है.
...। समुद्रसेभी अधिक गंभीर; लोकालोक
... सर्व पदार्थोंके अतिरिक्त; कोट्यान सूर्यसे-
...क प्रकाश कर्ता श्रुत ज्ञान हैं. श्रुतज्ञानको
...ग, और चार ÷ अनुयोग करके, तथा †अंग:

...रांग. सुयगडायांग. ठाणायांग. समवयांग, भग
...ाता.उपासकदशांग.अंतगडदशांग, अणुत्तरोववा
...। प्रश्नव्याकरण. विपाकसूत्र. और द्रष्टीवाद; य
...दशांग. ÷ प्रथम चरणानुयोग–जिसमें आचारका
... जैसे आचारंगादी शास्त्र. द्वितीय गणितानुयोग-
...न (संख्या) के शास्त्र जैसे- चंद्रप्रज्ञाप्ती आदि शा
...तृतीय धर्मकथानुयोग सो कथाके शास्त्र जैसे- ज्ञा-
...ती आदि शास्त्र. और चतुर्थ द्रव्यानुयोग,जिसमे धर्म-
...न आदि षटद्रव्यका विचार जैसे सूयगडायांगजी आ
... शास्त्र. यह चार अनुयोग. † आचारांग आदी द्वाद
...ांगके नाम कहे उसमेंसे अब्वी इस कालमें दृष्टीवादां
...का अभाव है. इस लिये ११ ही अंग गिणे जाते हैं. ‡उ
...पांग १२–उववाइ, रायप्रसेणी, जीवा भिगम, पन्नवणा;
...जंबुद्वीपप्रज्ञाप्ती, चंद्रप्रज्ञाप्ती सूर्य प्रज्ञाप्ती. निरिया वलिका
...कप्पया. पुप्फिया, पुप्फचुलिया,वन्हीदशा. यह १२उपांग

उपांग ‖ छेद, ⁒मूल, और अनेक प्रकीर्ण ग्रन्थों क रके विस्तृत कियागया है. * अनेक चमत्कारिक वि-⁒ धाका सागर है. यह शब्दों करके अवर्णिय है, बडे २ विद्वान भी इसका पार नहीं पासक्ते हैं, श्रुत ज्ञानही सच्चा तीर्थ हे, कि जिसमें पापका लेशभी नहीं है. और इसमें स्नान करनेसे बडे २ पापात्मा पवित्र हो गये हैं. येही जगत् जंतुओंके उद्धार करने सामर्थ्य है, योगीयोंका तीसरा नेत्रहे. इत्याइ अनेक गुणों करके प्रतिपूर्ण भरा हुवा श्रुत ज्ञान है. इसको अभ्याससे प्राप्त करनेमें धर्माध्यानीको बिलकुल ही प्रमाद नहीं करना चाहिये.

‖ व्यवहार.बृहत्कल्प, नशीत, दशाश्रुतस्कंध, यह ४ छेद.
⁒दशावैकालिक, उत्तरध्ययन नंदी, अनुयोगद्वार.ए ४मूल.

* अक्षरात्मक श्रुत ज्ञान के मूल अक्षर ६४ हैं. उन में ३३ व्यंजन, २७ स्वर और ४ योग बह हैं, इस के सं-योग जनिक अर्थात-द्विसंयोगी त्रिसंयोगी चतुःसंयोगी इत्यादि चोसट संयोगी पर्यंत भंग करिये. और उन सम स्त भंगो की जोड देना. तब एक घाटि एकट्ठीप्रमाण स समस्त अपुनरुक्त अक्षर श्रुतज्ञानके१८४४६७४४०७९५५-१६१५ इतने होतेहैं, इनमें सर्व श्रुत ज्ञानका समावेश होजाता है. इन को परमागमा विषे जो प्रसिद्ध जो म ध्यम पद उसके अक्षर–१६३४८३०७८८८, इन का भाग देना सो ११२८३५८०००५, यहनो अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान-

अब आगे जोजो बयान चलता है वो सब श्रुत ज्ञा न के पेट मेंही समझना

"मार्गणा"

गाथा—गइ इंदीए काए, जोए वेए कसाय णाणेय,
संजय दंसण लेसा, भव सम्मे सन्नि आहरे.

तृतीय कर्म ग्रन्थ

अर्थ–गति[१], इन्द्रिय[२], काया[३], जोग[४], वेद[५], कषाय[६], ज्ञान[७], संजम[८], दर्शन[९], लेश्या[१०], भव्य[११], अभव्य सम्यक्त्व[१२], सन्नि[१३] असन्नि, आहारिक[१४] अनाहारिक, यह १४ मार्गणा. मार्गणाका ज्ञान अतीहीगहनहै. इसके विचारसेध्यानमें अच्छी स्थिरता रहनेका संभव है.इस लिये यहां मार्गणा कहते हैं;

१ "गति', गति उसे कहते हैं कि जिसमें गतागत (आवागमन) करे. वह गती ४ हैं:—(१) 'नरकगति' जो अधो (नीचे) लोकमें ७ दुखमय स्थान हैं. [२] 'तीर्यंच गती' जो एकेन्द्रीय सूक्ष्म तो स-

के पदका परीमाण आया. इनके तोद्वादशांग रूप श्रुतहै.और आवशेष अक्षर ८०११८०५. इतने रहे सो अंग बाह्य कहावे.इन अक्षर के १४ प्रकीर्णक दश वैकालिक उत्तराध्येन आदिक कहा वे है. ऐसा लेख दिगम्बर मत के तत्वार्थ सुत्र की अर्थ प्रकाशीका नामक वचनी का के पहिले अध्यायने लिखा है.

वे लोक व्यापी हैं, और वादर एकेन्द्रिय तथा बेन्द्री यसे पंचेन्द्रिय पर्यंत पशु (जानवर) जीव हैं. (३) मनुष्य गति' जो तिरछे लोकमें कर्मभूमि, अकर्म भूमी मनुष्य जीव हैं. (४) 'और देव गति' जो पातल (नीचे) लोकवासी भवन पति, वाणव्यंतर, देव तिरछे लोकमें चंद्र सूर्यादि जोतिपि देव, और उर्द्ध (उंचे) लोकवासी-कल्पवासी १२ स्वर्ग (देवलोक) में रहे वह, कल्पातित सो ९ ग्रीवेग और अनुत्तर विमान वासीदेव, यह चार गति. और पंचमी मोक्षको भी गति कहतेहैं परंतु वहां गये पीछे पुनरावृति [आना) नहीं है.

२ " इंद्रिय" इन्द्रिय उसे कहते हैं, जिससे जीव, की जातकी समझ होए. वह इन्द्रिय ५ हैं-(१) एकेंद्रीय' जो पृथव्यादिक एक स्पर्श इन्द्रिय वाले जीव. (२) 'बेन्द्रिय' जो किटकादिक स्पर्श और रस इन्द्रियवाले जीव. (३) 'तेन्द्रिय' जो यूका [ज्यूं] दिक स्पर्श रस और घ्राण इन्द्रिय वाले जीव. [४] 'चोरीन्द्रिय' जो मक्षिकादिक स्पर्श, रस, घ्राण, और चक्षु इन्द्रिय वाले जीव. (४) और 'पंचेन्द्रिय' जो मच्छादि जलचर, [पाणीमें रहे] पशु गायादि स्थलचर (पृथवीपर रहे) हंसादि पक्षी खेचर, (आ

क.शमें उंड) तथा नरक मनुष्य और देवता स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षू और श्रोतेंद्रीयवाले जीव. इन सिवाय *अनेंद्रीय जीव केवली भगवानको कहते हैं.

३ "काए" काया, शरीरको कहते हैं, वह जीवयुक्त काया ६ हैं- [१] 'पृथ्वी काय' (मट्टी) (२) 'अपकाय' [पाणी] (३) 'तेउकाय' (अग्नि) वाउकाय' (वायु-हवा) (५) 'वनस्पति' [सवर्जी-लीलोत्री] (यह पांच एकेंद्री हैं) और (६) 'त्रसकाय' (हलने चलने बेंद्रीय से लगा पचेंद्रिय पर्यंतके जीव).

४ "जोए" जोग-दूसरेसे सम्बन्ध करे वह जोग ३ हैं:—[१]'मन योग' [अंतःकरणके विचार] (२) 'वचन योग' [शब्दउच्चार] (३) 'कायायोग [प्रत्यक्षशरीर]

५ "वेए" वेद विकारका उदय होवे वह वेद ३:— (१) स्त्री, (२) पुरुष. (३) नपूंसक.

६ "कसाय" कषाय कंसारका कस्स 'रस' आके आत्माके प्रदेशपे जमे वह कषाय ४ हैं:—१ क्रोध, गुस्सा] (२) 'मान' (अभीमान (३) 'माया' कपट) (४) 'लोभ' (तृष्णा).

---

*केवल ज्ञानीने अनंत कालके शब्दादि विषयको पहले ही जान रखे हैं इस लिये उनके कर्णादि अव्यव रूप हैं, उन के विषयसे उन्हे कुछ प्रयोजन नही हैं.

७"नाण" ज्ञान—जिससे पदार्थको जाणे वह ज्ञान ८ हैं:—(१. 'मति ज्ञान' (बुद्धि) (२) 'श्रुति ज्ञान (शास्त्र सम्बन्धी)(३)'अवधी ज्ञान'(रूपी सर्व पदार्थ जाणे)(४) 'मन पर्यव ज्ञान' (मनकी बात जाणे) (५) 'केवलज्ञान-(सर्व द्रव्य क्षेत्र काल भाव जाणे (यह) (५ ज्ञान सम्यग द्रष्टिको होवे है)और ६) 'मति अज्ञान' (कुबुद्धी २ 'श्रुति अज्ञान'(कुशास्त्राभ्यास)३ 'विभंग ज्ञान'(उलटा जाणे) यह ३ अज्ञान मिथ्यात्व द्रष्टीको होते हैं'

८ "संयम—हूकमोंसे आत्मा का निग्रह करना रोकना वह संयम ७ हैं:—१ 'अवृति'—जिस समद्रक द्रष्टी ने मिथ्यात्वसे आत्माको बचाइ] २ 'देशवृति'—श्रावक. ३ 'सामाइक'-देशसे (श्रावककी) और सर्व वृति (साधुकी] ४ 'छे दोपस्थापनिय'-[दोषसे निवृत्त करनेवाला] ५ 'परिहार विशुद्धि (शुद्ध चरित्र)६ 'सूक्ष्मसंपराय' (थोडे लोभाविगर सब दोष रहित) ७ 'यथाख्यात'—[सर्वथा दोषरहित]

९"दंसण" दर्शन—देखे या दरसे सो दर्शन ४ हैं: १ चक्षु दर्शन —आंखोंसे देखे २ 'अचक्षुदर्शन' —आंख विना चार इन्द्रीयसे और मनसे दरसे ३ 'अवधी दर्शन' रूपीद्रव्ये दूरके देखे. और ४ 'केवल दर्शन'=

सर्व द्रव्य. क्षेत्र, काल भाव देखे -दर्शो

१०"लेश्या"(कर्मसे जीवको लेशे-लेप चडावे-वह)लेशा ६हैं.–१ 'कृष्ण लेश्या,–महा पापी, २ नील लेश्या,–अधर्मी, ३ 'कापोतलेश्या'–वक्रस्वभावी -धीठ, ४ 'तेजूलेश्या–न्यायवंत, ५'पद्मलेश्या'–धर्मात्मा, ६' शुक्लेश्या मोक्षार्थी, और 'अलेशी'अयोगी केवली व सिद्ध भगवंत'

११"भव" संसारमें जीव दो तरहके हैं-१ भव्य वह मोक्षगामी. और २'अभव्य' वह कदापि मोक्ष न जाय. [नो भव्याभव्य सिद्ध भगवंत.]

१२'सन्नि', संसारमें जीव दो तरहके हैः १'सन्नि' वह ज्ञान व मन युक्त; मातापिताके संयोगसे उत्पन्न होय सो मनुष्य तिर्यंच. और देवता ओं तथा नेरिये. और २ 'असन्नी', वह पाच स्थावर, तीन विकलेंद्रीय और समुर्च्छिम(माता पिता विन हुये)मनुष्य तिर्यंच[नो सन्नी नोअसन्नी सिद्ध भगवंत]

१३ 'सम्म' यथार्थ पदार्थ की श्रद्धा वह सम्मक्त्व ७ हैं:–१'मिथ्यात्व, बाह्या स्वरूप मिथ्यात्वका और अन्दर समकित पावे सो. २ 'सास्वादान'=लेश मात्र धर्म श्रद्धकर पडजायसो. ३ 'मिश्र'=श्रद्धाकी गडवड. ४ 'क्षयोपशमिक'–मोह कर्मकी प्रकार्ति कुछ

क्षयकरी और कुछ उपशमाइ [ढांकी] ५ 'औपशमिक' मोहकी प्रकृति उपशमाइ, ६ 'वेदिक' प्रकृती वेद यह (यह क्षायिकके पहले क्षण मात्र होती है ७ क्षायिक मोहकी प्रकृतियों क्षय करे.

१४"आहारे" आहार करे वह आहारिक, और मार्ग बहता (एक शरीर छोड दूसरे शरीरमें जाना) तथा मोक्षादिकके जीव अन-आहारिक.

यह १४ही मार्गणा तो अर्थकी सागर है परन्तु ग्रन्थ गौरव के लिये यहा संक्षेपमें चेताया है. ध्यानी इने विस्तारसे चिंतवन करेंगे

'महाव्रत्त.'

महाव्रत्त–बडे व्रत. जैसे तालावके नाले रोकनेसे तलाव में पाणी आना बंद होजाता है, वैसेही प्रत-प्रत्याख्यान (पच्चखाण) करनेसे उस जीवके जगत्‌का पाप आना बंध होजाता है.

श्रावकके व्रतकी अपेक्षासे बडेसो साधुजीके पंच महाव्रत

ध्यानी जन बहुत करके महाव्रती होते हैं, इस लिये उन्हे अपने व्रतोंपे, ध्यान देनेकी बहुतही जरूर है.

१ "सव्वं पाणाइ वायाओ विरमणं"=अर्थात्‌ त्रस, स्थावर, सूक्षम, बादर, सर्व जीवोंकी हिंसासे त्रिविध२ * सर्वथ, निवृते, (सर्वथा हिंसा त्यागे).

* करे नहीं मनसे वचनसे कायासे. करावे नहीं मनसे वचन से कायासे. अच्छा जाने नहीं मनसे, वचनसे, कायासे. यह ९ कोटी

२ "सव्वं मोसा वायाओ विरमणं"=अर्थात् क्रोध से, लोभसे, हाँसिसे, और भयसे, सर्वथा त्रिविधे २ मृषा (झूठ) बोलनेसे निवर्ते.

३ "सव्वं अदिण्णा दाणाओ विरमणं"=अर्थात् थोडी, बहुत, हलकी, भारी, सचित्त [सजीव] और अचित्त [निर्जीव] इनकी सर्वथा प्रकारे त्रिविध २ चोरीसे निवृतने.

४ "सव्वं मेहुणाओ विरमणं"=अर्थात् देवांगना मनुष्याणी, और तिर्यंचणी, इत्यादि से मैथुन सेवनेसे सर्वथा प्रकारे त्रिविधे २ निवृते.

५ "सव्वं परिग्गाहाओ विरमणं" थोडा, बहुत, हलका, भारी, सचित्त, और अचित्त, इत्यादि परिग्रहसे सर्वथा प्रकार त्रिविध २ निवृते.

(छट्टा-"सव्वं राइ भोयणं विरमणं" अन्न, पाणी, मेवा मिठाइ, और मुखवास (तंबोलादि) इत्यादि अहार रात्रीको सर्वथा प्रकार त्रिविध २ नहीं भोगवे) ध्यानी इन महाव्रतोंको इनकी भावना भांगे तणावे सहित चिंतवन करनेमे अपने कर्तव्य परायण होंगे.

१२ "भावना."

१. "अनित्य भावना"-द्रव्यार्थिक नयसे अविनाशी

स्वभाका धारक जो आत्मद्रव्य है उससे भिन्न (अलग) रागादि विभाव रुप कर्म हैं, उनके स्वभावसे ग्रहण किये हुवे, स्त्री पुत्रादि सचेतनद्रव्य. सुवर्णादि अचेतन द्रव्य, और इन दोनोंमे मिले हुये मिश्र द्रव्य जो हैं सो सर्व अनित्य, अध्रुव, विनाशीक हैं. ऐसी भावना जिसके हृदयमें रमती है, उनका सर्व अन्य-द्रव्योंपरसे ममत्वका अभाव होजाताहे (जैसे वमन किये हुये पैसे ममत्व कमी होता हैं.) वो महात्मा अक्षय, अनंत, सूखका स्थान, जो मोक्ष उसे पाते हैं.

२ "असरण भावना"—इस आत्माको ज्ञान दर्शन, चरित्र, तथा अरिहंतादि पंच प्रमेष्टी छोड, अन्य देविन्द्र, नरिंद्र, स्वजन सेना, घर, धन, या मंत्र. जंत्र तंत्रादि कोइभी, शरण—आश्रय देनेवाले नहीं हैं. यथा दृष्टांत—(१) जैसे हरिणके बचेको सिंहने ग्रहण किया. उसे छोडाने समर्थ दूसरा हरिण नहीं होताहै. (२) तथा समुद्रमे झाजमेंसे पडे—हुये मनुष्यको कोइ आश्रयभूत नहीं होता है; तैसे. ऐसा जाननेवाले परद्रव्यसे ममत्व उतार, एक-निजस्वभाव-निजगुनकाही आलंबन करेंगे; वोही निजात्म स्वरुप—सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होवेंगे.

३ संसार भावन—(१) इस संसारमें जितने द्रव्य

हैं. उन सबको ज्ञानावरणआदि अष्ट कर्मके योगसे तथा शरीर पोषणेके लिये अहार पाणी आदीसे, तथा श्रोत्रादि इन्द्रियोंसे अपने जीवने अनंतवार ग्रहण किये और छोडदिये. इसे द्रव्य संसार कहना. तथा (२) असंख्य प्रदेशमें व्याप्त यह लोक है उनमेंसें एकेक प्रदेशपर यह जीव अनंत वक्त जन्मा और मरा, यह क्षेत्र संसार है. (३) तथा सर्पिणी और उत्सर्पिणी काल २० कोटा-कोटी सागरका है, उसके एकेक समय में इस जीवने जन्म मरण किये, यह काल संसार. (४) और क्रोधादि ४ कषायके, मनादि त्रियोगके जो प्रकृत्यादि बन्धके भाव हैं, उन्हे अनंत वक्त ग्रहण कर २ के छोडदिये. यह भाव संसार, ऐसे ४ प्रकारके संसारमें यह जीव अनादि कालसे परिभ्रमण करता थका नहीं. अब इस भ्रमणसे निवर्त संसारकी घृणा लावेगा, वोही मोक्ष पावेगा.

४ "एकत्व भावना"—इस जीव कों सहजानंद (स्वभाव से होता) सुखकी सामग्री देखनेवाला अनंत गुणका धारक केवल ज्ञान है. वोही आत्माका सहज शरीर है: वोही अविनाशी हित कर्ता है. और द्रव्य सज्जनादि कोइ भी हित कर्ता नहीं है. क्यों कि अन्य पदार्थ मनको विकल्प उपजाते हैं. और अनेक

प्रकारके दुःख देते हैं. ऐसा जान सर्व बाह्यवस्तुओं से ममत्व उतार, एक आत्मापेही जो द्रष्टी जमावेगा, वोही आत्म तत्वकी खोज कर निजानंद-सहजानंद सुखको प्राप्त होगा.

५ "अन्यत्व-भावना" जगतमें रहे हुये कितनेक सजीव पदार्थोंको कुटुम्ब समजते हैं, और कितनेक अजीवको सहायक मानते हैं. परंतु वो सर्व कर्माधीन और कर्ममय हैं. वो बेचारे आपही सुखी होने सामर्थ्य नहीं हैं; तो अपनेको क्या सुख देंगे, वो अपने ही विनाशसे बच नहीं सक्ते हैं, तो अपनेको क्या बचायेंगे. इतने काल जो इस जीवने संसारमें दुःख पाया, वो सब उन्हीका प्रसाद है. ऐसा निश्चय करके हे जीव! अन्य सर्व पदार्थ अलग हैं. और मैं शुद्ध चैतन्य अलग हूं. यह मेरे नहीं मैं इनका नहीं. ऐसा निश्चयकर सर्व द्रव्यसे अलग हो, अपने निज स्वरूप को प्राप्त कर सुखी होवे.

६ "अशुचि-भावना" इस शरीरको शुचि करने कितनेक असंख्य अपकाय (पाणी) के जीवोंका वध करते हैं, सो किसीके घटको शुचि करने जैसा करते हैं. देखो! यह शरीर रक्त और शुक्रके संयोगसे तो उत्पन्न हुवा है, दुग्ध और विष्टाके स्थानमें उत्पन्न हुवे प-

दार्थोके भक्षणसें वृद्धि पाया, और जिन पदार्थोकी इस शरीमें वृद्धि हुइ वोभी अशुचि हैं. इस शरीरके सयोगसें शुचि पदार्थ अशुचि होते हैं. सुभिगंध दुर्गंधी होते हैं. प्रशंसनिय निंदनीय होते हैं. मनोहर दुगंच्छनिय होते हैं. बहुत कालसे प्रेमकर संग्रह करके रखे हुये पदार्थ इस शरीरका सम्बन्ध होतेही उकरडीपे डालने जैसे बन जाते हैं ! ! और इस शरीरसेंसे निकलते हुये सर्व पदार्थ घृणाको उत्पन्न करते हैं. ऐसे इस शरीरमें प्रेम उत्पन्न करने जैसा कोनसा पदार्थ है ? परन्तु मोहमदमें छके हुये जीव अशुचिकोही प्राण प्यारे बनाते हैं. इससे और ज्यादा अज्ञान दिशा कोनसी ? उनकेही शरीरके उनको प्यारे लगने पदार्थ शरीरसें अलग कर उनहीके हाथमें देके देखीये, वो कैसा प्यार करते हैं. इत्यादि विचारसें अशुचि शरीरपेसे ममत्व त्याग, इस शरीरके अन्दर रहा हुवा जो आत्मा (जीव) परम पवित्र ज्ञानादि रत्नोंका धारक है, उसे अशुचिमय करागृह (कैदखाने) से छुडानेके लिये ब्रह्मचर्यादि पवित्र व्रतोंको धारण कर, परम पवित्र शिवस्थानका वासी बनावो.

७ "आश्रव-भावना"—जैसे सछिद्र नाव पाणीमें डूबतीहै, वैसेही मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय, इन

पाप रूप पाणी, शुभाशुभ जोग रूप छिद्र करके, आत्मरूप नावमें प्रवेश कर, संसार रुप समुद्रमें आत्माको डुबाता है, ऐसा जाण आश्रवको छोडके आत्मा को संसार समुद्रसे तारनेका उपाय करे.

८"संवर-भावना"–आश्रव भावनामें आत्माको डुबाने वाले बताये. उनको रोकनेका उपाय सो संवर सम्यक्त्व वृत, अप्रमाद, अकषाय, और स्थिरयोग है. इनसे आत्माको रोक ज्ञानादि रत्नत्रय रूप अक्षय निधि के साथ संसार समुद्रके किनारे, मोक्ष रुप पट्टन है, उसे प्राप्त करे.

९"निर्जरा-भावना"-जीवका स्वभाव तो मोक्षमें जानेकाही है; परंतु अनादि सम्बंधी कर्म रूप वजनसे दबकर जा नहीं सक्ता है. जैसे तुम्बेका स्वभाव तो पाणीके उपरही रहनेका होता है, परन्तु उसपे कोइ मट्टीके और सनके ८ लेप लगाके, सुकाके, पाणीमें डाले तो तुंबा पातलमें बैठ जाता है. फिर पाणीके संयोगसे उसके लेप गलने से वो उपर आताहै, तैसेही जीव रूप तुम्बा, अष्ट कर्म रुप लेपकर, संसारमें डुब रहाहै; उन लेपोंको गलाने, मुमुक्षु जन द्वादश (१२) प्रकार की तपस्या कर, कर्म लेपको गाल, संसारके अग्र भागमें जो अनंत अक्षय सुख मय मोक्ष स्थानहै,

उसे प्राप्त करते हैं.

१० "लोकभावना" अनंतानंत आकाश रूप अलोकके मध्य भागमें, ३४३ घनाकार राजू*जिले क्षेत्र में लोक है, लोकके मध्यमें १४ राजू लम्बी और १ राजू चौडी त्रस नाल है. उसमें त्रस और स्थावर जीव भरे हैं, और बाकीका सर्व लोक एक स्थावर जीवहीसे भरा है. लोक के उपर अग्र भागमें सिद्ध स्थान है. जो जीव कर्म से मुक्त होते (छूटते) हैं वो सिद्ध स्थान में विराजमान होते हैं. फिर वहां से कदापि चलाय मान नहीं होते हैं. सदा निरामय सुखमें लीन रहते हैं. हे आत्मा! उस स्थानको प्राप्त होनेका उपाय कर.

११ "बोध बीज दुर्लभ भावना"—और सर्व वस्तु प्राप्त होनी सहज है. परंतु बोध-बीज सम्यक्त्व रत्नकी प्राप्ति होनी बहुतही मुशकिल है; सो विचारिये! बोध बीज की प्राप्ती विशेष कर, मनुष्य जन्ममें ही होती है, "दुल्लहा खलु माणुसा भवे" अर्थात् मनुष्य जन्म मिलना बहुतही मुशकिल है. ९८ बोलकी अल्पाबहु

*३,८१,२७,९७० मण लोहेको एक भार कहते हैं.ऐसे हजार भारका एक गोला बना. कोइ देवता बहुत उपर से छोडे, वो ६ महीने, ६ दिन ६ घडीमे जितना क्षेत्र उलंघे सो एक राजू क्षेत्र.

पाप रूप पाणी, शुभाशुभ जोग रूप छिद्र करके, आत्मरूप नावमें प्रवेश कर, संसार रुप समुद्रमें आत्माको डुवाता है, ऐसा जाण आश्रवको छोडके आत्मा को संसार समुद्रसे तारनेका उपाय करे.

८"संवर-भावना"—आश्रव भावनामें आत्माको डुवाने वाले बताये. उनको रोकनेका उपाय सो संवर सम्यक्त्व वृत, अप्रमाद, अकषाय, और स्थिरयोग है. इनसे आत्माको रोक ज्ञानादि रत्नत्रय रूप अक्षय निधि के साथ संसार समुद्रके किनारे, मोक्ष रुप पट्टन है,उसे प्राप्त करे.

९"निर्जरा-भावना"-जीवका स्वभाव तो मोक्षमें जानेकाही है; परंतु अनादि सम्बंधी कर्म रूप वजनसे दबकर जा नहीं सक्ता है. जैसे तुम्बेका स्वभाव तो पाणीके उपरही रहनेका होना है, परन्तु उसप कोइ मट्टीके और सनके ८ लेप लगाके, सुकाके, पाणीमें डाले तो तु़ंबे पातलमें बैठ जाता है. फिर पाणीके संयोगसे उसके लेप गलने से वो उपर आताहै, ऐसेही जीव रूप तुम्बा, अष्ट कर्म रुप लेपकर, संसारमेंडुब-रहाहै; उन लेपोंको गलाने, मुमुक्षु जन द्वादश (१२) प्रकार की तपस्या कर, कर्म लेपको गाल, संसारके अग्र भागमें जो अनंत अक्षय सुख मय मोक्ष स्थानहै.

उसे प्राप्त करते हैं.

१० "लोकभावना" अनंतानंत आकाश रूप अलोकके मध्य भागमें, ३४३ घनाकार राजू* जित्ने क्षेत्र में लोक हैं, लोकके मध्यमें १४ राजू लम्बी और १ राजू चौडी त्रस नाल है. उसमें त्रस और स्थावर जीव भरे हैं, और बाकीका सर्व लोक एक स्थावर जीवहीसे भरा है. लोक के उपर अग्र भागमें सिद्ध स्थान है. जो जीव कर्म से मुक्त होते (छूटते) हैं वो सिद्ध स्थान में विराजमान होते हैं. फिर वहां से कदापि चलाय मान नहीं होते हैं. सदा निरामय सुखमें लीन रहते हैं. हे आत्मा! उस स्थानको प्राप्त होनेका उपाय कर.

११ "बोध बीज दुर्लभ भावना"—और सर्व वस्तु प्राप्त होनी सहज है. परंतु बोध-बीज सम्यक्त्व रत्नकी प्राप्ति होनी बहुतही मुशकिल है. सो विचारिये! बोध बीज की प्राप्ती विशेष कर, मनुष्य जन्ममें ही होती है, "दुल्लहा खलु माणुसा भवे" अर्थात् मनुष्य जन्म मिलना बहुतही मुशकिल है. ९८ बोलकी अल्पाबहु-

*३,८१,२७,९७० मण लोहेको एक भार कहते हैं.ऐसे हजार गोलेका एक गोला बना. कोइ देवता बहुत उपर से छोडे, वो ६ महीने, ६ दिन ६ घडीमे जितना क्षेत्र उलंघे सो एक राजू क्षेत्र.

पाप रूप पानी, शुभाशुभ योग रूप छिद्र करके, आ-श्रव रूप नालेसे प्रवेश कर, संसार रूप समुद्रमें आत्माको डुबाता है. ऐसा जान आश्रवको छोडके आत्मा को संसार समुद्रसे तारनेका उपाय करे.

८ संवर-भावना - आश्रव भावनामें आत्माको डुबाने वाले बताये. उनको रोकनेका उपाय सो संवर सम्यक्त्व व्रत, अप्रमाद, अकषाय, और स्थिरयोग है. इनसे आत्माको रोक ज्ञानादि स्वरूप रूप अक्षय निधि के साथ संसार समुद्रके किनारे, मोक्ष रूप पट्टन है. उसे प्राप्त करे.

९ निर्जरा-भावना - जीवका स्वभाव तो मोक्षमें जानेकाही है: परंतु अनादि सम्बंधी कर्म रूप बन्धनसे ऊंचा जा नहीं सकता है. जैसे तुम्बेका स्वभाव तो पानीके ऊपरही रहनेका होता है. परन्तु उसपर कोई मट्टीके और सनके ८ लेप लगाके, सुकाके, पानीमें डाले तो तुर्त पातालमें बैठ जाता है. फिर पानीके सं-योगसे उसके लेप गलने से वो ऊपर आताहै. तैसेही जीव रूप तुम्बा, अष्ट कर्म रूप लेपकर, संसारमें डुब-रहाहै; उन लेपोंको गलाने, मुमुक्षु जन द्वादश (१२) प्रकार की तपस्या कर, कर्म लेपको गाले, संसारके अग्र भागमें जो अनंत अक्षय सुख मय मोक्ष स्थानहै

उसे प्राप्त करते हैं.

१० "लोकभावना" अनंतानंत आकाश रूप अलो-कके मध्य भागमें, ३४३ घनाकार राजू*जिले क्षेत्र में लोक हैं, लोकके मध्यमें १४ राजू लम्बी और १ राजू चौडी त्रस नाल है. उसमें त्रस और स्थावर जीव भरे हैं, और बाकीका सर्व लोक एक स्थावर जीवहीसे भरा है. लोक के उपर अग्र भागमें सिद्ध स्थान है. जो जीव कर्म से मुक्त होते (छूटते) हैं वो सिद्ध स्थान में विराजमान होते हैं. फिर वहां से कदापि चलाय मान नहीं होते हैं. सदा निरामय सुखमें लीन रहते हैं. हे आत्मा! उस स्थानको प्राप्त होनेका उपाय कर.

११ "बोध बीज दुर्लभ भावना"—और सर्व वस्तु प्राप्त होनी सहज है. परंतु बोध-बीज सम्यक्त्व रत्नकी प्राप्ति होनी बहुतही मुशकिल है; सो विचारिये! बोध बीज की प्राप्ती विशेष कर, मनुष्य जन्ममें ही होती है, "दुल्लाहा खलु माणुसा भवे" अर्थात् मनुष्य जन्म मिलना बहुतही मुशकिल है. ९८ बोलकी अल्पाबहु-

*३,८१,२७,९७० मण लोहेको एक भार कहते हैं.ऐसे हजार गोलेका एक गोला बना. कोइ देवता बहुत उपर से छोडे, वो ६ महीने, ६ दिन ६ घडीमे जितना क्षेत्र उलंघे सो एक राजू क्षेत्र.

पाप रूप पाणी, शुभाशुभ जोग रूप छिद्र करके, आत्मरूप नावमें प्रवेश कर, संसार रूप समुद्रमें आत्माको डुबाता है, ऐसा जाण आश्रवको छोडके आत्मा को संसार समुद्रसे तारनेका उपाय कर.

८"संवर-भावना"-आश्रव भावनामें आत्माको डुबाने वाले बताये. उनको रोकनेका उपाय सो संवर सम्यक्त्व वृत, अप्रमाद, अकपाय, और स्थिरयोग है. इनसे आत्माको रोक ज्ञानादि रत्नत्रय रूप अक्षय निधि के साथ संसार समुद्रके किनारे, मोक्ष रुप पट्टन है,उसे प्राप्त कर.

९"निर्जरा-भावना"-जीवका स्वभाव तो मोक्षमें जानेकाही है; परंतु अनादि सम्बंधी कर्म रूप वजनसे दबकर जा नहीं सक्ता है. जैसे तुम्बेका स्वभाव तो पाणीके उपरही रहनेका होता है, परन्तु उसपे कोइ मट्टीके और सनके ८ लेप लगाके, सुकाके, पाणीमें डाले तो तुम्बा पातलमें बेठ जाता है. फिर पाणीके संयोगसे उसके लेप गलने से वो उपर आताहै, तैसेही जीव रूप तुम्बा, अष्ट कर्म रूप लेपकर, संसारमेंडुब रहाहै; उन लेपोंको गलाने, मुमुक्षु जन द्वादश (१२) प्रकार की तपस्या कर, कर्म लेपको गाल, संसारके अग्र भागमें जो अनंत अक्षय सुख मय मोक्ष स्थानहै,

उसे प्राप्त करते हैं.

१० "लोकभावना" अनंतानंत आकाश रूप अलो-कके मध्य भागमें, ३४३ घनाकार राजू* जिले क्षेत्र में लोक हैं, लोकके मध्यमें १४ राजू लम्बी और १ राजू चोडी त्रस नाल हे. उसमें त्रस और स्थावर जीव भरे हैं, और बाकीका सर्व लोक एक स्थावर जीवहीसे भरा हे. लोक के उपर अग्र भागमें सिद्ध स्थान है. जो जीव कर्म से मुक्त होते (छूटते) हैं वो सिद्ध स्थान में विराजमान होते हैं. फिर वहां से कदापि चलाय मान नहीं होते हैं. सदा निरामय सुखमें लीन रहते हैं. हे आत्मा! उस स्थानको प्राप्त होनेका उपाय कर.

११ "बोध बीज दुर्लभ भावना"—और सर्व वस्तु प्राप्त होनी सहज है. परंतु बोध-बीज सम्यक्त्व रत्नकी प्राप्ति होनी बहुतही मुशकिल है. सो विचारिये! बोध बीज की प्राप्ती विशेष कर, मनुष्य जन्ममें ही होती है, "दुल्लाहा खलु माणुसा भवे" अर्थात् मनुष्य जन्म मिलना बहुतही मुशकिल है. ९८ बोलकी अल्पाबहु-

*३,८१,२७,९७० मण लोहेको एक भार कहते हैं. ऐसे हजार गोलेका एक गोला बना. कोइ देवता बहुत उपर से छोडे, वो ६ महीने, ६ दिन ६ घडीमे जितना क्षेत्र उलंघे सो एक राजू क्षेत्र.

तमें पहलेही बोलमें कहा है कि–"सबसे थोडे गर्भेज मनुष्य" इस बोलकी सिद्धि करते हैं–३४३ राजूका संपूर्ण लोक जीवोसे ठसाठस भरा है, वालाग्र जित्नी-भी जगा खाली नहीं है. उसमें त्रस जीव फक्त १४ राजमें है. जिसमें ७ राजु नीचे नरक और ७ राजू माठेरा (कुछकम) उपर स्वर्ग जिसके बीचमें १८०० जो जनका जाडा और १ राजू चौडा तिरछा लोक गिना जाता है; जिसमें असंख्य द्वीप समुद्र हैं. उसमें ४५ लाख जोजन मेंही मनुष्य लोक गिना जाता है. जिसमें–२० लाख जोजन जगह तो समुद्रनें रोकी है और कुलाचलों (पर्वतों) ने. नदीयोंने वनो ने बहुत जगा रोकीहै मनुष्यके फक्त १०१ क्षेत्रहैं. (इस्से थोडे मनुष्य हैं) जिनमें फक्त १५ क्षेत्र कर्म भूमीके हैं.उ-समें भी आर्य भूमी कम है. जैसे भरत क्षेत्रके ३२०००-देशमें फक्त २५॥ देश आर्य हैं. ऐसे अन्य क्षेत्रोमें भी आर्य भूमिकी नून्यता है. और १५ क्षेत्रमें से फक्त ५ महा विदेह क्षेत्रमें तो सदा धर्म करणी का जोग रहता है. और भरत ऐरावत १० क्षेत्रोंमें दश क्रोडा-क्रोडी सागर सर्पिणी कालमें फक्त १ क्रोडाक्रोडी सा-गरही धर्म करणीका होता है, सो प्राप्त होना बहुत मुशकिल है. यह भी मिलगया तो आर्यक्षेत्र. उत्तम

कुल, दीर्घ आयुष्य, पूर्ण—इन्द्रीय, निरोगी-शरीर, सु-
खे उपजिविक, सद्गुरु दर्शन, शास्त्र श्रवण—मनन नि-
दि ध्यासन, होके भी-भव्य पणा, सम्यग् दृष्टिपणा,
सुलभबोधी, हलूकर्मी, स्वल्प संसारीपणा वगैरे जोग
मिले, तब धर्मपर रुचि जगे, और बोध बीज सम्यक्त्व
की प्राप्ति होवे. देखा ! कित्ना दुल्लभ बोध बीज मि-
लता है सो, हे भव्य जनो ! अत्यन्त पुण्योदयसे अपन
बहोत उंचे आये हैं. बोध बीज हाथ लगा है (तो
अब इसे व्यर्थ न गमाते) आत्म क्षेत्रमें इस बीजको
रोप, ज्ञान जल (पाणी) से सींचन करो, की जिस-
से धर्मवृक्ष लगे जो मोक्ष फल देवे.

१२ "धर्म भावना"—धारयतिती धर्म्मः* पडते जीवको धर
(पकड) रक्खे सो धर्म. "संसारमी दुःख पड रय"
संसार सागर महा दुःखसे भरा है. इसमें पडते जीव-
को रोकके, मोक्ष स्थानमें पहोंचावे सो धर्म कहा जा-
ता है. मोक्षार्थीको धर्मकी बहुत आवश्यकता है, वो
धर्म कौनसा ? जैन कहते हैं—"धम्मो मंगल मुक्कीट्ठं,
अहिंसा संजमोतवो" अर्थात्-मंगलीककर्ता, सर्वसे उ-

*"दुर्गति पतनः प्राणी धारणा धर्म्म" अर्थात् दुर्गति
में पडते हुवे प्राणी को धर रक्खे पकड रक्खे उसे ध-
र्म कहते हैं.—योग शास्त्र-

त्कृष्ट धर्म वोही है की जो-अहिंसा (दया) संयम (इन्द्रीय दमन) और तप करके संयुक्त होए. वेद की श्रुति कहती हे "अहिसा परमोधर्मः" अर्थात् परमोत्कृष्ट धर्म वोही हे कि जहां अहिंसा (दया)ने सर्वांग निवास किया हे. विष्णु-पुराण कहता है- "अहिंसा लक्षणो धर्मः, अधर्मः प्राणी नांबंधः" अर्थात्- अहिंसा (दया) है सोही धर्मका लक्षण हे, और हिंसा हेसो अधर्म हे. कुरान कहते हें. "फला तजअलूवुतनू कुक मकाबरलहयवनात" अर्थात्-तूं पशू पक्षीकी कबर तेरे पेटमें मतकर. बाइबल कहते हैं-"दाउ शाल्ट नोट कील" (*Thou shalt not kill*) अर्थात् तूं हिंसा करे मत. इत्यादि सर्व शास्त्रोंमें धर्मका मूल 'दया' ही फरमाया हे. दयाके दो भेद, १ परदया तो छे काय जीवकी रक्षा करना, और २ स्वदया सो अपनी आत्माको अनाचीर्ण (कुकर्मो) से बाचना. कि जिससें अपणी आत्मा अगमिक कालमें सर्व दुःखसे छूट मोक्षके अनंत अक्षय सुखकी प्राप्ति करे

यह १२ ही भावना मुमुक्ष, प्राणीयोंको मोक्ष गमन करते हुये पंक्तिये निसरणी रूप है.

" पञ्चेन्द्रि योपशमता. "

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोष मृच्छत्य संशयम् ॥

इन्द्रियाणां वशवर्तिनो ये ते ... ॥
तान्नियम्यतुतान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥

अर्थ—जीवों इन्द्रियोंके वश में होनेसे अनेक वि-
डम्बना पाते हैं, और इन्द्रियोंको अपने वश में करने
से आनंदमय मोक्षपद प्राप्त करते हैं.

१ 'श्रोतेंद्री'—कानका स्वभाव जीव, अजीव,
और मिश्रके शब्द ग्रहण करनेका है, इसके वश में
पड मृगपशु मारा जाता है. २ 'चक्षु इन्द्री'—आँखका
स्वभाव काला-हरा-लाल-पीला और श्वेत, रूपको ग्रह
ण करनेका है, इसके वशमें पडके पतंग मारा जाता
है. ३ 'घ्रणेन्द्री'—नाकका स्वभाव सुभिगंध और दुर्भि
गंधको ग्रहण करनेका है. इसके वशमें पड भ्रमरपक्षी
मारा जाता है. ४ 'रसेन्द्री'—जिव्हाका स्वभाव-खट्टा
मीठा-तीखा-कडू-कषायला, रसको ग्रहण करनेका है.
इसके वशमें पड मच्छी मारी जाती है. 'स्पर्शेन्द्री'—
इसका स्वभाव हलका-भारी-ठन्डा-उन्हा-लुखा-चि-
कना-कोमल-खरदरा स्पर्शोंको ग्रहण करनेका है. इ-
सके वशमें पडके हाथी माराजाता है. अब जरा सो-
चीए! एकेक इन्द्रिके वश्यमें पडे, उनकी अकाल
मृत्यु हुइ; तो जो पांचही इन्द्रिके वशमें पडे हैं. उन
का क्या हाल होगा? कृत कर्मका बदला दुर्गतिमें
जाके अवश्यही भोगवेंगे,

अज्ञानसे जीव दुःखरूप इन्द्रियोंके विषयों सुख मानते हैं. यह आश्चर्य (तमाशा) भी तो जरा देखीये! (१) जो शब्द सुननेसे सुखही होयतो गाली सुन संतप्त क्यों होते हैं, क्योंकि उत्पती और ग्रहण करनेका स्थान तो एकही है, और जो गालीयोंको दुःख रूप मानते हैं वो स्नेही स्त्रीयोंकी गाली सुन खुशी क्यों होते हैं. (२) रूप देखके प्रसन्न होते है तो अशुचि देख क्यों घाण (दुर्गच्छा) करते हैं. क्यों कि वोभी कोइ वक्त में चित्त को हरण करने वाला पदार्थ था! तथा आगमिक काल में रूपान्त्र पाये मजा देनेवाला होजाता है. और सचीही अशुचीसे नाखुष होवेतो स्त्री सम्बन्ध अशुची के मथनमें क्यों मजा मानते हैं. [३] दुर्गंध आनेसे नाक क्यों फिराना क्योंकि वोभी एक तरहकी गंधही है. रूपांतर हो मनोहर हो जाती है. और जो सच्चेही दुर्गंध से नाराज होते होतो मृत्यु लोककी ५०० जोजन उपर दुर्गंध जाती है, उसमें क्यों राचे हो! (४) मन्योगी. मधुर रस सेही जो सुख पाते हैं वो फिर हकीमसे क्यों कहे कि शक्कर खाइ जिससे बुखार आगया, और घृत खाया जिससे खांसी होगइ. जो घृत शक्कर जैसे पदार्थ ही दुःख दाता हैं. तो फिर अन्यका क्या

कहें. वैदक कहता है. "रस्साणी ते रोगाणी" अर्थात् रसका भोग रोगकाही कारण है. फिर इस में सुख कैसे माने? ५ चित्त मुनीने ब्रम्हदत्त चक्रवर्तिसे कहा है-"सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामदुहावहा." अर्थात् सर्व भूषण (गहणें) भार भूत हैं, और सर्व भोग दुःख दाता हैं, सो सच्चही है. जैसे सुवर्ण धातु है वैसा लोहाभी धातु है. राजाकी तर्फसे सुवर्णकी बेडी-बक्षीस हुइ तो खुश होते हैं कि हमें पाव में पेहरने सोना मिला और लोहेकी बेडीकी बक्षीस होनेसे रुदन करते हैं. इस विचारसे जाना जाता है कि भूषण में सुख दुःख नहीं परन्तु माननेमेंही है! ऐसेही सर्व काम भोग दुःख दाता है, उनका नामही विषय भोग है; अर्थात्-जेहर खाना परन्तु; जैसे विष (जहर) और विशेष 'य' प्रत्यय विशेषहैतो यह जेहरसेभी अधिक घाती है. जेहर फक्त भोक्ता-खानेवालेकोही मारता है और विषयतो विचार मात्रसेही बिन्हाल-बावलाबना कर अनेक फजीती करता है. औरभीः—

विषयस्य विषयाणांच । दूर मत्यन्त मन्तरम्॥
उपभुक्तं विषंहन्ति । विषया स्मरणादपि ॥

अर्थ—विष (जहर) में और विषय (भोग) में बहूतही अंतर है, क्यों कि-विष तो खाने से प्राण काढ

रण करता है और विषय समरण मात्र सेही मार-डालता है.

भगवंतने फरमायाहैकि-'काम भोगाणुरयणं, अनंत संसार वद्दुणं,' अर्थात्-काम भोगमें रक्त रहनेसे, अनंत संसार वढता है. मतलबकी—विषतो एकही भवमें मारता है, और विषय भोग अनंत भवतक मारतेही रहते हैं, वडे २ विद्वानोंकों और महा ऋषियोंको वावला वना देते हैं, ऐसा दुरुधर जेहर है. विषय सुखकी इच्छा कर भोगवते हैं. परन्तु क्या २ हानी होती है सोभी तो जरूर देखो! शक्ति, बुद्धी, तेज, स्तव, इनको नष्ट कर, अत्यंत लुब्धतासे, सुजाक आदि रोगोंसे, सड, कीडेपड मरके नरकमें पोलादकी गर्मागर्म पूतलीके साथ गमन कर आक्रंद करते हैं. ऐसे दुःखके सागर विषयको सर्व सुख सागर माने वो शाणा कैसा? * इस तमाशेपे लक्ष दे, धर्म ध्यानी पंचन्द्रियके विषय भोगकी अभीलाषा रूप अज्ञानताको दूर कर, निर्वि-षयी-निर्विकारी-बन सुखी होते हैं.

---

* सवैया-दीपक देख पतंग जला और स्वरशब्दसुणमृग दुःखदाइ; सुगंधलेइ मग भ्रमरा और रसके काजमच्छी वि रलाइ, कामके काज खुता गजराज, यह परपंच महा दुःख दाइ; जो अम रायदथानतहां इन पांचोंकों वदाकीजेर भाइ,

किंबहु लेखने नेह । संक्षेपादिद मुच्यते॥
त्यागो विषय मात्रस्य । कर्तव्योऽखिल मुमुक्षुभिः॥

अर्थ—ज्यास्ति लिख कर क्या करना है, संक्षेपमें इतनाही कहना है कि—मोक्ष के अभिलाषीयोंको सर्वथा विषयका त्याग करनाही चाहीये.

'दयार्द्र-भावः'

श्री सुयगडांग सूत्रके द्वितीय श्रुत्स्कंधके प्रथम अध्यायनमें भगवंतने फरमाया हैः—

सूत्र—तत्थ खलु भगवंता छ जिवणिकाय हेउं पण्यता तंजहा, पुढवी काए जाव तसकाए, से जहाणामये मम अस्सायं दंडणवा अठीणवा, मुठीणवा, लेलूणवा, कवालेणवा, आउट्टिज्जमाणस्सवा, हम्ममाणस्सवाः तज्जिज्जमाणस्सवाः ताडिज्जमाणस्सवा, परियाविज्जमाणस्सवा, किलविज्जमाणस्सवा, उद्दविज्जमाणस्सवा, जाव लोमुक्खणणमायमवि हिंसाकारगं दुक्खं मयं पडिसंवेदेमिः इच्चेवं जाण सव्वेभूता सव्वेपाणा, सव्वेसत्ता, दंडेणवा जाव कवालेणवा आउट्टिज्जमाणावा, हम्ममाणावा, तज्जिज्जमाणावा, ताडिज्जमाणावा, परियाविज्जमाणावा, किलविज्जमाणावा, उद्द विज्जमाणावा, जाव लोमुक्खणणमायमविः

हिंसाकरंग,दुक्खंमयं पडिसंवेदेति. एवं नचा सव्वेपाणा जाव सत्ता णहंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा. ण परिघेतव्वा; ण पारित्तावे यव्वा; ण उद्दवेयव्वा; ॥श्री॥ से वेमी-जेय अतिता, जेय पडुप्पन्ना, जेय आगामिस्सामि अरिहंत भगवंत. सव्वेते एव माइक्खंति एवं भासंति. एवंपण्णवेति एवंपरुवेंति सव्वेपाणा जाव सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा. ण परिघेतव्वा; ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा. एसे धम्मे धुवे, णीतिए, सासए. समिच्चलोगं खेयन्नेहिं पवेदेति.

अर्थ,–द्वादश जातिकी परिषदामें भगवंत श्रीतीर्थंकर देवने निश्चयके साथ फरमाया है कि छः जीवकायोंकी हिंसा कर्मबन्धका कारण है. वो छे जीवकायाके नाव कहते हैं:–पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति, और त्रस, इनको दुःख होता है वो यहां द्रष्टांत करके वता ते हैं. "जैसे * मुझे असाता देवे दंडेसे हड्डीसे, मुष्टिसे, पत्थरसे, कंकरसे, मुझे मारते, तर्जना, ताडना करते परिताप उपजाते, दुःख देते, उद्वेग उपजाते, या जीव काया रहित करते, जावत् शरीरपेका रोम (वाल) मात्रभी उखाडते. इन हिंसाकेका-

* खुद. श्री महावीर परमात्मा अपनेही को बता के फरमाते हैं!

रणोंसे जैसा दुःख और डर मेरेको होता है, ऐसाही जाणो-सब जीव (पंचेन्द्रीयों) को, सब भूत (वनस्पति) को, सर्व प्राणी [बेन्द्रीय तेन्द्रीय चौन्द्रीय] को, और सर्व सत्व [पृथिवी, पाणी, अग्नि, वायु) को दंडेसे मारते जावत कंकरसे मारते, अक्रोश, ताडन, तर्जन--करते, परिताप उपजाते, किलामणा (दुःख) देते, उद्वेग उपजाते, जावत् जीवकाया रहित करते, रोम मात्र उखेडतेभी, इन हिंसाके कारणोसे वो जीव दुःख और डर मेरे जैसाही मानते हैं--अनुभवते हैं." ऐसा जाणके सब प्राण, भूत, जीव, सत्वको मारना नहीं, दंडसे ताडना नहीं, वलत्कार जब्बर दस्तीकर पकडना नहीं- या किसी काममें लगाना नहीं. शरीरी, मानसिक दुःख उपजाके परिताप देना नहीं. किंचितही उपद्रव करना नहीं; और जीव काया रहितभी करना नहीं. ऐसा उपदेश गयेकालमें जो अनंत तीर्थंकर हुये वर्तमानकालमें जो विद्यमन हैं. और आवते कालमें अनंत तीर्थंकर होयंगे उन सबहीने ऐसाही फरमाया है, संदेह रहि कहाहै, ऐसा उपदेश दिया है, कि--"सर्व प्राण भूत जीव सत्वको मारना, ताडना, तरजन परिताप, करना वंधनमें डलना नहीं, शरीरिक मानसिक दुःख उपजाना नहीं, जावत् जी-

हिंसाकरंग,दुक्खमयं पडिसंवेदेंति. एवं नचा सव्वेपा-
णा जाव सत्ता णहंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा. ण परि-
घेतव्वा; ण पारित्तावे यव्वा; ण उद्देवेयव्वा; ॥श्री॥
से वेमी-जेय अतिता, जेय पडुप्पन्ना, जेय आगामि-
स्सामि अरिहंत भगवंत. सव्वेते एव माइक्खंति एवं
भासंति. एवंपण्णवेति एवंपरुवेंति सव्वेपाणा जाव
सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेयव्वा. ण परिघे-
तव्वा; ण परितावेयव्वा, ण उद्देवेयव्वा. एसे धम्मे
धुवे, णीतिए, सासए. समिच्चलोगं खेयन्नेहिं पवेदेति.

अर्थ,—द्वादश जातिकी परिषदामें भगवंत श्रीतीर्थ-
कर देवने निश्चयके साथ फरमाया है कि-छः जीवका-
योंकी हिंसा कर्मबन्धका कारण है. वो छ जीवकाया-
के नाव कहते हैं:—पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्प-
ति, और त्रस, इनको दुःख होता है वो यहां द्रष्टांत
करके बता ते हैं. "जैसे * मुझे असाता देवे दंडेसे
हड्डीसे, मुष्टिसे, पत्थरसे, कंकरसे, मुझे मारते, तर्जना,
ताडना करते परिताप उपजाते, दुःख देते, उद्वेग उ-
पजाते, या जीव काया रहित करते, जावत् शरीरपे-
का रोम (बाल) मात्रभी उखाडते. इन हिंसाके का-

* सूद. श्री महावीर परमात्मा अपनेही को बता-
के फरमाते हैं !

रणोंसे जैसा दुःख और डर मेरेको होता है, ऐसाही जाणो-सब जीव (पंचेन्द्रीयों) को, सब भूत (वनस्पति) को, सर्व प्राणी [बेन्द्रीय तेन्द्रीय चौन्द्रीय] को, और सर्व सत्व [पृथिवी, पाणी, अग्नि, वायु) को दंडेसे मारते जावत कंकरसे मारते, अक्रोश, ताडन, तर्जन—करते, परिताप उपजाते, किलामणा (दुःख) देते, उद्वेग उपजाते, जावत् जीवकाया रहित करते, रोम मात्र उखेडतेभी, इन हिंसाके कारणोसे वो जीव दुःख और डर मेरे जैसाही मानते हैं—अनुभवते हैं." ऐसा जाणके सब प्राण, भूत, जीव, सत्वको मारना नहीं, दंडसे ताडना नहीं, बलत्कार जब्बर दस्तीकर पकडना नहीं- या किसी काममें लगाना नहीं. शरीरी, मानसिक दुःख उपजाके परिताप देना नहीं. किंचितही उपद्रव करना नहीं; और जीव काया रहितभी करना नहीं. ऐसा उपदेश गयेकालमें जो अनंत तीर्थंकर हुये वर्तमानकालमें जो विद्यमन हैं. और आवते कालमें अनंत तीर्थंकर होयंगे उन सबहीने ऐसाही फरमाया है, संदेह रहि कहाहै, ऐसा उपदेश दिया है, कि—"सर्व प्राण भूत जीव सत्वको मारना, ताडना, तरजन परिताप, करना बंधनमें डलना नहीं, शरीरिक मानसिक दुःख उपजाना नहीं, जावत् जी-

व काया रहित करना नहीं, येही धर्म दया मय निश्चय है नित्य है. शाश्वता (सनातन) है. इन वचनको विचारनाकि सब जीव बेचारे कर्मोके वशमें हो दुःख सागरमें पडे हैं, उनके दुःखको जाणनेवाले खेदज्ञ. ऐसे श्री तिर्थंकर भगवानने फरमाया है कि सबकी दया पालो रक्षा ! करो ! !

गाथा—कल्लाण कोडिजणणी, दुरंत दुरियादूरवर्णाः
संसार भयजल्तारिणी, एगंत होइमिरिजीवदया-

अर्थ—क्रोडो कल्याणको जन्म देने वाली दुर्दंत दुरित (पाप) के नाशकी करनेवाली, संत पुरुषोंके स्थान रूप. संसार महा सागर को तारने नाव समान. इत्यादि अनेक सुकार्योंकी करनेवाली सत्फलदेनेवाली श्री जीव दयाही है-

'दयाही धर्मका मूल है,' सर्व मत मतान्तर एक दयाकेही सारेम चलरहे हैं. दया-अनुकम्पा सम्यक्त्वीयो (धर्मात्माओं) का लक्षण है. ऐसी पवित्र दया

☞ ऐसे इाष्टिसे महा दयाल श्री तीर्थंकर भगवानके वचनोंके मर्म ज्ञात कीजीये! खुद भगवानही फरमाते हैं कि. छे कायकी हिंसा करनेमें उन्हे येसाही जैसा दुःख होता है! ऐसे दयाल प्रभूकी छेही काया की हिंसा कर खुसी करना चहाते हैं. यह किंसी अधम मोह दिसा ?

को धर्म-ध्यानी आपकी आत्मामें सदा निवास देते हैं अर्थात् सदा दयार्द्र भाव रखते हैं.*

दयाल अन्य जीवोंको दुःखीदेख करुणा लाते हैं. त्रस स्थावर जीवोंको शरीरिक (रोगादिक ओर मानसिक (चिंता) से पिडित देख, करुणा लावे, जैसे अन्धी कोइ दयावंत किसी बधीर (बेरे) को देख, विचारते हैं कि इस बेचारेके कैसा पापका उदय है, कि यह सुण नहीं सका है. बधीर ओर अन्धा दोनो दुःखसे पिडित देखनेसे विशेष दया आती हैं. वैसेही किसीको अंगोपांग व अन्न वस्त्र हीन देख, रोग सोगसे पीडाते देख, बहुत दया आती हैं. तैसेही बेचारे तिर्यंच (पशु) अन्न वस्त्र गृह रहित निराधार हैं,परा धीनताले क्षुधा-तृषा-शीत ताप आदि अनेक दुःख भोगवते हैं, तीर्यंच पंचन्द्रीयसे चौरिंद्रीयको दुःख ज्या-

* श्रेणीक राजारे सुन. हाथी भवदया पालीः मेघरात दयकाज. माडदीयो मरणो॥ धर्मरुची दयाधार, करगयाखे वापार; श्रेणिक पडहबजायो. सूत्रमें निरणो॥-नेमजीने दया पाली. छोडदी राजल नारी; मेतारजदया पाल मेट दियो मरणों॥ तेवीसमां जिनराय, तापसके पासजाय जीवने बचादीयो-नवकारकोसरणो ॥सबैयों स-चायो कीयो घनाक्षरी नामदीयो; जीवदया धर्मपालो, जो पै चावो तिरणो. १-कृपारामजी महाराज.

व काया रहित करना नहीं, येही धर्म दया मय निश्चय है. नित्य है. शाश्वता (सनातन) है. इन वचनको विचारनाकि सब जीव बेचारे कर्मोके वशमें हो दुःख सागरमें पडे हैं, उनके दुःखको जाणनेवाले खेदज्ञ. ऐसे श्री तिर्थंकर भगवानने फरमाया है कि संबकी दया पालो रक्षा ! करो ! !

गाथा—कल्लाण कोडिजणणी, दुरंत दुरियाद्रुख्खवर्णी।ः
संसार भवजलतारिणी, एगंत होइसिरिर्जिवदया॰

अर्थ—क्रोडो कल्याणको जन्म देने वाली दुर्दंत दुरित (पाप) के नाशकी करनेवाली, संत पुरुषोंके स्थान रूप, संसार महा सागर को तारने नाव समान, इत्यादि अनेक सुकार्योंकी करनेवाली सत्फलदेनेवाली श्री जीव दयाही है॰

'दयाही धर्मका मूल है,' सर्व मत मतांतर एक दयाकेही सारेस चलरहे हैं. दया अनुकम्पा सम्यक्त्वीयो (धर्मात्माओं) का लक्षण है. ऐसी पवित्र दया

☞ दीर्घ द्रष्टिसे महा दयाल्ड श्री तीर्थंकर भगवानके वचनोंक तर्फ लक्ष दीजीये! खुद भगवानही फरमाते हैं कि, छे कायकी हिंसा करनेसे उन्हे मेरेही जैसा दुःख होता है! ऐसे दयाल्ड प्रभूकी छेही काया की हिंसा कर खुशी करना चहाते हैं. एक फिटी अम्बर मोह हिंसा !!

रहा है. मेरे जव्वर पुण्य हैं. कि श्री जैन धर्मका ज्ञा-
न मुझे प्राप्त हुवा. सुयगडांग सूत्रमें फरमाया है कि
"एवं खु णाणीणो सारं. जं ण हिंसइ किंचणं" अर्था-
त्-निश्चय से ज्ञान प्राप्त करनेका सार येही है कि किं-
चित् मात्र जीवकी हिंसा नहीं करना ! इस लिये
अब मैं सब जीवोंको त्रिजोगकी विशुद्धि से अभय
दानका दाता बनूं. सबके वैर विरोधसे निवर्तुं कि फिर
मुझे मोक्षमें जाने कोइभी किसी प्रकार की हरकत
करनें समर्थ न होवे. दयाही मोक्ष का सच्चा हेतु है.

"बन्ध"

कर्म बन्धनसे छूटनेसेही जीव को मोक्ष मिलता है,
इस लिये मुमुक्षु को बन्धका स्वरूप जाणने की आ-
वश्यकता है, वह बन्ध के कारण सूत्र में ४ बताये
हैं:—सो-"पयइ ठिइ रस पएसा" अर्थात्—१ प्रकृति ब-
न्ध, २ स्थिति बन्ध, ३ अनुभाग बन्ध, ४ प्रदेश ब-
न्ध, यह ४ बन्धका का स्वरूप मोदक (लड्डु) के
द्रष्टांत से कहते हैं.

(१) 'प्रकृतिबन्ध' का स्वभाव-जैसे सूंठादिक
से निपजे मोदकका स्वभाव होता है कि-वायुनाशे रो-
गका नाश करना: तैसे ज्ञानावरणी कर्मका स्वभाव है

दा है क्यों कि वो एक इन्द्री रहित हैं. चोरिंद्रीसतें-द्रीमें, तेंद्रीसे, बेंद्री. बेंद्रीसे ऐकेंन्द्रीमें और एकेन्द्रीसे निगोद (कंदमूलआदि) में दुःख अधिक हे. क्यों कि ये एक शरीरमें अनंत जीव एकत्र रहते हैं. और एक मुहूर्त (४८ मिनिट) में ६५५३६ जन्म मरण करते हैं. इत्नी वे वसी है कि–दुःखसे छूटने का उपाय करनेकी शक्तितो दूर रही परन्तु अपना दुःख दूसरेको दर्शाभी नहीं शक्ते हैं! बेचारे, कृतकर्म के फल भुक्तते हैं. और उनकी घात करनेवाले वैसे-ही नवे कर्मोका बंध करते हैं, वो भोगवते उनके भी ऐसेही हाल होते हैं. ऐसा ज्ञानसे जाणनेवाले फक्त. एक श्रीजिनेश्वरके अनुयायीयोंजहें. वोही सब जीवों को अभय देते हैं,*नहीं तो सब स्थान घमशाण मच.

☞ * एकेंद्रीके हिंसा सें बेंद्रीकी हिंसामें पाप ज्यादा बेंद्रीसेतेंद्रीकीमें, तेंद्रीसे चोरिंद्रीकीमें, ओरचौरिंद्रीसे पचें-द्रीकी हिंसामें पाप ज्यादा, इसका मतलब यह है कि–जो उच्च स्तिति को प्राप्त हुये है वो अनंतानंत पुन्यकी वृधी होनेसे, जैसे गरीबको गाली देनेसे कोइ गिनतीमें नहीं लाता है, और बडेको गाली देनेसे बडे संकटमें पड जाता है, तैसे. तथा जितनी उच्च स्थितीको प्राप्त हुवे है, इत्नेही आत्म कल्याण के नजीक आये. उनको मार नासो उनके आत्म कल्याण का जब्बर नुकशान करना है, तथा एकेंद्रीकी घात विन गस्त घास नहीं चलना है.

रहा है. मेरे जव्वर पुण्य है, कि श्री जैन धर्मका ज्ञा-
न मुझे प्राप्त हुवा. सुयगडांग सूत्रमें फरमाया है कि
"एवं खु णाणीणो सारं, जं ण हिंसइ किंचणं" अर्था-
त्-निश्चय से ज्ञान प्राप्त करनेका सार येही है कि किं-
चित् मात्र जीवकी हिंसा नहीं करना ! इस लिये
अब मैं सब जीवोंको त्रिजोगकी विशुद्धि से अभय
दानका दाता बनूं. सबके वैर विरोधसे निवर्तूं कि फिर
मुझे मोक्षमें जाते कोइभी किसी प्रकार की हरकत
करनें समर्थ न होवे. दयाही मोक्ष का सच्चा हेतु है.

"बन्ध"

कर्म बन्धनसे छूटनेसेही जीव को मोक्ष मिलता है,
इस लिये मुमुक्षु को बन्धका स्वरूप जाणने की आ-
वश्यकता है, वह बन्ध के कारण सूत्र में ४ बताये
हैं:—सो-"पयइ ठिइ इरस पयसा" अर्थात्—१ प्रकृति ब-
न्ध, २ स्थिति बन्ध, ३ अनुभाग बन्ध, ४ प्रदेश ब-
न्ध, यह ४ बन्धका का स्वरूप मोदक (लड्ड) के
द्रष्टांत से कहते हैं.

(१) 'प्रकृतिबन्ध' का स्वभाव-जैसे सूंठादिक
से निपजे मोदकका स्वभाव होता है कि-वायुनासें रो-
गका नाश करना; तैसे ज्ञानावरणी कर्मका स्वभाव है

किज्ञानकूं ढकना. २ दर्शनावरणी कर्मका दर्शनको ढकना, ३ वेदनीयसे निराबाध–सुखकी हानी, ५ आयुष्यसे अजरामर पदकी हानी, ६ नाम कर्मसे अरूपी पदकी हानी, ७ गोत्रकर्मसे अखोडकी हानी, और ८ अंतराय कर्मसे अनंत शक्तिकी हानी होती है.

(२) 'स्थिति बंध' का स्वभाव, जैसे वो मोदक महीनादि काल तक टिकते हैं. तैसे ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनीय, अंतराय, इन चार कर्मोंकी उत्कृष्ट ३० क्रोडाक्रोड सागर, मोहकी ७० क्रोडाक्रोडी सागर, आयुष्यकी ३३ सागर, और नाम तथा गोत्र कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति वीसक्रोडाक्रोड सागरकी है.

(३) 'अनुभाग बन्ध' का स्वभाव जैसे उन मोदकमें कोइ कडुवा होवे, कोइ मीठा होवे. तैसे ज्ञानावरणी-सूर्यको बद्दल ढके जैसा. दर्शनावरणी-आँखका पट्टा बन्धे जैसा. वेदनी-मधु (सहत) भरी तरवार चाटे जैसा, मोहनी-मदिरा के नशेके जैसा. आयुष्य खोडे जैसा. नाम-कुम्भार जैसा, गोत्र-चित्रकार जैसा; और अंतराय पहरायत जैसा है. (४) 'प्रदेश-बन्ध' का स्वभाव, जैसे वह मोदक कोइ दुगणी, और कोइ तिगुणी सक्करसे होते हैं,तैसेकितनेकक र्मका बन्ध शि..ल (ढीला) और कितनेका निबट (मजबूत) होता

क्ष स्थान है, वहां मोक्ष प्राप्त हुये जीवके विशुद्ध निजात्म प्रदेश संस्थित (रहे) हैं. वो ऊपर अलोक को लगे हुये हैं. जो वो विशुद्ध आत्म प्रदेश हैं. सो ही जीवोंकी सिद्ध अवस्था है वो सिद्ध भगवंत कैसे हैं सो कहते हैं.

आत्मो पादानसिद्धं स्वयं मातिशय व द्वीत वाध विशालं
वृद्धी-हास व्यापेतं विपयविरहितं निष्पाति द्वन्द्व भावम्,
अन्यद्रव्या न पेक्षं निरूप ममितं शाश्वतं सर्वकाल
मुत्कृष्ठ नन्तसारं परम, सुख मतस्तस्य सिद्धस्य जातम्

अस्यार्थ—श्री सिद्धपरमात्मा—निजात्म स्वरूप संस्थित, स्वय अतिशय युक्त, अव्यावाध (सर्व व्याधा निर्मुक्त) हानी वृद्धि रहित, प्रतिक्षिकता वर्जित, अनोपम=किसीभी द्रव्यकी ओपमारहित, ज्ञानादीकी अपेक्षा अपार. नित्य, सर्व कार्ल उत्तम. परम सारयुक्त इत्यादि अनंत सुख सिद्ध परमात्मा विलसतहै.

और भी सिद्ध परमात्मा अतिन्द्रिय सुखके भुक्ता हैं. क्यों कि इन्द्रि जनित सुखतो फक्त कहने रूपही हैं. परिणाम उनका दुःख रूप होता है-क्योंकि इन्द्रीय के विपय को पोपणमे दुःखही होता है, सो पहिले बताही दिया. इस लिये सिद्ध भगवंत अनंत सुख के भुक्ता हैं.

आर्थ–जैसे बीज में अंकूर उत्पन्न होनेका जो अनादि सम्बन्ध है, उस बीजको अग्निसे दग्ध करने से वो उत्पत्ति सम्बन्ध नष्ट होजाता है, तैसेही ऊपर कहे जो बंधके चार कारण उनकी कृतघ्न-संपूर्ण निर्जरा-अभाव होना अर्थात्-ध्यान रूप अग्नि कर उन बंधके कारण को अत्यन्त दग्ध करना-उनसे छूट निर्लेप होना उसेही मोक्ष कहते हैं.

जैसे बन्धनके योगसे तुम्बा पाणीमें डूबा रहता है, और वह बन्धन टूटतेही उस तुम्बेका पाणी उपर आके ठहरनेका स्वभाव है. तैसेही जीव कर्म बन्धनसे छूटतेही मोक्ष स्थानमें जा ठहरनेका स्वभाव है. * वह मोक्ष स्थान, लोकके मध्य भाग में जो त्रस नाल १४ राजू लम्बी है, उसके उपर अग्रभाग में एक सिद्ध शिला ४५ लक्षयोजनकी लम्बी चौडी (गोलपनासे जैसी) मध्य में ८ जोजन जाडी, क्रम-होतो २ किनारेपे अत्यंत पतली श्वेत सुवर्णकी है उस ऊपर एकही जोजन लोक है. उस जोजनके उपरके चौथे हिस्सेके छट्टे विभागमें सिद्ध स्थान मो

* जैसे पाणीके आधार विन तुम्बा आगे जाता नहीं है. तैसे ही धर्मास्तिके आधार विन जीव मोक्ष,लोकाग्र के आगे (आलोकमें) जा सकता नहीं है.

क्ष स्थान है, वहां मोक्ष प्राप्त हुये जीवके विशुद्ध निजात्म प्रदेश संस्थित (रहे) हैं. वो ऊपर अलोक को लगे हुवे हैं. जो वो विशुद्ध आत्म प्रदेश हैं. सो ही जीवोंकी सिद्ध अवस्था है वो सिद्ध भगवंत कैसे हैं सो कहते हैं.

आत्मो पादानसिद्धं स्वयं मातिशय व द्वीत वांध विशालं
वृद्धीर्न्हास व्यापेतं विपयविरहितं निष्पाति द्वन्द्व भावम्,
अन्यद्रव्या न पेक्षं निरूप मामितं शाश्वतं सर्वकाल
मुत्कृष्ट नन्तसारं परम, सुख मतस्तस्य सिद्धस्य जातम्

अस्यार्थ—श्री सिद्धपरमात्मा—निजात्म स्वरूप संस्थित, स्वय अतिशय युक्त, अव्याबाध (सर्व व्याधा निर्मुक्त) हानी वृद्धि रहित, प्रतिक्षिकता वर्जित, अनौपम=किसीभी द्रव्यकी औपमारहित, ज्ञानादीकी अपेक्षा अपार. नित्य, सर्व कालं उत्तम. परम सारयुक्त इत्यादि अनंत सुख सिद्ध परपात्मा विलसतहै.

और भी सिद्ध परमात्मा अतिन्द्रिय सुखके भुक्ता हैं. क्यों कि इन्द्रि जनित सुखतो फक्त कहने रूपही हैं. परिणाम उनका दुःख रूप होता है-क्योंकि इन्द्रीय के विपय को पोपणमे दुःखही होता है, सो पहिले बताही दिया. इस लिये सिद्ध भगवंत अनंत सुख के भुक्ता हैं.

सिद्ध परमात्मा ज्ञाना वर्णिय कर्मके नष्ट होनेसे, अनंत केवल ज्ञानवंत हुये, दर्शनावर्णियके नाश होनेसे अनंत केवल दर्शनवंत हुये. वेदनीय कर्मके नाशसे निराबाध सुखमें भुक्ता हुये, मोहनिय कर्मके क्षयमें शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्वी हुये. आयुष्य कर्मके नष्ट होनेसे अजरामर हुये. नाम कर्मके नाशसे अरूपी हुये. गौत्र कर्मके नाशसे खंड (अपलक्षण) रहित हुये. और अन्तराय कर्मके क्षयसे अनंत-दानलब्धि, लाभलब्धी भोग लब्धि, उपभोगलब्धि और अनंत बलवीर्यलब्धि के धारन हार हुये. ऐसे अनंत गुण सिद्ध भगवंतके हैं. उनका ध्यान ध्यानी करे.

"गति गमन"

पांच गतिमें गमन करनेके २० कारण:– १ महारंभ=महा त्रस स्थावर जीवोंका आरंभ (धमशाण) हो, ऐसा कारखाना चलावे, २ महा परिग्रह–महा अनर्थ मे द्रव्योपार्जन करना अघके नहीं. और "चमडी जावो पण दमडी मत जावो" ऐसा लालची (कंजूस) ३ कुणिमाहारी मांस मदिरादि अभक्ष भक्षक. ४ पंचेंद्रिय वधक–मनुष्य पशुका घातिक. इन चार कर्मोसे नरकमे जाय. ५ माया–दगाबाज. ६ नि-

विड माया=मोटा ठग, धूर्त. ७ मच्छरी—गुणीका द्वेषी. ८ कुड माणे—खोटे तोले मापे रक्खे. इन ४ कर्मोंसे तिर्यंच (पशु) गतिमें जाय. ९ भद्रिक—सरल (दगा रहित.) १० विनीत—नम्र कोमल स्वभावी मिलापू ११ दयाल—दुःखी देख करुणा करे, यथा शक्ति सुख देवे. १२ 'अमच्छरी'—गुणानुरागी शुभउन्नति इच्छक. इन ४ कर्मोंसे मनुष्य गति पावे. १३ 'सराग संयमी'—शरीर, शिष्य, उपग्रहणपर ममत्व रखने वाले, साधु. १४ 'संयमा संयम'—श्रावक. १५ 'बालतपस्वी' हिंसा युक्त तप करने वाले (कंद भक्षादि) १६ 'अकाम निर्जरा'—परवशसे दुःख सहके मरने वाले. इन ४ कामों से देवता होय. १७ ज्ञान—जीवादी ९ पदार्थ जाणें. १८ दर्शन—यथार्थ श्रद्धावंत. १९ चारित्र-शुद्ध संयमी (साधु) और २० तप—ज्ञान युक्त तपश्चर्या करने वाले- इन चार कामोंसे मोक्ष में जावे. इन २० कर्मों में से धर्म ध्यानी ४ गति के १६ कामोंको छोड मोक्ष गमन जाने के ४ कर्मोंका साधन करे.

"हेतू"

संसार के हेतू ५७ हैं—२५ कषाय. १५ योग, १२ अव्रत. ५ मिथ्यात्व. यह ५७ हुवे. इनका विस्तारः—
२५ कषाय— १अनंतान बन्धी क्रोध—पत्थर की तराड

जैसा. (कधी मिले नहीं) २ अनुतान वन्धी मान-पत्थर केस्थंभ जैसा (कधी नमें नहीं] ३ अनुतान वन्धी माया-वाँशकी जड जैसे. (गांठ में गांठ) ४ अनुतान वन्धी लोभ-किरमची रंग जैसा (जले तो भी न जाय) [यह मिथ्यात्वी नरक में जाय] ५ अप्रत्याख्यानी क्रोध-धरती की तगड (वर्षाद से मिळे) ६ अप्रत्याख्यानी मान-काष्ट स्थंभ (मेहनत से नमें) ७ अप्रत्याख्यानी माया-मींढाका श्रृंग (आंटे दिखे) ८ अप्रत्याख्यानी लोभ-*खंजरका रंग (क्षार से निकले) [यह देशव्रत घाती. तिर्यच में जाय]९ प्रत्याख्यानी क्रोध-रेती की लकीर(हवा से मिले.) १० प्रत्याख्यानी मान-बेत स्थंभ (नमाये नमें) ११ प्रत्याख्यानी माया-चलते बैल का मूत्र (वाक साफ दिखे) १२ प्रत्याख्यानी लोभ-कादवका रंग (सूखन से अलग हो) (यह सर्व व्रत घातिक, मनुष्य होय.) १३ संजलका क्रोध-पाणी की लकीर. १४ संजलकामान-त्रणस्थंभ १५ संज्वलकी माया=वांशकी छूंती. १६ संजलका लोभ-पंतगका रंग (यह केवल ज्ञानका घातीक, देवता होय) १७ 'हास'-हँसे, १८ 'रति' खुशी, १९ 'आरति'-उदासी.

* १ गाडीके पहियेका ओंगन.

कितना आरंभ होता है. ऐसे भोजन मकान वगेरे संसारके अनेक कार्योको अलग २ उत्पत्ति से उपयोग में आवे वहां तक के पापोंके तर्फ द्रष्टि लगाने से रो मांच होते हैं. ऐसा महा पाप करके यह संसार भरा है, और एकेक वेपारमें द्रष्टि लगाके देखो कितना जु-लम निपजता है. कित्नेक पापतो अपने जाण में हो ते हैं. और कितनेक महा घोर जगत्के पातकोंसे अपन वाकेफ भी नहीं हैं. तो भी उनकी अव्रत(पाप का हिस्सा) अपच्चक्खाणी सब जीवोंकों लग रहा है. जैसे घरके किमाड न लगाये तो विना जाणे देखे और विना मनभी कचरा घरमें घुस जाता है, तेसे विन पच्चक्खाण किये पाप आत्माको लगता है. ऐसा जाण मुमुक्षु जीवोंको वारेही अव्रत्त रोकना चाहिये.

५ "मिथ्यात्व"—इस जीवने इस संसारमें अनंत परिभ्रमण किया उसका हेतू मिथ्यात्व ही है, यह छूटना बहूतही मुशकिल है, क्योंकि अनादी कालका सोबती है. और इसके छूटे विन मोक्ष नहीं मिले, इसके लिये मुमुक्षु को इन की पहिचान जरूरही करना चाहिये. इसके मुख्य ५ भेद हैं:—

१ "अभिग्रह मिथ्यात्व"—खोटा पक्ष पक्का धारण

कितना आरंभ होता है. ऐसे भोजन मकान वगैरे संसारके अनेक कार्योंको अलग २ उत्पत्ति से उपयोग में आवे वहां तक के पापोंके तर्फ दृष्टि लगाने से रो मांच होते हैं. ऐसा महा पाप करके यह संसार भरा है, और एकेक वेपारमें दृष्टि लगाके देखो कितना जु. लम निपजता है. कित्नेक पापतो अपने जाण में हो ते हैं. और कितनेक महा घोर जगत्के पातकोंसे अपन वाकेफ भी नहीं हैं. तो भी उनकी अव्रत(पाप का हिस्सा) अपच्चक्खाणी सब जीवोंको लग रहा है. जैसे घरके किमाड न लगाये तो विना जाणे देखे और विना मनभी कचरा घरमें घुस जाता है, तैसे विन पच्चक्खाण किये पाप आत्माको लगता है. ऐ सा जाण मुमुक्षु जीवोंको वारेंही अव्रत्त रोकना चाहिये.

५ "मिथ्यात्व"—इस जीवने इस संसारमें अनंत परिभ्रमण किया उसका हेतू मिथ्यात्व ही है, यह छू टना बहूतही मुशकिल है. क्योंकि अनादी कालका सोवती है. और इनके छूटे विन मोक्ष नहीं मिले, इसके लिये मुमुक्षु को इन की पहिचान जरूरही कर ना चाहीये. इसके मुख्य ५ भेद हैं:—

१ "अभिग्रह मिथ्यात्व"—खोटा पक्ष पक्का धारण

आरंभ) (७–१२ श्रुत, चक्षू, घण, रस, स्पर्श और मन (इन छे इंद्रियोंके पोषणे लिये जगत में होता हैं. उन) की अव्रत समय २ अपच्चक्खाणीके आती है. और कर्मका वन्ध करती हे. देखीये! इंद्रीयों पोपणे अनेक पचेंद्रीयका कट्टा कर चमडा लाते हैं. और वाजिंत्र मंडाते हैं, धातू गलाके कशाल भंभा प्रमुख वनाते हैं. अनेक मनोहर स्थान वस्त्र, भूपण भोजनादि सामग्रही अनेक आरंभ कर निपजाते हैं. मदिरा मांस अभक्षका आहार, परस्त्री वैश्या गमन, इत्यादि एकेक कर्म के पापके सामे जो दीर्घ द्रष्टी से विचार ते हें तो वेचारे पृथव्यादि जीवोंका घमशाण दृष्टी पडता है. (१) एक वस्त्र निपजाणे-पृथ्वी का पेट हलसे चीरना, और खेती में खात न्हाख उसमें अ संख्य त्रस स्थावरका कट्टा. निदाणी प्रमुख अनेक खे ती के पापसे झाड होवे, कपास लगे, उसे चूंट भेल कर, फिर गिरनी पे लोढावे, जावत वस्त्र तैयार हो वहां तक अंसख्य त्रसस्थावरोंका घमशाण हो जाय फिर रंगण कर्म वगेरे होवे वहां का पाप विचारिये ऐसे महा अनर्थ से एक वस्त्र निपजता है. तैसेही भूषण को देखीये! धातुखदान धातुसे मट्टी अलग कर, सोनार उसे गला घाट घड उज्वलादी क्रियाके

कितना आरंभ होता है. ऐसे भोजन मकान वगैरे संसारके अनेक कार्योंको अलग २ उत्पत्ति से उपयोग में आवे वहां तक के पापोंके तर्फ दृष्टि लगाने से रो मांच होते हैं. ऐसा महा पाप करके यह संसार भरा है, और एकेक वेपारमें दृष्टि लगाके देखो कितना जुलम निपजता है. कित्नेक पापतो अपने जाण में होते हैं. और कितनेक महा घोर जगत्के पातकोंसे अपन वाकेफ भी नहीं हैं. तो भी उनकी अव्रत(पाप का हिस्सा) अपच्चक्खाणी सब जीवोंको लग रहा है. जैसे घरके किमाड न लगाये तो विना जाणे देखे और विना मनभी कचरा घरमें घुस जाता है, तैसे विन पच्चक्खाण किये पाप आत्माको लगता है. ऐसा जाण मुमुक्षु जीवोंको बारेही अव्रत्त रोकना चाहिये.

५ "मिथ्यात्व"—इस जीवने इस संसारमें अनंत परिभ्रमण किया उसका हेतू मिथ्यात्व ही है, यह छूटना वहूतही मुशकिल है. क्योंकि अनादी कालका सोवती है. और इसके छूटे विन मोक्ष नहीं मिले, इसके लिये मुमुक्षु को इन की पहिचान जरूरही करना चाहिये. इसके मुख्य ५ भेद हैं:—

१ "अभिग्रह मिथ्यात्व"—खोटा पक्ष पक्का धारण

आरंभ) (७-१२ श्रुत, चक्षु, घ्राण, रस, स्पर्श और मन (इन छे इंद्रियोंके पोषणे लिये जगत में होता हैं. उन) की अव्रत ममय ? अपच्चक्खाणीके आती है. और कर्मका बन्ध कर्ता है. देखीये! इंद्रीयों पोषणे अनेक पचेंद्रीयका कुट्टा कर चमडा लाते हैं. और वाजिंत्र मंडाते हैं. धातु गलाके कशाल भभा प्रमुख बनाते हैं. अनेक मनोहर स्थान वस्त्र, भूषण भोजनादि मामग्रहीं अनेक आरंभ कर निपजाते हैं मदिरा मांस अभक्षका आहार, परस्त्री वेश्या गमन, इत्यादि एकेक कर्म के पापक माने जो दीर्घ दृष्टी से विचार ते है तो बेचार पृथव्यादि जीवोंका घमशाण दृष्टी पडता है. (१) एक वस्त्र निपजाणे रुई का पेट हलसे चीरना और खेती से ध्यान न्यारा उसमे असंख्य त्रसस्थावर का कुट्टा, निदार्ण प्रमुख अनेक खेती के पापसे झाड होवे, कपास लगे उस चट मेला कर फिर गिरनी पे लोढावे, जावत वस्त्र तैयार होवे वहां तक असंख्य त्रसस्थावरोंका घमशाण हो ... फिर रंगण कर्म वगैरे होवे वहां का पाप विचारीये. ऐसे महा अनर्थ से एक वस्त्र निपजता है. तैसेही भूषण को देखीये! धातुखांणी ... महा अनग कर. मोनार उसे ... घाट घड ... हींदी क्रिया से

योजनके नगर शहर होवे उसमें क्या आश्चर्य ? ५ क्षेत्र फलावट से कोटी घर और मनुष्योंकी वस्ती से शंका लाते हैं: परंतु कोटी शब्दका अर्थ एक क्रोडही होय ऐसा न समजीये. अभी भी कहीं ६ को और कहीं २० को कोडी कहते हैं. ऐसे ही उस वक्तभी किसी वडी संख्याको कोडी कहते होंगे. ६ अभी भी एकेक मिनिटमें हजारो का व्याज आवे ऐसे श्रीमंत बेठे हैं. उस वक्त इभ पति आदि होवें उसमें क्या हरकत ? ७ अभी भी लोहकी शांकल तोडने वाले मनुष्य हैं. तो गत कालमें अनंत बली होवें उसमें क्या अश्चर्य? ८ और पृथ्वी का अंतः किसे देखा है, जो केवलीके वचनको उत्थापके अनुक संख्यामें ही द्वीप समुद्र बताते हैं: और जो द्वीप समुद्र असंख्य हैं. तो उन्हमें प्रकाश करने वाले चन्द्रा सूर्य भी असंख्य हुये चाहिये. ९ आंखसे विन देखे शब्द गन्ध आदि से गृही वस्तुको कबूल करो, तो फिर अरूपी पदार्थको वि न देखे क्यों नहीं माने. १० घृत भोगव करके भीउसका स्वाद नहीं कह सके हो.तो मोक्षके सुखका वर्णन सुनसे कैसे हो सके. भोगवे सोही जाने. इत्यादि स्थूल विचारोंसे कितनेक स्थूल वातोंका निर्णय होतेके. और कितनेक अमक्ष वातोंका निर्णय नहीं भी

योजनके नगर शहर होवे उसमें क्या आश्चर्य ? ५ क्षेत्र फलावट से कोटी धन और मनुष्योंकी वस्तीसे शंका लाते है: परंतु कोटी शब्दका अर्थ एक क्रोडही होय ऐसा न समजीये. अभी भी कहीं ६ को और कहीं २० को कोडी कहते हैं. ऐसे ही उस वक्तभी किसी बडी संख्याको कोडी कहते होंगे. ६ अभी भी एकेक मिनिटमें हजारो का व्याज आवे ऐसे श्रीमंत बेठे हैं. उस वक्त इभ पति आदि होवें उसमें क्या हरकत ? ७ अभी भी लोहकी शांकल तोडने वाले मनुष्य हैं. तो गत कालमें अनंत बली होवें उसमे क्या अश्चर्य? ८ और पृथ्वी का अंत: किसे देखा है, जो केवलीके वचनको उत्थापके अमुक संख्यामें ही द्वीप समुद्र बनाते हैं; और जो द्वीप समुद्र असंख्य हैं. तो उन्हमें प्रकाश करने वाले चन्द्र सूर्य भी असंख्य हुये चाहिये. ९ आंखसे विन देखे शब्द गन्ध आदि से गृही वस्तुको कबूल करे. तो फिर अरूपी पदार्थको विन देखे क्यों नहीं माने. १० घृत भोगव करके भी उसका स्वाद नहीं कह सके हो,तो मोक्षके सुखका वर्णन सुनसे कैसे हो सके. भोगवे सोही जाने. इत्यादि स्थूल विचारोंसे कितनेक स्थूल बातोंका निर्णय होनेके, और कितनेक अमल बातोंका निर्णय नहीं भी

जारो लाखो धनुष्यकी अवगहना, नगरीयोंका प्रमाण और वस्ती, चक्रवर्तीकी ऋद्धि और प. राक्रम, लब्धीयों, भुगोल-खगोल का हिसाब, तथा अ. रूपी जीवराशी, सूक्ष्म जीवों, और मोक्षके सुख तथा आश्चर्य वगैरे २ बातोंमें वेम लावे, कि-यह असं. भव बातों सच्ची कैसे मानी जाय? परंतु यों नहीं विचारे कि-यह अनंत ज्ञानीके समुद्र जैसे वचन मे. री लोटे जैसी बुद्धिमे कैसे समावे. वीतरागी पुरुष मि. थ्यालाप कदापि नहीं करनेके, केवल ज्ञानमें जैसा दृ. ष्टी आया वैसा फरमाया. और सच है. अच्छीभी १ जो क्रोड औषधी के चूर्ण का राइ जितने विभागमें भी क्रोड औषधी का अंश ममजतेहैं, यहतो करनची है तो कुं. दरती कंदमूलके टुकडेमें अनंत जीव होवें उसमें क्या आश्चर्य. ? २ अच्छी भी हाथीका बडा और कुंथवेका छोटा शरीर होता है. वैसे ही गत कालमें मनुष्यादि की जादा अवगहणा और जादा आयुष्य होवे उस. में क्या आश्चर्य ? ३ तथा हाथी बहुत दूरसे दिखता है और कुंथवा नजिकहीसे मुशीबत से दिखता है. उ. ससेभी ज्यादा सूक्ष्म पृथिव्या दिकके जीव होवे और वो दृष्टी न आवे इसमें क्या आश्चर्य ? ४ अच्छीभी अन्यस्थानोंमें बडे २ शेहर हैं तो प्राचीन कालमें १२

योजनके नगर शहर होवे उसमें क्या आश्चर्य ? ५ क्षेत्र फलावट से कोटी घर और मनुष्योंकी वस्ती से शंका लाते है; परंतु कोटी शब्दका अर्थ एक क्रोडही होय ऐसा न समजीये, अभी भी कहीं ६ को और कहीं २० को कोडी कहते हैं. ऐसे ही उस वक्तभी किसी बडी संख्याको कोडी कहते होंगे. ६ अभी भी एकेक मिनिटमें हजारो का व्याज आवे ऐसे श्रीमंत बेठे हैं. उस वक्त इभ पति आदि होवें उसमें क्या हरकत ? ७ अभी भी लोहेकी शांकल तोडने वाले मनुष्य हैं. तो गत कालमें अनंत बली होवें उसमे क्या अश्चर्य? ८ और पृथ्वी का अंतः किसने देखा है, जो केवलीके वचनको उत्थापके अमुक संख्यामें ही द्वीप समुद्र बताते हैं; और जो द्वीप समुद्र असंख्य हैं. तो उन्हमें प्रकाश करने वाले चन्द्र सूर्य भी असंख्य हुये चाहिये. ९ आँखसे विन देखे शब्द गन्ध आदि से गृही वस्तुको कबूल करें, तो फिर अरूपी पदार्थको विन देखे क्यों नहीं माने. १० घृत भोगव करके भीउसका स्वाद नहीं कह सक्ते हो,तो मोक्षके सुखका वर्णन मुखसे कैसे हो सके, भोगवे सोही जाने. इत्यादि स्थूल विचारोंसे कितनेक स्थूल बातोंका निर्णय होसके, और कितनेक अग्रह्य बातोंका निर्णय नहीं भी

जारों लाखों धनुष्यकी अवगहना, नगरीयोंके प्रमाण और वस्ती, चक्रवर्तीकी ऋद्धि और पराक्रम, लब्धीयों, भुगोल खगोल का हिंसाब,तथा अरूपी जीवरशी, सूक्ष्म जीवों, और मोक्षके सुख तथा आस्तित्व वगैरे २ वातोंमें वेम लावे, कि-यह असंभव वातों सच्ची केसे मानी जाय ? परंतु यों नहीं विचारे कि-यह अनंत ज्ञानीके समुद्र जैसे वचन मेरी लोटे जैसी बुद्धिमे कैसे समावे. वीतरागी पुरुष मिथ्यालाप कदापि नहीं करनेके, केवल ज्ञानमें जैसा दृष्टी आया वैसा फरमाया. और सच है.अब्बीभी १ जो क्रोड औषधी के चूर्ण का राइ जितने विभागमें भी क्रोड औषधी का अंश समजतेहें, यहतो करतवी है तो कुदरती कंदमूलके टुकडेमें अनंत जीव होवें उसमें क्या आश्चर्य. ? २ अब्बी भी हाथीका वडा और कुंथवेका छोटा शरीर होता है. वैसे ही गत कालमें मनुष्यादि की जादा अवगेहणा और जादा आयुष्य होवे उसमें क्या आश्चर्य ? ३ तथा हाथी बहुत दूरसे दिखता है और कूथवा नजिकहीही मुशीवत से दिखता है.उससेभी ज्यादा सूक्ष्म पृथिव्या दिकके जीव होवे और वो दृष्टी न आवे इसमें क्या आश्चर्य ? ४ अब्बीभी अन्यस्थानोंमें वडे २ शेहर हैं तो प्राचीन कालमें १२

पात्र इनकी यत्ना करे. मनादि तीयोग वस में करे, सबके साथ मित्री (मैत्री भाव) रक्खे, सदा उपयोग युक्त प्रवर्ते, दिनक द्रष्टीसे और रात्रि को रजोहरणसे पुंज (झाड) के हरेक वस्तु काम में ले. अयोग्य वस्तु यत्नासे एकांत परिठावे (डालदे) यह १७ प्रकारके संयम. और 'अणसण'—दो घडी, या जाव जीव अहार त्यागे. २ 'उणोदरी'—उपाधी और कषाय कमी करे, ३ भिक्षाचारीसे उपजीव. ४ रस [विगय] का परित्याग करे. ५ कायाको लोचादिकर क्लेश दे, ६ प्रतिसंलीनता—इन्द्रीयों कषाय योग की प्रवर्ती घठावे, ७ लगे पापका प्रायश्चित ले शुद्ध होवे, ८-१२ विनय वयवच्च, सझाए, ध्यान, काया उत्सर्ग करे, यह १२ प्रकारका तप ज्ञान युक्त करके अपणी आत्माको भावते (आत्मामें रमण करते) हुवे विचरे प्रवर्ते.

और श्री भगवानने श्री उत्तराध्ययनजी सूत्र में फरमाया है कि—"समय गोयम मा पमाए" अर्थात् हे गौतम! तथा मुमुक्षु जीवो! आत्म साधन मोक्ष प्राप्ति करने के उपाय के कार्यमें किंचित समय[वक्त] भी प्रमाद मत करो!!

"पांच प्रमाद"

गाथा-मदविसयकषाय. निंद्रा विकहाय पंचमा भणिया

एए पंच पमाया, जीवा पाडंति संसारे ॥१॥

१ मद—जाति, कुल, बल, रूप, लाभ, ज्ञान तप और ऐश्वर्य (मालकी) यह ८ प्रकारकी उत्तमता जीवोंको पुण्योदयसे होती है, और इनका मद-अभी मान करके जो संयम-व्रत ब्रम्हचर्य परोपकारादि में नहीं लगाते हैं; तथा कुछेक अच्छे कार्य के प्रभावसे यत्किंचित कीर्तिवंत हो, कि मैं पण्डित हूं. शुद्धाचारी हूं. वक्ता हूं, सब जन मुझे सत्कार सन्मान देते हैं. मैं जगत्प्रसिद्ध हूं. सरस्वती कंठा भरण, वादी, विजय, वगैरे उपाधियों मुझे मिली है. कि वह मैं एक आद्बितीय महात्मा हूं. ऐसे विचारसे जो भरा हो या स्वमुखसे कहता हो, वो ज्ञानादि गुणसे नष्ट हो-भ्रष्ट बनता है. अभीमानी अपने किंचित् सद्गुणको मेरू तुल्य देखता है, और अन्यके अपार गुणको तथा अपने अपार दुर्गुणोंको राइ तुल्य किंचित समजता है, इस लिये वो अपना उद्धार नहीं कर सक्ता है इत्यादि दुर्गुणोंसे मद भरा है, इस लिये इसे मद-मदिरा (दारू) के नाम से बोलाया है.

२ "विसय" शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श इन पांचहीकी पूर्णता पुण्योदयसे होती है. इने जो गुणी गुण उच्चार, साधु दर्शन, तप वगैरे सत्कार्यमें

नहीं लगाते; बीभत्सशब्दोचार, रूप अवलोकन, गंध ग्रहण, अभक्ष भक्षण, और भोग विलासमें लगाके नष्ट करते हैं- अमृत समान इन ५ गुणोंको विषय में लगा विष (जहर) रूप वना, दोनो भव में दुःखके भुक्ता होते हैं; इस लिये इसे विषय (जेहर) के नाम से बोलाये हैं-

३ "कसाय"-क्रोध, मान माया, और, लोभ यह चारही कषाय महा पापका मूल है- इनके वशमें हो जीव आपा (भान) भूल जाता है. आत्म घात द्रव्यनाश, यशकी क्खारी, कुलका संहार, अयोग्य कार्य करते बिलकुल अचकाते नहीं हैं. निवल अनाथ को स्व पराक्रम से और बलिष्टोको दगा से नष्ट कर महा पापों से अपणी आत्माको मलीन कर, दोनो लोक में दुःखके भुक्ता होते हैं. इस लिये इन्हे कषाय (कर्म का रस आय) या कसाइ (घातकी) नाम से बोलाते हैं.

४ "निंदा"-इस शब्दके दो अर्थ होते हैं:—
(१) निंदा (निंद्य) इस दशवैकालिक शास्त्र में कहा है कि "पीठि मांसं न खाइज्जा" अर्थात् किसी के पीछे निंदा (दुर्गुण प्रगट) करना है, उसे मांस भक्षण जैसा बताया है. निंदक ज्ञानी, शुद्धाचारी,

एए पंच पमाया, जीवा पाडंति संसारे ॥१॥

१ मद—जाति, कुल, बल, रूप, लाभ, ज्ञान तप और ऐश्वर्य (मालकी) यह ८ प्रकारकी उत्तमता जीवोंकों पुण्योदयसे होती है, और इनका मद-अभी मान करके जो संयम-व्रत ब्रम्हचर्य परोपकारादि में नहीं लगाते हैं; तथा कुछेक अच्छे कार्य के प्रभावसे यत्किंचित कीर्तिवंत हो, कि मैं पण्डित हूं. शुद्धाचारी हूं. वक्ता हूं, सब जन मुझे सत्कार सन्मान देते हैं. मैं जगत्प्रसिद्ध हूं. सरस्वती कंठा भरण, वादी, विजय, वगैरे उपाधियों मुझे मिली है. कि यह मैं एक अद्विनीय महात्मा हूं. ऐसे विचारसे जो भरा हो या स्वमुखसे कहता हो, वो ज्ञानादि गुणसे नष्ट हो-भ्रष्ट बनता है. अभीमानी अपने किंचित् सद्गुणको मे. रू तुल्य देखता है, और अन्यके अपार गुणको तथा अपने अपार दुर्गुणोंको राइ तुल्य किंचित समजता है, इस लिये वो अपना उद्धार नहीं कर सक्ता है इत्यादि दुर्गुणोंसे मद भरा है. इस लिये इसे मद-मदिरा (दारू) के नाम से बोलाया है.

२ "विसय" शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श इन पांचहीकी पूर्णता पुण्योदयसे होती है. इने जो गुणी गुण उच्चार, साधु दर्शन, तप वगैरे सत्कार्यमें

नहीं लगाते; वीभत्सशब्दोच्चार, रूप अवलोकन, गंध ग्रहण, अभक्ष भक्षण, और भोग विलासमें लगाके नष्ट करते हैं- अमृत समान इन ५ गुणोंको विषय में लगा विष (जहर) रूप वना, दोनो भव में दुःखके भुक्ता होते हैः इस लिये इसे विषय (जेहर) के नाम से बोलाये हैं-

३ "कसाय"—क्रोध, मान माया, और, लोभ यह चारही कषाय महा पापका मूल है. इनके वशमें हो जीव आपा (भान) भूल जाता है. आत्म घात द्रव्यनाश, यशकी क्ष्वारी, कुलका संहार, अयोग्य कार्य करते बिलकुल अचकाते नहीं हैं. निवल अनाथ को स्व पराक्रम से और वलिष्टोको दगा से नष्ट कर महा पापों से अपणी आत्माको मलीन कर, दोनो लोक में दुःखके भुक्ता होते हैं. इस लिये इन्हे कषाय (कर्म का रस आय) या कसाइ (घातकी) नाम से बोलाते हैं.

४ "निंदा"—इस शब्दके दो अर्थ होते हैंः— (१) निंदा (निंय) इस दशवैकालिक शास्त्र में कहा है कि "पीट्टि मांसं न खाइज्जा" अर्थात् किसी के पीछे निंदा (दुर्गुण प्रगट) करना है, उसे मांस भक्षण जैसा बताया है. निंदक ज्ञानी, शुद्धाचारी,

एए पंच पमाया, जीवा पाडंति संसारे ॥१॥

१ मद—जाति, कुल, बल, रूप, लाभ, ज्ञान तप और ऐश्वर्य (मालकी) यह ८ प्रकारकी उत्तमता जीवोंको पुण्योदयसे होती है, और इनका मद-अभीमान करके जो संयम-व्रत ब्रम्हचर्य परोपकारादि में नहीं लगाते हैं; तथा कुछेक अच्छे कार्य के प्रभावसे यत्किंचित कीर्तिवंत हो, कि में पण्डित हूं. शुद्धाचारी हूं. वक्ता हूं, सब जन मुझे सत्कार सन्मान देते हैं. में जगत्प्रसिद्ध हूं, सरस्वती कंठा भरण, वादी, विजय, वगैरे उपाधियों मुझे मिली है. कि वहू मैं एक आद्विनीय महात्मा हूं. ऐसे विचारसे जो भरा हो या स्वमुखसे कहता हो, वो ज्ञानादि गुणसे नष्ट हो-भ्रष्ट बनता है. अभीमानी अपने किंचित् सद्गुणको मेरू तुल्य देखता है, और अन्यके अपार गुणको तथा, अपने अपार दुर्गुणोंको राइ तुल्य किंचित समजता है, इस लिये वो अपना उद्धार नहीं कर सक्ता है इत्यादि दुर्गुणोंसे मद भरा है. इस लिये इसे मद-मदिरा (दारू) के नाम से बोलाया है.

२ "विसय" शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श इन पांचहीकी पूर्णता पुण्योदयसे होती है. इने जो गुणी गुण उच्चार, साधु दर्शन, तप वगैरे सत्कार्यमें

नहीं लगाते; बीभत्सशब्दोचार, रूप अवलोकन, गंध ग्रहण, अभक्ष भक्षण, और भोग विलासमें लगाके नष्ट करते हैं- अमृत समान इन ५ गुणोंको विषय में लगा विष (जहर) रूप बना, दोनो भव में दुःखके भुक्ता होते हैं; इस लिये इसे विषय (जेहर) के नाम से बोलाये हैं-

३ "कसाय"—क्रोध, मान माया, और, लोभ यह चारही कषाय महा पापका मूल है. इनके वशमें हो जीव आपा (भान) भूल जाता है. आत्म घात द्रव्यनाश, यशकी क्षारी, कुलका संहार, अयोग्य कार्य करते बिलकुल अचकाते नहीं हैं. निबल अनाथ को स्व पराक्रम से और बलिष्ठोको दगा से नष्ट कर महा पापों से अपणी आत्माको मलीन कर, दोनो लोक में दुःखके भुक्ता होते हैं. इस लिये इन्हे कषाय (कर्म का रस आय) या कसाइ (घातकी) नाम से बोलाते हैं.

४ "निंदा"—इस शब्दके दो अर्थ होते हैं:—
(१) निंदा (निंद्य) इस दशवैकालिक शास्त्र में कहा है कि "पीट्टि मांसं न खाइज्जा" अर्थात् किसी के पीछे निंदा (दुर्गुण प्रगट) करना है, उसे मांस भक्षण जैसा बताया है. निंदक ज्ञानी, शुद्धाचारी,

प्रभावक, धर्मोन्नत्ती कर्ता, तपस्वी, क्षमाशील, वगैर के गुणानुवाद श्रवण कर सहन नहीं कर सक्ता है, और उन्हे ढांकने उनकी निंदा करता है, अच्छेत आल वज्जा देता है. कृतर्कोंसें उनकी भक्तिपेसे भोले लोकोंके भाव उतारता है. ऐसी नीच निंदा ही निंन्दा पात्र है. ❀

निन्दा विषय सद्बोध.

अहो आत्मान्? तूं अहो निश दूसरेके दोष देखने में तत्पर रहता है, विचारता है कि—अमुक क्रोधी है, अमुक अभिमानी है, अमुक दगाबाज है ऐसेही-लालची है- विश्वास घाती है, घातकी है, झूठा है, चोर है, व्यभिचारी है, उपरसे भक्त दिखता है. प्रभु २ स्मरण करता है परन्तु बडा पाखंडी है—धूर्त-ठगारा है. वृत भंग करने वाला है. इत्यादि अनेक प्रकारके दुसरे के दोषोंका अवलोकन कर उनको

❀ नरेशा-नरक निगोदममे निन्दा का करणहार, चड्डाल समान ज्यांकी संगत न कामकी; आपकी पडाइ पर हाणीमें मगन मूढ, ताकत पराये छिद्र नीत है हरामकी याकी निंदा कौन सुण, खुशी नहीं होणा कवौं, पीछेसे करेगा नर, तैरी वद नाम की. तिलोक कहेन तेरे दोष. है निंदक माहे! यहांसे मर जाय. आगे गती यमधाम की ॥ १ ॥

दोषी ठहराता है. जिससे जिसका मन मलीन रहता है, फिर वो मन उसमें तल्लीन होनेसे उस दोष का संस्कार सचोट मन पर होता है और वचन द्वाराभी उच्चार करने लग जाता है, जिससे उन दोषोंकी अन्य अनेकोंकी आत्मा में प्रेरना करता है. और फिर वोही कार्य आपभी करने लगजाता है. यों दूसरे के दोषोंका अवलोकन करने से दुसरे का सुधारा होना तो दूर रहा परन्तु खुद आपही उन दोषों में डूब मरता है. अनेकोंकी आत्मा के दोषों देखने से आप आप दोषीत हो अनेकोंका विरोधी हो वो आपही बहुतों का निन्दनिय बन जाता है.

निन्दक मनुष्य स्वभाव से बुरा खराब होता है, यथा दृष्टान्त-किसी महाराजाने रत्न जडित मनो हर महल बनाया उसको देखने अनेक मनुष्य आये और परसंशा करी. परन्तु एक चांडाल आया सो कहने लगा कि इस महल में पाखाना तो रखाही नहीं! ऐसे निन्दक मनुष्य की सदा नीच बुद्धि रहती है, सर्व सद्गुणोंको त्याग दुर्गुण कोही देखता है.

रे आत्मान्! तूं दुसरे के दुर्गुणों को देख उन की निंदा करता है उनही दुर्गुणों से तेरी आत्मा बची है क्या? तू सर्व सद्गुणों संपन्न है? सर्वतः निर्दोषी है?

इतना तो जरा तेरे मनकी साक्षी से विचार कर. अवल तो तेरे में यह निन्दा रूपही बड़े दुर्गुण ने निवास किया है. और भी तूं राजा ब्राह्मण साहुकार पटेल इत्यादि उत्तम नामों से पुजा कर, उस पद की शुद्ध निती प्रमाणे चलता है क्या? धर्मात्मा, पुण्यात्मा, सम्यग द्रष्टी, श्रावक, साधु, महात्म, आचार्य, तपश्वी, पण्डित वगेरे नाम धरा कर उस पर के आचर को पूर्णता सेपालते हे? ऐसी तरह अंतर आत्म द्रष्टि से विचार करने से सहजही भास होगा कि में खुदही निन्दा पात्र हूं. और जब आपही खुद खराब है तो फिर अपनी खराबी का सुधारा छोड, उलट दूसरे के दुर्गुण अपनी आत्मा में भर कर विपेश खराब करना यह कितनी जबर मूर्खता! इस लिये दुसरे की निंदा करनी यह सत्पुरुषोंका कर्तव्य हैही नहीं.

"दुनिया दोरंगी" यह जो जगत् का कह वत है उसपर लक्ष रख कर हे आत्मान्! तूं तेरी आत्मा के सद्गुण किसी को बताकर पर संशा कराने की इच्छा मत कर. और तेरेसद्गुणों का स्वरूप समजे बिनकोइ निंदा करे, सद्गुणों कोभी दुर्गुण रूप देखे तो भला इ देखो. उनके आगे तेरे सद्गुणों को सिद्ध कर के बताने की कुछ जरूर नहीं है. क्यों कि इस दुनियां में

कोइ एकही मनुष्य नही है कि- जिसको तूम समजा कर चुप बैठ रहेगा. आज एक को समजावेगा कल दूसरा निंदा करेगा दूसरेको समजाये तीसरा करेगा. यों सर्व मनुष्यों को तूं तेरे गुन समजाते २ थकजायगा. और तेरा इच्छितार्थ भी सिद्ध नही कर सकेगा. क्यों कि मुख्य में आत्म श्लाघही सद्गुणोको नीच स्थिर्ता को पहोंचाती है और नीचस्थीति ही निंदा पात्र होती है.

जेसे आरीसे में अच्छी बुरी वस्तु प्रती बिम्बित होते उसका कुछ नुकशान नहीं होता है. परन्तु द्रष्टाही राग द्वेष मय परिणाम से संकल्प विकल्प कर सुखी दुःखी होता है; तेसे ही शुद्धात्मा की किसी प्रवृत्ति किसीको अयुक्त भासे और वो निन्दा करे तो उस से शुद्धात्म कदापि दोषित नहीं होंगे, परन्तु निंदक की आत्मही मलीन होगी.

तीर्थंकर जेसे अत्यन्त विशुद्ध महात्मओंको भी दुनिया के अज्ञ मनुष्योंने दोषित ठहराये, तो दूसरे की कहनाही क्या! जेसे तीर्थंकरो गोसाल क जेसे प्रति स्वार्थीयों की निंदा से बिलकुल ही नहीं अचकाते सूर्य की माफिक धर्म प्रकाश की वृद्धि करते रहे, तेसे ही आत्म साधक को भी किसीके शब्द पर वि-

लकुल ही लक्ष नहीं देते. बिलकुलही शब्दोचार नहीं करते अपने इष्ट साधनेकी तरफ लक्ष बिन्दु रख प्रवर्तने से आपो आप स्वभावमेंही सद्गुण निन्दकों के हृदय मे सूर्य तुल्य प्रकाश करने लगजायगे, तो अन्यकी कहनाही क्या ?

जैसे किसी गरीब मनुष्य को कोइ श्रीमंत-धनाढ्य कहने से वो धनाढ्य होता नहीं है, और धनाढ्य को गरीब कहने से वो गरीब होतानहीं है, दोनो जैसे है वैसाही रहता है, तैसेही कोइ सद्गुणी को दुर्गुणी कहे तो वो दुर्गुणी होता नहि है, और दुर्गुणी का सद्गुणी भी होता नहीं है.

अपनी कीर्तिकी इच्छा करनी है यहभी एक प्रकार की कायरता है क्योंकि जिसके मनमें कीर्ती की इच्छा रहती है उसको हमेशा चारोंही तरफ का डर रहता है कि रखे, मैं ऐसा करूंगा तो दुनिया मेरे को क्या कहेगी? अथवा मैं कौनसा कार्य करूं कि जिससे सब मुझे अच्छा कहे ? इत्यादि विचारों से वो निरंतर आत्मोन्नति के लौकिक विरुद्ध औरव्यवहार शुद्ध का मों का साधन करना अटकता है, वगैरह आत्मोन्नति नहीं कर सके हैं.

आत्मानन्दी को लोकों की रुची में शुद्रता दर्शी.

नि का प्रयत्नछोड सर्वज्ञ की द्रष्टि में शुद्धता प्राप्ति होवे ऐसा पईन्त करना चाहिये क्योंकि जगत् के जीवोंको शुद्धता बताने से इष्टितार्थ–मोक्ष की प्राप्ति कदापि न होगी, परन्तु सर्वज्ञ आपकी शुद्धता को स्वीकारी तो फिर दुनिदा की क्या मग दूर है जो आप कों सिद्धी प्राप्ति के मार्ग में किसी प्रकारं का विघ्न कर सके.

(२) निद्रा (नींद) यह भी सत्कार्यमें विघ्न करने वाला जव्बर शत्रू है, इसकी धर्म स्थानमें विशेषता द्रष्टी आती है. कित्नेक मुनिव्रत धारण कर पापी श्रमण (साधु) बनते हैं, अर्थात् विना मेहनतसे अहार, वस्त्र, उपाश्रयआदि सामग्री के प्राप्त होने से वे फिकर हो, वहुत काल निद्रामें गुजारते हैं. यह निद्रा प्रमाद भी दोनो भवनें दुःख प्रद है.

५ विकथा=देशकथा, राजकथा, स्त्रीकथा, भक्तकथा यह चार प्रकारकी वी (खोटी) कथा कहीहै. और भी चोरोंकी धन की, धर्म खंडनकी, वैर विरोध की गुणवञ्चक, कामोत्तेजक क्लेश कारिणी, परपीडा कारिणी ग्लानी उत्पन्न करने वाली, इत्यादि अनेक प्रकार की वी कथा है. उसमें जो अमूल्य मनुष्य जन्म का आयुष्य क्षय करते हैं वो अन्याय करते हैं.कि-

नेक विद्वानो परिषादा को खुश करने अनेक कपोल कल्पित वार्तोसे, कल्पित विषयिक ढालोंसे, हाँस,श्रृंगार बीभत्सादि रसमें, लीन बनाते हैं× वो फुटी नाव के गाती भक्त जनों सहित पातालमें बेठते हैं.

यह पांचही प्रमाद बडे दुरुधर हैं. श्री भगवती जीके ८ में शतकमें फरमाया हे कि, चार ज्ञानी, चउदे पूर्वी, आहारिक शरीर, ऐसे मुनिराज इन पंच प्रमादके वशमें पड आयुष्य पूर्ण करें तो अधोगति पावें, ऐसे दुष्ट प्रमादोको जान भगवंत ने फरमाया हे कि "समय मात्र भी इसका सहवास मत करो ! " क्यों कि इसकी किंचित् संगतही ऐसी असर करती है कि फिर प्राणांत होते भी छूटना मुशकिल हे. इन वक्त जैन जैसे पवित्र धर्मकी दुर्दशा हो रही है वो इन्हीं का प्रमाद समजना. जो महात्मा पंच प्रमाद से बचे हैं वो ध्यान सिद्धि प्राप्त कर सकेंगे

यह आज्ञा विचय ध्यान अपार अर्थ से भरा है, परंतु यहां इतना कहके अब सबका सारांश थोडेमें कह यह पूरा करूंगा.

गाथा—किं बहुणाइहा जहा २ रागद्दोसा लहु विलिज्जंतु
तह २ पयट्टियव्वं, एसा आणा जिणिंदाणं

× दुहा—दगा कीसीका सगा नहीं, दगा कीसीका नहीं रहे, गुरुजी को दगा मारे, नरकी जावे सदा ॥ १ ॥

र्थ—यहां विपेश कहनेसे क्या प्रयोजन है !
थोडे मेंही समजीये कि जैसे २ राग और द्वेष
त्रना (जल्दी) से कर्मी होवे. वैसी २ प्रवर्त्ति क-
! येही श्री जिनेश्वर भगवानकी आज्ञा है.

यह आज्ञा विचय धर्म ध्यानमें प्रवेश करनेसे मि-
थ्यात्वादि अनादि मलका नाश कर चैतन्य को पवित्र
बनाने जलवत है. आधि, व्याधि, उपाधि, रूप ज्वा-
लासे जलते जीवको शांत करने पुष्करावर्त मेघवत्
है. मोह वनचरों के नाशके लिये केशरीसिंहवत, बुद्धि
वीवेक बढानेको सरस्वतिवत्. योगीयोंके मनको रमाणे
शांत आवास है. इत्यादि अनेक गुणोंके सागर आ-
ज्ञा विचय का चिंतवन धर्म ध्यानी सदा कहते हैं.

"द्वितिय पत्र-"अपाय विचय"

गाथा अप्पाण मेव जुज्झाहिं. किंते जुज्झेणव जओ
अप्पांण मेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमे हए,

अर्थात्—श्री नमीराज ऋषि शक्रेंद्रसे फरमाते है
कि, सुख इच्छाको कों अपणी आत्मामें रहे हुये
गुणों का परांजय करना चाहीये. अन्यके साथ बा
(प्रगट) युद्ध करने की क्या जरूर है ज्ञानादि

त्मा से कषायादि आत्माके साथ युद्ध करनेसेही आ त्मा सुख पाती है.

"अपाय विचय" धर्म ध्यान के ध्याता ऐसा विचारे कि-मेरा जीव सदासुख चाहता हैं; अनंत भव हुये सुख के लिये तडफ रहा हूं. अनेक उपाय करते भी अपाय होता है, की हुइ मेहनत निर्फल होती है, इसका क्या कारण? यह मेरे उपाय को नष्ट कर मेरे को प्राप्त होते हुये, मेरे पास रहे, अनंत अक्षय अव्याबाध सुख की व्याघात करने वाला शत्रु है ही कौन? हां! इतना निश्चय तो हुवा कि वो शत्रुओं बाहिरका कोइ पदार्थ नहीं है. क्योंकि बाहिर होयतो मुझे दुःख देने आते हुये दृष्टी आते. मेरे शत्रुओं तो मेरे घर मेंही घर कर बैठे हैं. (ठीक हुवा ढूंढनेका प्रयास घटा)आश्चर्य के इत्ले दिन मुझे क्यों नहीं दिखे? पर कहांसे दिखे, क्योंकि मै तो आजतक इनको देखने स्व घर छोड पर घरमें भटकता फिरा और वो अन्दर रहे मेरे उपायोंको नष्ट करते रहे. अच्छा अब तो मेरी भूल सुधारूं. अंदर रह बाह्य मिस आंतरिक शत्रुओंको अच्छी तरह पहचानने बाह्य दृष्टी बंध करूं. क्योंकि भगवानने फरमाया हैकि "एक समयमें दो कार्य न होवे" (ऐसा विचार आँख मींच

अन्दर अवलोके) अहो! यह मेरे शत्रु वडे जब्बर हैं. इनोने वडा ठाठ पाट जमा रक्खा है.

"मोहकी ऋद्धि"

यह तीन अज्ञान त्रिकोटसे घेरी हुइ प्रकृति कांगूर और चार गति दरवज्जे युक्त 'अविद्या' नगरी के मध्य में 'असंयम' महल की 'अधर्म' सभामें भृष्ट मति सिंहासणपे अति प्रचंड शरीरका धरणहार, मद मछका हुवा 'मोहो" नामें महाराजा अनाज्ञा शिर-छल, और रति अरति दासीयोंके पास हर्ष शोक च-मर डुलाते बेठे हैं; यह पाप पोशाकका भलका. अव्रत मुकुटादि भूषणाको चलका, और क्रिया खड्ग मन मुखमली म्यान में झलकता है, जडता ढाल पीछे ढलकती है. यह इसकी मायारूप पटरागणी, चार सज्ञा दासीयोंसे परवरी अर्धांगना वनी है. यह काम देव कुँवर (पुत्र) ज्ञानावरणीयादी ७ मांडलिक महाराजा मिथ्यात्व प्रधान, प्रमाद पुरोहित, राग द्वेष सेन्यापति क्रूरभाव कोटवाल, व्याक्षेप नगर श्रेष्ठ, कुव्यश्न भंडा-री, कुलंगदाणी, निंदक पटेल, कूकवभाट, प्रणामदू-त, दंभ दुर्दत, पाखंड द्वारपाल इत्यादि महाजनो कर, सभा एक महाभयंकर रूपको धारण कररही

त्मा से कपायादि आत्माके साथ युद्ध करनेसेही आ त्मा सुख पाती है.

"अपाय विचय" धर्म ध्यान के ध्याता ऐसा विचारे कि-मेरा जीव सदासुख चाहता है; अनंत भव हुये सुख के लिये तडफ रहा हूं. अनेक उपाय करते भी अपाय होता है, की हुइ मेहनत निर्फल होती है. इसका क्या कारण? यह मेरे उपाय को नष्ट कर मेरे को प्राप्त होते हुये, मेरे पास रहे, अनंत अ- क्षय अव्याबाध सुख की व्याघात करने वाला शत्रु है ही कौन? हां! इतना निश्चय तो हुवा कि वो श त्रुओं बाहिरका कोइ पदार्थ नहीं है. क्योंकि बाहिर होयतो मुझे दुःख देने आते हुये दृष्टी आते, मेरे श त्रुओं तो मेरे घर मेंही घर कर बेठे हैं. (ठीक हुवा ढूंढनेका प्रयास घटा)आश्चर्य के इत्ने दिन मुझे क्यों नहीं दिखे? पर कहांसे दिखे, क्योंकि मै तो आजतक इनको देखने स्व घर छोड पर घरमें भटकता फिरा- और वो अन्दर रहे मेरे उपायोंको नष्ट करते रहे. अ- च्छा अब तो मेरी भूल सुधारूं. अंदर रहे शत्रु मिस आंतरिक शत्रुओंको अच्छी तरह पहचानने वास्ते दृष्टी बंध करूं. क्योंकि भगवानने फरमाया है कि "एक स- मयमें दो कार्य न होवे" (ऐसा विचार आंख मीच

अन्दर अवलोके) अहो! यह मेरे शत्रु बडे जब्बर हैं. इनोने बडा ठाठ पाट जमा रक्खा है.

"मोहकी ऋद्धि"

यह तीन अज्ञान त्रिकोटसे घेरी हुइ प्रकृति कांगूर और चार गति दरवज्जे युक्त 'अविद्या' नगरी के मध्य में 'असंयम' महल की 'अधर्म' सभामें भृष्ट मति सिंहासणपे अति प्रचंड शरीरका धरणहार, मद मछका हुवा "मोहो" नामें महाराजा अनाज्ञा शिर-छल, और रति अरति दासीयोंके पास हर्ष शोक च-मर डुलाते बेठे हैं; यह पाप पोशाकका भलका, अ व्रत मुकुटादि भूषणाको चलका, और किया खङ्ग मन मुचमली म्यान में झलकता है, जडता ढाल पीछे ढल कती है. यह इसकी मायारूप पटरागणी, चार सज्ञा दासीयोंसे परवरी अर्धांगना बनी है. यह काम देव कुँवर (पुत्र) ज्ञानावरणीयादि ७ मांडलिक महाराजा मिथ्यात्व प्रधान, प्रमाद पुरोहित, राग द्वेष सेन्यापति कूरभाव कोटवाल, व्याक्षेप नगर श्रेष्ठ, कुव्यश्र भंडा-री, कुसंगदाणी, निंदक पटेल, कूकवभाट, प्रणामदू-त, दंभ दुर्दंत, पाखंड द्वारपाल इत्यादि महाजनो कर, सभा एक महाभयंकर रूपको धारण कररही

है. नगर में चौरासी लक्ष चोहटे. अनेक शरीर रूप सदनों में, विचित्र प्रकृतियों प्रजाका वास है. प्रजाज नभी विचित्र स्वभावी हैं; जरा सत्कार से फूलजाना और जरा अपमान से रूस जाना. जरा लाभमें हर्ष और जरा नुकशान मे शोक इत्यादि विचित्रता धरते हैं. मानगजाधीश, क्रोध अ ाधीश, कपटरथाधीश और लोभ पायदलाधिशि वगैरे सेनाभी विकट है, हय २ वडा जब्बर शत्रु निकला; मैं इकेला इसका कैसे पराजय करूं? और इच्छित सुख वरू! मेरा तो कोइभी नहीं दिखता हैं. हे भगवन्! अव क्या करूं?

"चैतन्यकी ऋद्धि

उसी वक्त, एक नजीकही रहा हुवा. 'विवेक' नामे चैतन्यका परम मित्र दोनों हाथ जोड बोला, क्यों चैतन्य महाराजा! क्या फिकर में पडे हो? शत्रु ओं कों प्रवल देख शूर में वणो ! कायरता तजो ? (इन वचनों से चैतन्य नें विवेकको आपणा हितेच्छु जाणा) और जवाव दिया, भाइ! विना शक्ति शूर माइ क्या कामकी?

विवेक—वहा, महाराजा हो यह क्या शब्दोच्चार करते हो ! आपके क्या टोटा, आपकी ऋद्धि

तो इन मोहकी ऋद्धि से सर्व तरह अधिक है. परिवार सैन्य विद्वर और प्रबल है. परन्तु आप शत्रुके ताबे में हो इतने दिन में कभी हमारे तर्फ द्रष्टि ही नहीं करी! तब हम बेचारे श्वामी के आदर विन चुप चाप बैठे. आज आपने जरा सुद्रष्टि कर, हमारी तर्फ अवलोकन किया तो सेवक सेवा में उपस्थित हुवा; और अर्ज करता हूं कि—आपके परिवारकी खवर लीजीये, सब को संभालके हुशीयार कीजीये. और फिर आप हुकम दीजीये,, कि फिर मोह जैसे केइ शत्रुओंको क्षण में नष्ट कर आपका इच्छित करें!

इतना सुणते ही चैतन्य को धैर्य आया, और कहने लगा—प्यारे मित्र! मेरा परिवार मुझे बता.

विवेक—यह देखीये! आपका तीन गुप्ति-त्रि कोट से घेरा हुवा दान, सील, तप भाव दरवज्ज युक्त यह 'श्रद्धा' नगरके मध्य में संदम मेहलकी धर्म सभा में 'समिति' सिंहासण. जिनाज्ञा छत्र, और सम सम्वेग चमर कर शोभता हैं. शुभ भाव सेठीये पुण्य दुकानो में ऋधी निद्धी युक्त बैठे. सुक्रिया व्यापार कर रहे हैं. औरभी बहुत परिवार आपका है. सो शहर मे प्रवेश किये मिलेगा; परन्तु हुशीयारीके साथ प्रवेश करीये. क्यों कि मोहनृप ने अव्वलही

क्त ताबे में कर खूब ठाट जमाया है. और आपको प-
रांजय करनेकी तैयारी कर रहा है. इत्ना सुणतेही मो-
हो क्रोधातुर हो बोला—देखो मेरे प्यारे मित्र सामंतो
! अनंत वक्त चैतन्य को मना किया कि तूं यह ढोंग
मत कर. परंतु वेहया (निर्लेज्ज) इत्नी २ फजीती
होतेभी नहीं शरमाता है. चलीये उसे जरा समजा-
कैद करें, अपने तावेमें करें. इत्ना सुणतेही मोहके पा,
खंड सेवकने कुबोध भेरी बजाके सैन्य को होशीयार
करी, सब सेवक चौक उठे. और अपनी २ सजाइ स-
जी मद मत वाले अभीमान हाथी, चंचल चपल मन
अश्व, रंगी बेरंगी झणणाःट करने कपट रथ, और अति-
वलिष्ट लोभ पायदलों के समोह से परिवरे, तामश वस्त-
र पेहन, कुक्रिया शस्त्र धार, तीन कुलेश्या रूप काले,
नीले, हरे, निशाण फरीराते, कुअलाप वाजिंत्रों के झ-
णकारसे गग न गर्जावते, कर्मोदय मूहुर्त में प्रयाण
कर, कर्मरोहण मार्गमे आ, मोह महाराजा स परिवार
खडे हुये.

मोह की सन्या देख, अध्यवशाय सन्धीपाल
चैतन्य के पास आ करअर्ज करने लगे कि—हे श्वामी
! हम दोनो पक्ष का भला चहाते हैं, और चेताते
हैं कि "मोह नृप वहुत प्राचीन-वृद्ध हैं. आप भी ?

तरुण महा राजाको उनका अपमान करना योग्य न ही है. आपजानते हो, उनकी सैन्यका प्रबल प्रताप कि —तीनही लोकको तावे कर रक्खा है. उनसे आपकी जीत होनी मुशकिल है; वक्तपे ऐसा न हो कि- आपकी सैन्य उन में मिल जानेसे आपका अपमान- हो, और राज भी जाय ! इस लिये आप सन्मुख जा के सम्प कर लीजीये. वृद्धा की सेवामें अपमान न समजीये.

यह सुण चैतन्य हँस के बोले—मै सब समजता हुं. जहां लग सिंह गुफामें निद्रित रहता है वहां तक ही वनचरो को उन्माद करनेका अवकाश मिलता है. समजे! बहुत कालके उडते धूलेकों क्षणमें मेघ दबा देता है! मेरे विन उस मोहको पहचानने वाला दूसरा है ही कोन? इतने दिन गम्म खाई, यह मेरी भूल हुइ. अन्यायीकी पायमाली करनाही हमारा कर्तव्य है !! क्या तुम नहीं जानते हो, मै मोहके तावेमे था जब मेरी केसी फजीती करी है. उसका क्षण २ मुझे स्मरण होता है, अब मैं मूर्ख न रहा किपीछा उसके तावेमें हो फजीती करावूं! इतने दिन मेरे परिवारकी मुझे पहचान नहीं थी. पर विवेक मंत्रीश्वरका भल हो. इस दुःखसेछूटाने उनोने मुझे युक्ति और सामग्री

, बताइ. में मोहके सन्मुख हो नष्ट करने तेयार था. अच्छा हुवा की वो सामे आगया. जरा तुम खडे रहो और मेरी सैन्याका पराक्रम तो देखीये कि-त्रिलोक पूज्य मोह महाराजा की क्या दुर्दशा होती है. इतना कह, चैतन्य रायने सद्गुरु सुभटके पाससे सद्बोध भेरी बजवाके सैन्य सज कराइ. उसी वक्त शांत रसमें भरे हुये मन निग्रह अश्व, वैराग्य मदमें घुमते हुये मार्दव गज, सरलतासे शोभित आर्जव रथ. और सदा तृप्त संतोष पायदल, यह चतुरंगणी सैन्य, क्षमा वक्तर, तप रूप अनेक शस्त्रसे सज हो, स्वध्याय रूप नगारे घुरंते भजन रूप सणणाइयों सणणाते. वैराग्य पंथमें आगे बढने, तीन शुभ लेश्या रूप-लाल, पीले और श्वेत, निशाण फर्रराते, गुणस्थान रोहण रणांगणमें आ, खडे हुये.

दोनो मालिको का हुकम होतेही संग्राम सुरू हुवा,—मोहकी तर्फसे 'मिथ्यात्व मंत्रीश्वर' पचास उमराव और अनंत सुभटोंके साथ, चैतन्य का सामना कर, कहने लगे-क्योंरे चेतन्य ! तुझे मेरे त्रिलोक व्यापी पराक्रम का विस्मरण होगया दीखता है. तेरी अनंत वक्त खुवारी करी तोभी बेशरम लडने तैयार हुवाहै' देख अब्बी एक क्षणमें तुझे तीव्र शाणसे पतन कर

पातालमें पहोंचाता हूं. कुदेव कुगुरु, कुधर्म, कुशास्त्र, यहमेरे सेवकोंके हाथ फर्जी ती करता हूं. ऐसा वकवकाट करता, वाण खेंच खडा रहा.

तब चैतन्यसे विवेक बोला देखीये स्वामी! यह मोहका मानिता प्रधान मिथ्यात्व है, यह सम्यक्त्व प्रधान जीकी द्रष्टि मात्रसेही मर जायगा. इसके मरनेसे मोहकी सब सैन्य शिथिल होजायगी, और अपनी श्रद्धा नगरी निर्विघ्न होजायगी. यह सुन 'सम्यक्त्व' मंत्रीश्वर पांच समकित महा जौधे और सैन्य साथ मिथ्यात्वके सन्मुख हो. तत्वातत्व विचार रूप वाण छोडतेही मिथ्यात्वका सपरिवार नाश होगया. चैतन्यकी सैन्यमें जीत नगारा वजा, और मोह तो अति वलिष्ट मंत्रीके वियोगसे अत्यंत खेदित हुये. तब 'अव्रतराय' मोहसे बोले—आप फिकर न कीजीये! अब्बी मै प्रधान जीका वदला लेता हूं. विचारा चैतन्य मेरे आगे क्या करेगा? ऐसा कह वारे उमरावोंके साथ चैतन्यके सन्मुख आ कहने लगे. रे चैतन्य! ऐसे तेरे ढोंगोंको मेंने वहुधा नष्ट किये तो भी तूं सामे होता नहीं शरमाया, आ, देख मजा.

तब चैतन्यसे विवेक बोले-इसे जीतने समर्थ अपने सर्व वर्तिराय हैं. वो इसका क्षणमें नाश कर संयम

महलको निर्विघ्न कर देंगे. यह सुन 'सर्व व्रत राय' तेरे चारित्र और अनेक शुभ परिणाम सुभटोंसे परिवरे. वैराग्य वाणके वृष्टीसे अव्रतजी को काल धर्म प्राप्त किये, चैतन्यकी जीत हुइ. और मोह तो अत्यंत दिल. गीर हो कहने लगे कि-अवके चैतन्यसे फते पानी मुशकिल है. तब 'प्रमाद सिंघजी' हँसते २ बोले-ऐसे ढोंग चैतन्यने केइ वक्त किये हैं. मैने पूर्वधारी महा मुनियोंको भी नरकगामी बना दिये तो इस विचारे की क्या गिनती ! दक्षिणके बद्दल ज्यों वायू विखेरता है, त्योंमें अव्वी चैतन्यक सब सैन्य भगा देता हूं. ऐसा गरुर करते, पांच उमराव, और केइ शुभटों से परिवरे, चैतन्य सन्मुख हो कहने लगे कि-अब मेरे आगेसभग.के कहां जायगा. तेरे घमंड को अव्वी नष्ट करता हूं. तब विवेक बोले-इनको भगाने उपशम रावजी समर्थ हैं, उसीवक्त उपशमराव तुर्त पंच अप्रमादरूप पांच उमराव और केइ सुभटों साथ प्रमादके सन्मुख हुवे. परिणाम धारा रूप गोलीयोंके वर्षाद से प्रमादका पतन किया कि चैतन्य ध्यानमें लीन हो सुखी हुवे.

मोह, प्रमाद रावका मृत्यु सुन, होंस हवास भूल गये. तब कामदेव बोले, पिताजी मेरे जैसेपराक्रमी पुत्र आपके होतें आप फिक्र क्यों करते हो, अ-

र्वी वातही वातमें चैतन्यको कव्जमें कर लाता हूं. कुंवर साहेव के यह वचन सुन स्त्री, पुरुष, और नपूं शक यह तीनही उमराव खडे हो कहने लगे की हम कुँवर साहेवके मदतमें जाते हैं. चैतन्यका घमंड एक, क्षणमें; गमाते हैं. तव अश्वाधिप क्रोधजी खडे हो ध मधमायमान होते वोले. किसने जननी का दूध पचा- या हे कि-जो मेरे सन्मुख खडा रहे. क्रोधराग-द्वेष, कलह-चंड, भंड विवाद यह सुभटोंके सामे टिके. त व गजाद्विप अभीमानजी वोले, मैंने केइ वक्त चैतन्य को हीन दीन वना दिया है, क्या अविनय मान म द, दर्प, स्थंभ, उत्कर्ष, गर्व, यह मेरे सुभटोंका परा॰क्र म कमी हे. तव रथा धिप कपटजी कहने लगे—मैने चैतन्यको केइ वक्त लेंग लुगडे, चुडीयों पहनाइ हे- अव क्या छोड दूंगा. माया, उपाधी, कृती, गहन,कू ड; वंचन, यहमेरे सुभट कम पराक्रमी हैं क्या ? यों यह तीनिंही स-परिवार कामदेवके साथ हुये, इनसे काम देवका ठाट सवसे अधिक हुवा, अनुराग रण सिंग्घा वजाते. एकदम चैतन्यपे विपय रागरूप वाणो का वर्षाद सुरू किया, क्रोधजी ज्वालामय वाण छो डने लगे, अभीमान जी स्थंभन विद्या डाली, दगाजी गुप्तरीत क्षय करने परावृत हुये; यह अविमासा एकदम

जुल्म हो रा देख, चैतन्यसे विवेक बोले: आप घबराइ ये नहीं; शांती ढालकी ओटमें विराजे रहो. कामदेवको निर्वेद राय, क्रोधका क्षमाचंद्र, मानका मार्दव सिंह, दगाका अर्जव प्रसाद, एक क्षणमें नाश कर डालेंगे इतने. सुनतेही सर्व राजेंद्रो सजहो १८००० शीलांग रथ के झणझणाट करते सन्मुख हुवे. नववाड रुग्वी न शैन्यके कोटसे घेरे हुवे, वैराग्य बाणो की मेघ धा रा पर वृष्टि होतेही, कामदेव मृत्यु पाये. उनके तीन- ही उमराव भग गये. उदर क्षमाचंद्रने क्रोधका, मा र्दव सिंहने मान का, और अर्जव प्रसादने दगाका ना श किया. चैतन्य की सैन्यमें जय २ कार हुवा. चैतन्य निर्विषयी शांत सरल हो परमानंद भोगवने लगे.

मोह नृप, प्यारे पुत्र और तीनो बलिष्ट उमरावोंकी मृत्यु सुन मूर्छा खागये. हाय त्रहा करने लगे, लाल आँख कर कहने लगे कि-अब मै खुदही चैतन्य का नाश करूंगा! तब 'लोभ राय' बोले आप जेसे महा- राजाको चैतन्य जैसे वच्चे के सामे जाना लाजम नहीं है, मैंने एक उपाय विचारा है, वो यह हैकि चैतन्य- को 'उपशम मोह' किला देकर लोभ दवो, उसमें गया की उसमें गुप्त रहे हुये अपने सुभट उसकी सब सैन्यका नाश कर आपके नावेमें कर देंगे. यह सला

मोहको पसंद पडी. और कहा जल्दी करो. की तुर्त लोभचंन्द्र सज्ज हुये. उन्हके साथ हांस, रत्य, अरति, भय, शोक, दुर्गछा यह उमरावों सपरिवार सज्ज हो चले.

इधर-चैतन्यकी आज्ञा ले विवेक चन्द्र धर्म स्थानमें अपने सर्व मंडलिक और सामंत सुभटोंकी सभा कर कहने लगे. भाइयो ! अपना बहुतसा काम फते होगया. और जो कुछ रहा है, वो थोडेहीमें पार पडनेकी आशा है. परन्तु गुप्त एलची द्वारा खबर मिली है किउपशम किल्लेमें मोहनें गुप्त सुभटोंबेठा रक्खेंहैं. इस लिये किसीभी लालचमें ललचा. उस किल्लेमको इभी प्रवेन मत करना. रस्ते के सर्व उपसर्ग अडग पणे सहे. क्षण कपाय किल्ले में प्रवेश करें कि.—जिस से मोहका एक क्षणमें पराजय कर, इच्छित काम फते हो. यह विवेकका बोध सर्वने सहर्ष वधा लिया. और तुर्त सज्जहो क्षीणमोह किल्लेकी तर्फ प्रयाण किया.

रस्तेमें 'लोभचन्द्र' मिल गये. और मधुरतासे कहने लगे—अब क्यों भगते हो हमारा सत्यानाश तो तुमने मिला दिया. अब हम सब तुमारे ही हैं, इरो मत ! यह 'उपशम कपाय' किल्ला तुमाराही है, इसमें बे फिकर रहो. मोह रायतो बेचारे चुपचाप बेठे हैं. अब तुम्हारा नामभी नहीं लेवेगे.

इन सब दर्गोसे विवेक ने अव्वलही वाकेफ किये थे, इस लिये लोभके मिष्टे वचनसे कोइ ठगाये नहीं, और आगे चलने लगे. तब लोभचन्द्र असुरस हो स-परिवार सामे हुवा, और कहने लगा दुष्टो ! मेरे भा-इयोंको मार कहां जाते हो, अब मे तुमे छोडने वाला नहीं !! योंकहे सर्व सैन्य युक्त चैतन्यकी सैन्य पर इच्छा तृष्णा मूर्च्छा कांक्षा, गृद्धता, आशा इत्यादि बाणोंकी वृष्टि कर ने लगे, कि उसही वक्त चैतन्यने क्षायिक बाणोंका प्रहार कर लोभका सपरिवार नाश कर बे फिकर हो क्षीण कषाय किल्लेमें भराके परमानंद पाये.

लोभचंद्रका सपरिवार नाश कर क्षीण कषय किल्लेमे चैतन्यने निवास किया है. ऐसी मोह कों खबर होतेही सतंगे ढिले पडगये. जीतनेकी आशातो दूर रही, परंतु इज्जत और जान बचाना मुशीबत हो गया. तो भी मानके मरोडे आप खुद चैतन्यका पराजय करने खडे हुये. तब ज्ञानावरणि आदि सात महा मंडालेक राजा, अपने असंख्य दल बलल साथ हुये. सब साथ चैतन्यकी तर्फ चले.

यह चैतन्यको खबर होतेही क्षायिक सम्यक्त्व क्षायीक यथाख्यात चरित्र, यह महा पराक्रमी राज

ओंके साथ, करण सत्य, भाव सत्य, योग सत्य, वरकर से सज हो. विरागा, अकषायी शस्त्र ले, संपूर्णसंवुड-ता रूप चारो तर्फ बंदोवस्त कर, संपूर्ण भावितात्मा रूप मद छक हो. महज्ञान वाजिंत्रोंके झणकार से महाध्यान निशाण फर्राते, महा तप तेज कर दीपते अमोह अविकारी पणे. अपडवाइता दृढताधार, खपक श्रेणीरूप चौगानमें सब परिवार से परिवेरे खडे हुवे-

चैतन्यको ऐसे ठाठसे सामे खडा देख, मोह मद छक हो बोला, रे चैतन्य! तूं मेरे घरमें बडा हुवा, अनंतकाल मेरी सेवामें तुझ हुवे, निमकहरामी! अव मेरे सेही लडने तैयार हुवा, यह तुझे जो ऋधि प्राप्त हुइ है. सो सब मेराही पुण्य प्रताप है; ऐसी २ ऋद्धि तुझे पहिलेकेइ वक्त मिली, और तूं केइ वक्त मेरा सामना किया. अनंत वक्त तेरी मैंने खुवारी करी. तो भी तूं नहीं शरमाया, और सब वीती भूल, मेरा सामना करता है. लिहाज कर २ शरमा आवतो जरा!!

चैतन्य–हांजी, मेरी लाज को गमा अनंत कालसे मेरी फजीती करनेवाले आपको अब मैंने पेछाने, तवही मुझे लिहाज पैदा हुइ. तवही तुमारे सर्व परिवार का नाश कर तुमारे सामे अडग खडा हूं. तुमे भी मरनेका शोक हुवा है, जो सवका नाश देखतेही—

मेरे सामे आये हो, तो संभालिये. इतना कहतेही चै-तन्य ने मोहके मस्तक में क्षायिक खड्गका प्रहार कर मोहका नाश किया. उसी वक्त ७ मंडलिकोंमेंसे ज्ञानावरणिय, दर्शनावर्णिय, और अंतराय इन तीनोंका स्वभाविक नाश होगया. उसी वक्त आकाश में सब देवताओंनें जय २ कार किया, श्रेष्ट द्रव्यकी वृष्टि करी, देव दुन्दुभि बजने लगी, चैतन्य महाराज को केवल ज्ञान केवल्य दर्शन रूप महा ऋद्धि कि प्राप्ति हुइ. और तीनही लोकमें चैतन्यकी आण दुवाइ फिर गइ. सर्व जगत के वंदनिय पुज्यनीय चैतन्य महाराजा हुवे,

विवेक मंत्रीश्वर की सल्लासे चैतन्य रायका सब काम सिद्ध हुवा जाण, सब परिवार से संयम महेल में परमानंद भोगने लगे, एक दिन विवेक चन्द्रजी बोले, स्वामी! आपके इष्टितार्थ सिद्धिसे मै बडा खुश हुवा हूं. और आप सर्वज्ञ सर्व दर्शी हुये. इस लिये मैं आपको किसी प्रकार सल्ला देनेभी असमर्थ हूं, आप जानते ही हैकि आपके चार शत्रू आपसे मिले हुये हैं. उनकाभी कुछ विचार?

चैतन्य महाराजा बोले-कुछ विचार नहीं. वो बेचारे नीबल होके पडे हैं और वो जो कुछ करते हैं

सो जग जीव का भला होवे, वैसाही करते हैं. मुझ उनसे कुछ हरकत नहीं है. आयुष्य, नाम गौत्र, और साता वेदनिय, यह सब एक आयुष्य के आधार से टिके हैं. और आयुष्य तो बेचारा स्वभाव से ही क्षण २ में क्षय होता है. सर्वथा क्षय हुवा कि-बाकी के ती नही उस के साथ क्षय होजायेंगे; कि फिर अपन सीधे शिव पूर में जाके अजर, अमर, अवीकार हो; अक्षय, अनंत, परमसुख के भुक्ता बनेंगे.

अपाय विचय नामे धर्म ध्यान के दुसरे पाये के ध्याता अनंतकाल से अपाय करने वाले कर्मशत्रूओंका नाश करने का विचार एकाग्रतासे तथा भृतहो चिंतवनाकरें. और कर्मवृद्धि के कामोंसे निवर्त्ति भाव धारनकर, आत्मा सुख के उपाय में संलग्न बन, मोक्ष मार्ग मे प्रवर्तने सामर्थ्य बने, वो कोइ काल में सुख के भुक्ता जरूरही होवेंगे.

तृतीय पत्र-"विपाक विचय"

हा हा! क्या आश्चर्य कारक इस जगत्का व. नाव दृष्टि आता है. जीव जीव सब एकसे हो, कोइ सुखी तो, कोइ दुःखी, ऐसेही-नीच, ऊंच मूर्ख विद्वान. दरिद्री श्रीमंत, वगैरे विचित्र रचना दिखाती है,

इसका क्या कारण? जीव अपना आपही तो बुरा न करे! इस लिये बुरे उपाय कराने वाला जीवके साथ दुसरा भी कोइ है? दुसरा कौन है?. (जरा विचार करे) हां, जो अपाय विचय में विचार से पैछानाया वोही अंदर रहा हुवा कर्म रूप शत्रू है. वो दो प्रकारके विपाक उत्पन्न करता है. (१) अशुभ कर्म रूप कडूवा, और (२) शुभ कर्म रूप मीठा. शुभ कर्मके फल भोग ते जीव मजा मानता है जिससे अशुभ बंध होता है और दुःख भोगवता है. यों अशुभका क्षय होते शुभकी वृधि होती है. ऐसा रात्रि दिन की तरह यह सिलसिला अनादी काल से चलाही आता है.

अब शुभाशुभ कर्मों उपारजेन करनेकी रीति शास्त्रानुसार विचारनेकी आवश्यकता है. कि कौनसे कर्मोंसे जीव सुख पाता है. और कौनसे से दुःख पाता है. यह विचार शास्त्रानुसार यहा करते हैं.

१ प्रश्न–श्रोत इंद्रीयकी हीनता कायसे होवे? उत्तर–विकथा श्रवण कर खुश होय, सत्य को असत्य और असत्यको सत्य ठहराय, बधिर [बेरे]की हांसी करे–चीडावे. अन्यको बधिर बनाने उपचार करे, दीन गरीबोंके करुणा मय शब्दों-अर्जीओपर ध्यान नहीं

देवे सद्बोध शास्त्र श्रवण नहीं करे. इत्यादि कर्मों करने से बधिर (बेरा) होवे. कानके रोगिष्ट होवे. तथा चौरिंद्रि पना पावे.

२ श्रोत इन्द्रिकी प्रबलताकयसे होय ? उः—शास्त्र और सुकथा श्रवण करे. यथातथ्य (जैसा का वैसा) श्रद्धान करे, बधिरोंकी दया करे. यथा शक्ति सहाय करे, दीनोकी अर्जेपे गौर कर मिष्ट वनचसे संतोषे, गुणीयोंके गुण सुण हर्षावे, निंदा श्रवण नहीं करे, तो श्रोतेंद्रीय (कॉन) की नेरोग्यता, सुन्दरता, तीव्रश्रुतापनापावे, तथा पचेंद्रियपणा पावे.

३ प्रः—चक्षु इन्द्रिकी हीनता कयासे होय ? उ. स्त्री पुरुषके सुन्दर रूपको देख विषयानुराग धरे, कुरूपा देख दुर्गच्छा निंदा करे, अन्धोकी हँसी करे, चिडावे, मनुष्य पशुकी आँखोको इजा करे या फोडे. कुशस्त्रा व पुस्तक पत्र आदी पढे, नाटकादि अवलोकन करे, नेत्रके विपयमें आशक्त होनेसे या करूर द्रष्टीसे देखनेसे, नेत्रकी कुचेष्टा करनेसे अन्धा, काणा, चीवडा वगैरे नेत्रका रोगी होवे, तथा तेंद्री पना पावे.

४ प्र.—चक्षु इन्द्रिकी प्रबलता कयासे पावे. ? उ. साधु साध्वीयोंके दर्शनसे हर्षावे, धर्मानुराग धरे, विषय जनक रूप देख तुर्त द्रष्टि फेरले, नेत्रके रोगीयोंकी

दया करे, सरसास्त्र व पुस्तक पत्रोंक पट न करे, विपयसे नेत्रवशमे करे, तो निरोगी सतेज, मनहर, दीर्घ विपर्यी आँखो पावे

५ प्र— घ्रणेंद्रीकी हीनता कयासे पावे ? उ—सुगन्धी पदार्थोंका अनुराग हो. अतर पुष्पादि सेवन करे, दुर्गघका द्वेषी होवे, नाका हीनकी (गुंगकी) हाँसी करे, दुःख दे, अन्य मनुष्य, पशु, पक्षिआदिका नासिकाका छेदन भेदन करे करावे, तो गूंगा नकटा, या वेंद्री होवे.

६ प्र—घ्रणेन्द्रिकी निरोगता कयासे पावे? उ—परमात्मा साधु या साध्वी, जेष्ट जन, गुणी जनके सन्मुख नाक नमावे, (नमस्कार करे) सुगन्धी पदार्थोंमें गृध न बने, नाशिका हीनकी साहयता करे, तो सुशोभित निरोगी, नाशीका पावे.

७ प्र—जिह्वा इन्द्रिकी हीनता कयासे पावे ? उ— मदिरा, मांस, कंद, मूल, आदि अभक्ष खावे, पटरस पदार्थमें अत्यंत लोलुप्ता धरे, रसना पोपणे हरी काया दिका महारंभ करे, असद्बोध कुउपदेश कर हिंसा फेलावे, पाखंड वडावे, मर्म मोस प्रकाशे, कर्कश कठोर भाषा बोले, झूठ बोले, मुक्केकी बोबडेकी हाँसी करे, संत सती गुणी जनोंकी निंदा करे, अन्यकी रसना (जिह्वा) का छेद भेद करे. श्वासोश्वस रुंदन करे,

तो जिव्हा की हीनता पावे. तोतडा मुक्का होवे, उसके असुहामणे वचन लगे, मुखमेंसे दुर्गन्ध निकले, तथा एकेंद्रीयपणा पावे.

८ प्र-रस इन्द्रिकी निरोगता कायसे पावे ? उ- अभक्ष त्यागे, रस गृद्धि नहोवे. सद्बोध कर धर्म फेलावे सदा गुणोंका उच्चारण करे, सर्वको सुखदाता बोले, रसना हीनकी सहायता करे, तो रसनाका निरोगी, मधुर आलापी होवे.

९ प्र-हस्तकी हीनता कायसे पावे? उ-अन्यके हस्त छेदन करे, खोटे तोले माप वापरे, खोटे लेख लिखे, कुशास्त्र वणावे. चोरी करे. लूले (हस्त रहित को) हांसी करे. दूसरेका छेदन भेदन मारन ताडन करे, पक्षियोंकी पांख काटे. तो लूला (हाथ रहित) होवे.

१० प्र-हस्तकी प्रबलता कायसे होवे? उ-दान देवे- खोटा लेन देन नहीं करे, खोटे लेख नहीं लिखे, अच्छे धर्मबृध के लेख लिखे, विनादी हुइ वस्तु ग्रह ण नहीं करे, हस्त हीनकी सहायता करे, तो निरोगी बलिष्ट हाथ पावे.

११ प्र- पांवकी हीनता कायसे होवे? उ-रस्ता छोडके चले. हिंसादि पाप कर्मोंमें आगे वढे. धर्म

कार्य में पीछा हटे, कच्ची-मट्टी-पाणी-हरी-कीडीआदिकों पांवसे दाबे-चांपे, अन्य छोटे बडे जीवोंके पांव तोडे, लंगडे पांगले की हंसी करे, चोरी जारी आदि कु कार्य में प्रवर्ते तो पांव हीन-पांगला होवे.

१२ प्र-पांवकी प्रबलता कायसे पावे? उ-कुरस्ते जावे नहीं, अन्य जातेको बचावे. सजीव पदार्थपे पांव नहीं देवे, लंगडे पांगुलेकी सहायता करे, तो निरोगी बलिष्ट पांव पावे.

१३ प्र-निर्धन (दरिद्री) कायसे होवे? उ-चोरी से दगा से-धूर्ताइसे-ठगाइसे-जुलमसे-हिंसाकारी कुव्यापारसे-द्रव्योपार्जन करे (धन कमावे) धनेश्वरोंपे द्वेष करे, उनको निर्धन बनाना चहावे, मेहनतसे स्वल्प धन कमाया उसे लूटे, घर-अन्न-वस्त्र से दुःखी करे, गरीबोंको वाक्य प्रहार करे, झूटा आल दे फसावे, अनीतकाका संग करे, तथा साधु होकर धन रक्खे, दुसरेके कमाइ में अंतराय दे, धापण दबावे तो निर्धन होवे, और किसीका धन अग्नि में जलावे तो उसका भी आग (लाय) में जले, पानी में डूबावे तो झाझादि पाणी में डूबे. इत्यादि जिस तरह दुसरे के द्रव्यका नाश करे वैसेही उसके द्रव्यका नाश होवे.

१४ प्र-धनेश्वरी कायसे होय? उ-निर्धनों(दारिद्रियों) की दया करे, उनकी सहायता करे, अन्यकी द्रव्यवृद्धी देख हर्षावे. प्राप्त द्रव्यपे ममत्व कम कर दान पुण्य धर्मोन्नति अनाथोंकी सहायता इत्यादि सुकृत्योंमें द्रव्य लगावे तो धनेश्वरी होवे.

१५ प्र-अपुत्र्या कायसे होवे? उ-पशु पक्षी-और मनुष्यादिके अनाथ बच्चोंको, या यूँका (ज्यूं) लीखों को मारे, अन्डे फोडे, पुत्रवंतोंपे द्वेष करे. गाय भैंस आदिके बच्चोंको दूध पीते खेंच ले, बेंच दे, बिछोहा पडावे. बीजोंकी मींजी निकाले. तो अपुत्र्य (पुत्र रहित) होवे.

१६ प्र-पुत्रवंत कायसे होवे? उ-पशु-पक्षी मनुष्यादि के अनाथ बच्चोंका रक्षण-पालण करे, जन्म निर्वाह करने जैसे बनावे तो बहुत पुत्रवंत होवे.

१७ प्र-कुपुत्र काय से होवे? उ-अन्यके पुत्रों को कुबुद्धि देकर माता पिता का अविनय करावे पिता पुत्र का झगडा देख खुश होवे, फूट पडावे. अपने माता पिता को संताप देवे, तथा ऋण और थापण डूबावे, तो उसके कपूत (अविनीत पुत्र होवे.

१८ प्र-सुपुत्र कायसे होवे? उ-आप माता

कार्य में पीछा, हटे, कच्ची-मट्टी-पाणी-हरी-कीडीआ दिकों पांवसे दाबे-चांपे, अन्य छोटे बडे जीवोंके पांव तोडे, लंगडे पांगले की हंसी करे, चोरी जारी आदि कु कार्य में प्रवर्ते तो पांव हीन-पांगला होवे.

१२ प्र-पांवकी प्रवलता कायसे पावे? उ-कुरस्ते जावे नहीं, अन्य जातेको बचावे. सजीव पदार्थों पांव नहीं देवे, लंगडे पांगुलेकी सहायता करे, तो निरोगी वलिष्ट पांव पावे.

१३ प्र-निर्धन (दरिद्री) कायसे होवे? उ-चोरी से दगा से-धूर्ताइसे-ठगाइसे-जुलमसे-हिंसाकारी कूव्यापारसे-द्रव्योपार्जन करे (धन कमावे) धनेश्वरोंपे द्वेष करे, उनको निर्धन बनाना चहावे, मेहनतसे स्वल्प धन कमाया उसे लूंटे, घर-अन्न-वस्त्र से दुःखी करे, गरीबोंको वाक्य प्रहार करे, झूटा आल दे फसावे, अजीवकाका भंग करे, तथा साधु होकर धन रक्खे, दुसरेके कमाइ में अंतराय दे, थापण दबावे तो निर्धन होवे, और किसीका धन अग्नि में जलावे तो उसका भी आग (लाय) में जले, पानी में डूबावे तो झाझादि पाणी में डूबे. इत्यादि जिस तरह दुसरे के द्रव्यका नाश करे वैसेही उसके द्रव्यका नाश होवे.

१४ प्र-धनेश्वरी कायसे होय? उ-निर्धनों(दारिद्रियों) की दया करे, उनकी सहायता करे, अन्यकी द्रव्यवृद्धी देख हर्षावे. प्राप्त द्रव्यपे ममत्व कम कर दान पुण्य धर्मोन्नति अनाथोंकी सहायता इत्यादि सुकृत्योंमें द्रव्य लगावे तो धनेश्वरी होवे.

१५ प्र-अपुत्र्या कायसे होवे? उ-पशु पक्षी- और मनुष्यादिके अनाथ बच्चोंको, या यूँका (ज्यूं) लीखों को मारे, अन्डे फोडे, पुत्रवंतोपे द्वेष करे. गाय भेंस आदिके बच्चोंको दूध पीते खेंच ले, वेंच दे, बिछोहा पडावे. बीजोंकी मींजी निकाले. तो अपुत्र्य (पुत्र राहित) होवे.

१६ प्र-पुत्रवंत कायसे होवे? उ-पशु-पक्षी मनुष्यादि के अनाथ बच्चोंका रक्षण-पालण करे, जन्म निर्वाह करने जैसे बनावे तो बहुत पुत्रवंत होवे.

१७ प्र-कुपुत्र काय से होवे? उ-अन्यके पुत्रों को कुबुद्धि देकर माता पिता का अविनय करावे' पिता पुत्र का झगडा देख खुश होवे, फूट पडावे. अपने माता पिता को संताप देवे, तथा ऋण और थापण डूबावे, तो उसके कपूत (अविनीत पुत्र होवे.

१८ प्र-सुपुत्र कायसे होवे? उ-आप माता

पिता की भक्ती करे, अन्यको करनेका बोध करे. ❀ पुत्रोंको धर्म मार्ग में लगावे, सुपुत्र देख हर्षाये तो सुपुत्र्या होवे.

१९ प्र—कु भार्या कायसे मिले? उ-स्त्री भरतार के आपस में क्लेश करावे, उनके झगडे देख हर्षावे, स्त्रीको भरमावे, व्यभिचारणी बनावे, सतियोंकी निंदा करे, कलंक चडावे. अन्यकी अच्छी स्त्री देख दुःखी होवे, तो कुस्त्री मिले.

२० प्र—सूभार्या कायसे मिले? उ-आप शीलवंत रहे, व्यभिचारणीके प्रसंगसे व्रत न भांगे, व्यभिचारणीको सुधारे सतियोंकि प्रशंसा और सहायता करे. स्त्री भरतार का विरोध मिटावे तो अच्छी स्त्री का संयोग मिले.

२१ प्र-अपमान (मानहीन) कायसे होय? उ—अन्यको मान खंडन करे, माता पिता गुरू आदि वृद्धोका विनय नहीं करे. गरीव-निर्बुद्धियोंका निरादर करे शत्रुओंका अपमान सुन खुश होय, अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करे. अपने गुणका अहंकार करे गुणवंतोका द्वेश करे, गुणवंतोको वंदना नहीं करे.

❀ सूत्रमें फरमाया है कि माता पिता की भक्ति करनेसे ८४ हजार वर्षके आयुष्य बाला देव होवे.

दूसरे को वंदना करते मना करे, स्वछंद चले, तो-अपमानी होवे.

२२ प्र—सन्मान कायसे पावे? उ-तीर्थंकर, साधु साध्वी, श्रावक, श्राविका,सम्यक दृष्टी, ज्ञानी,गुणी धर्मदीपक, इत्यादि महाजनोके गुणग्राम करे, गुणदीपावे. जेष्टोंकाविनय भक्ती करे, कीर्ती सुण हर्षावे, वंदना करे करावे. गुणी जन हो गुणोंको छिपावे, सदानम्र रहे, तो सर्व स्थान सन्मान पावे.

२३ प्र-क्लेशी कुटुम्ब कायसे मिले?उ-कुटुम्ब में झगडा करावे. क्लेश देख हर्ष पावे, तो क्लेशी कुटुम्ब मिले.

२४प्र-अच्छा कुटुम्ब कायसे मिले?उ-कुटुम्बमें सम्प करावे. निरद्रव्य कुटुम्बोंकी सहायता करे. कुटुम्ब में संप देख हर्षावे, तो सुखदाइ कुटुम्ब मिले.

२५ प्र-रोगिष्ट कायसे होवे? उ-रोगीयोंको संतापे, निंदा करे, हँसी करे, औपध दानकी अंतराय दे, रोग बढाने असाता उपजानेका उपाय करे, साधुवों के वस्त्र मलीन देख दुगंछा करे तो रोगिष्ट (रोगला) होवे.

२६ प्र-निरोगी कायसे होवे? उ-दीन दुःखी येोंको रोगिष्ट देख दयालावे, सुख उपजावे. साधु साध्वी

दूसरे को वंदना करते मना करे, स्वछंद चले, तो-अपमानी होवे.

२२ प्र—सन्मान कायसे पावे? उ-तीर्थंकर, साधु साध्वी, श्रावक, श्राविका,सम्यक दृष्टी, ज्ञानी,गुणी धर्मदीपक, इत्यादि महाजनोंके गुणग्राम करे, गुणदीपावे. जेष्टोंकाविनय भक्ती करे, कीर्ती सुण हर्षावे, वंदना करे करावे. गुणी जन हो गुणोंको छिपावे,सदानम्र रहे, तो सर्व स्थान सन्मान पावे.

२३ प्र-क्लेशी कुटुम्ब कायसे मिले?उ-कुटुम्ब में झगडा करावे. क्लेश देख हर्ष पावे, तो क्लेशी कुटुम्ब मिले.

२४प्र-अच्छा कुटुम्ब कायसे मिले?उ-कुटुम्बमें सम्प करावे. निरद्रव्य कुटुम्बोंकी सहायता करे. कुटुम्ब में संप देख हर्षावे, तो सुखदाइ कुटुम्ब मिले.

२५ प्र-रोगिष्ट कायसे होवे? उ-रोगीयोंको संतापे, निंदा करे, हँसी करे, औषध दानकी अंतराय दे, रोग बढाने असाता उपजानेका उपाय करे, साधुवोंके वस्त्र मलीन देख दुगंछा करे तो रोगिष्ट (रोगला) होवे.

२६ प्र-निरोगी कायसे होवे? उ-दीन दुःखी यों को रोगिष्ट देख दयालावे, सुख उपजावे. साधू साध्वी

धस्का पडे, इज्जतलूंट,राज, पंच चोर, सर्प, विष,अग्नि, पाणी, देव भूत इन भयंकर वस्तु ओं के नामले दूसरे कों भय भीनकरे, पशुकों को त्रास दायक बनावे व चमकावे, उन्हे देख हर्पावे सो कायर होवे.

२४ प्र-शूरवीर कायसे होवे? उ-दीन, दुःखी, अपराधीको अभय दानदे, भयसे बचावे, उपद्रव मिटावे-तो शूरवीर होवे.

२५ प्र-कृपण कायसे होवे ? उ-छते द्रव्य (धन-होते) दान नहीं देवे. दूसर कों देते मना करे. देते को देख दुःखी होवे, दानकी निंदा करे, अत्यंत तृष्णवंत होवे सो कृपण होवे.

२६ प्र-दातार कायसे होवे? उ-गरीबी (दरिद्रता) होतेभी दान दे, दूसरेको देते देख खुश होवे, समर्थ हो दीन दुःखीकी सहायता करे, सदा दान देनेकी अभिलाषा रक्खे, धर्मोन्नती सुन हर्षाय, सो श्रीमंत हो दातार होवे.

२७ प्र-मूर्ख कायसे होवे? उ- विद्वानो पंडितोंकी हसी मस्करी निंदा अविनय अशातना करे, ज्ञान प्रसारकी अंतराय दे, ज्ञानके उपकरण पुस्तकादि नाश करे, ज्ञानपे अरुचि करे. ज्ञान चोरे, सत्य शास्त्र को झुठे बनावे,और झुठको सचे बनावे, तो मूर्ख होवे.

३८ प्र-पण्डित कायसे होवे? उ-विद्यादान दे, विद्याप्रसार में धन तन का व्यय करे, विद्वानोकी महिमा करे, धर्म पुस्तकोंका मुफत में प्रसार करे,सो पण्डित होवे.

३९ प्र-पराधीन कायसे होवे ? उ-अन्यको बंदीखानेमें डाले, बहुत मेहनत करा थोडी मजूरी देवे. कर्जदारोंका घर लूटे, इज्जत ले कुटुम्ब को नोकरों को अहार की अंतराय दे, जबरदस्तीसे काम करावे, पशु पक्षीको वाडेमें पिंजरेमें रोक रक्खे, दूसरेको पराधीन देख खुशी होवे. दूसरेकी स्वाधीनता नष्ट करे सो पराधीन होवे.

४० प्र-स्वाधीन कायसे होवे? उ-कुटुम्बको, नोकरोंको संताप नहीं दे; अहार, वस्त्र स्थानकी साता दे, शक्ति उपरांत काम नहीं करावे. मनुष्य, पशु, पक्षी, आदिको बंदीखानेसे छोडावे, स्वाधीन कर अपणा स्वछंदा रोकके गुरुके च्छंदे, (हुकममें) चले सो स्वाधीन-स्वतंत्रहोवे.

४१-प्र- कुरूप कायसे होवे? उ-आप रूपवंत हो अभिमान करे, दूसरे सुरुपवंतोंकी निंदा करे, कुरूपाकी हाँसी अपमान करे, आल चडाय श्रृंगार बहुत मैंजसो कुरूपी होवे.

४२ प्र-सुरूप कायसे पावे ? उ-सुन्दर होके भी अभीमान नहीं करे, सुरूपणी स्त्रियादिको विकार दृष्टी से नहीं देखे, कुरूपोंका निरादर न करे, शील पाले सो सुरूप होय.

४३ प्र-धनेश्वरीहो धन विलस क्यों नहीं सके ? उ-अन्यको खान पान वस्त्र भूपणकी अंतराय दे, आप समर्थ हो अच्छे भोग भोगवे. और आश्रितोंको तरसावे, अन्यको भोगोपभोग भोगवते देख आप दुःखी होय, वो धन प्राप्त होके भी भोगव नहीं सके.

४४ प्र-सुख विलासी कायसे होय ? उ-आपको प्राप्त हुये भोगोप भोग भोगवे नहीं. अपने भोगकी वस्तू दान पुण्यमें तथा स्वधर्मीयोंको दे के पोषे, सो इच्छित भोग भोगवे.

४५प्र-क्रोधी कायासे होय? उ-आप क्रोध करे. क्रोधीयोंकी प्रशंसा करे, मनुष्य पशु देवता ओंके युद्धकी वातों सुन हर्षावे. शिकार खेले, क्षमवंत को संताप उपजावे, निंदा करे, हाँसी करे सो क्रोधी होवे.

४६ प्र-धूर्त कायसे होय ? उ-धर्म करणीमें, दान, पुण्यमें जप तप में कपट करे. थोडा कर बहुत बतादे पोमादे, सो दगावाज धूर्त होवे.

४७ प्र-नम्र कायसे होय? उ-नम्र भावसे कर-

णी करे, करके पोमावे नहीं, सो सरल स्वभावी होवे.

४८ प्र–चोर कायसे होवे ? उ–चोर कर्मको अच्छा जाने, चोरको सहाय दे. चोरकी वस्तु ले, चोर की कला बतावे, चोरकी परसंस्या करे, सो चोर होवे

४९ प्र–साहूकार कायसे होय? उ-अदत्तवृत्त धारण करे, चोरकी परिचय वर्जे, सो साहुकार होवे.

५० प्र-कसाइ कायसे होय? उ-हिंसाकी प्रशंसा करे, हिंसा करनेकी कला बतावे. हिंसाके शस्त्र बनावे, दया की निंदा करे, सो हिंसक-कसाइ होवे.

५१ प्र–दयाल कायसे होय? उ-हिंसक की संगत वर्जे, हिंसक को उपदेश दे दयावंत बनावे, आजीवका दे हिंसा कर्म छोडावे सो दयावंत होवे.

५२ प्र-अनाचारी कायसे होवे? विकल भाव रखे, अशुद्ध अभक्ष वस्तु भोगवे, आचारवंतकी निंदा करे, अनाचार सेवनमें आनंद माने. अनाचारीयों का सहवास करे, अनाचारको भला जाने, सो अनाचारी होवे.

५३ प्र-शुद्धाचारी कायसे होय? अनाचारीयोंको शुद्धाचारी बनावे. अनाचारकी ग्लानी करे, शुद्धाचारीकी सेवा प्रशंसा करे, अभक्षको त्यागे. नित्य में प्रवर्ते, सो शुद्धाचारी होवे.

५४ प्र-भाइयोंमें विरोध कायसे होवे? उ-हाथी, घोडे, भेंसे, मेंडे, कुत्ते मुर्गे, वगेरे जानवरोंको आपस में लडावे. या लडाइ देख हर्षावे, तो भाइयोंमें विरोध (लडाइ) होवे.

५५ प्र-भाइयोंमें संप कायसे रहे? मनुष्यों पशूवोंके झगडे मिटावे, संप करावे संप देखके खुश होवे, संप रहने उद्यम करे, तो भाइयोंमें स्नेह होवे.

५६ प्र-अंतरद्वीपेमें किस कर्म से उपजे? उ-मिथ्यात्वी साधु आदी कों दान देवे, उत्तम साधुओंको कपट से, फलकी इच्छासे दान देवे, दान दे अभिमान करे, सो अंतर द्विप में मिथ्यात्वी जुगलिया मनुष्य होवे.

५७ प्र-जुगलिया (भोग भूमीये) मनुष्य कायसे होवे? उ-शुद्धाचारी साधुओं को, हुल्लास भावसे शुद्ध आहार, स्थान, वस्त्र, पात्र देवे; दुसरेके पास से दिलावे. अन्य को देते देख खुश होवे सो अकर्म भूमी मे सम्यग्दृष्टी जुगलिया होवे.

५८ प्र-अनार्य देशमें जन्म किस कर्मसे लेवे? उ-खोटा आलचडावे, म्लेच्छो की सुख संपदा अच्छी लगे, म्लेच्छ वेश धारे, म्लेच्छ कामों की प्रशंसा करे, आर्यदेश छोड अनार्य में रहे, सो आनार्य देश

में जन्मले.

५९ प्र—आर्य देशमें कायसे जन्मे? उ—आर्यों की चाल चलन पसंदकरे. अनार्य रिवाज-कामें छोडे, अनार्य कों आर्य बनावें, मुनि (साधु) की प्रशंसा करे, आर्यों को यथा शक्ति सहायता करे, तो आर्य देशमें जन्मलेवे.

६० प्र—हम्माल कायसे होवे? मनुष्य, पशुओंपे गजा (शक्ती) उपरांत वजन लादे, वेगारमें पकडे,जबरी में काम लेवे, थोडाकहे बहुत वजन भरे, ज्यादा उठाया देख हर्षावे तो हम्माल,पोठीया, बैल, घोडा वगैरे होवे.

६१ प्र—कु कवी (भाट चारण) कायसे होवे ? उ—कु कथा का प्रेमीबने, लौकीक (मिथ्या) शास्त्रका दान दिया, धर्म कथाका नाम रख व्याभिचार उत्पन्न होवे ऐसी कथाकरे, विषय पोषक कवीता रचे, विषय वचन राग रागणी सुणे, उनपे प्रेम करे, सो कु—कवी भाट चारण होवे.

६२ प्र—सुकवी कायसे होवे? उ—जिनराज मुनिराजके गुण कीर्तन सुण हर्षावे, शास्त्रकर्ता गणधरो की आचार्यों की प्रशंसा करे. ज्ञानवृद्धी में धन लगावें, धर्म कवीयों को सहाय्यदे, धर्म कवीता की स्तुत

रहस्यों से हर्षावे सो, विद्वान कवी होवे.

६३ प्र–दीर्घ (लम्बा) आयुष्य कायसे पावे? उ–मरते जीवोंका द्रव्य दे छोडावे. उन्हे खान, पान,स्थानका सहाय दे, बंदीवान छुडावे; संसार में उदासीनता धरे, दया भाव रक्खे, दीन अनाथोंको सहाय देवे, साधुको शुद्ध निर्दोष आहार आदिक देवे तो दीर्घ आयूष वाला होवे.

६४ प्र–ओछा आयुष्य कायसे पावे? उ–जीव घात करे; गर्व गलावे, आजीवका का भंग करे, ज्यूं खटमलादी मारे, साधुको अमन्योग असाता कारी अहार आदिक देवे, शुद्ध लेने वाले साधुको अशुद्ध आहार प्रमुख देवे, अग्नि विष शास्त्रादि से जीव मारे; सो अल्पआयुष पावे.

६५प्र–सदा चिंता कायसे रहे? उ–बहुत जीवकों चिंता उत्पन्न होवेसो वैसा वातकरे सदा चिंता करने वाला होवे

६६ प्र–सदा चिंता कायसे रहे? उ–दुसरेकी चिंता का भंग करे, धर्मात्माकों देख खुश होवे दुःख पीडितको संतोष उपजावे. सो सदा निश्चिंत रहे.

६७ प्र–दास कायसे होवे? उ नोकरोंको बहुत सतावें, बहुत काम लेवें परिवारका सैन्यांका अभीमान करे; सो बहुत जनोंका दास होवे.

६८ प्र—मालिक कायसे होवे? उ—धर्मी जनोंकी तपस्वियोंकी वेयावच्च करे, धर्मात्मा दुःखी जनोका पोषण करे, अन्यके पास धर्मात्मा की सेवा भक्ती करावे, कर ते देख खुशी होवे, सो बहुतों का मालिक होवे.

६९ प्र—नपुंसक कायसे होवे? उ—नपुंशक के नृत्य गायन ठट्टे देख खुशी होवे. पुरुषकी स्त्रिका रूप बना के नृत्य करावे, बैल, घोडे, आदि पशू या मनुष्यका लिंग छेदन करे, नपूंसक से विषय सेवन करे, आप नपूंसक जैसी चेष्टा करे, स्त्री पुरुषके संयोग्य मिलाने की दलाली करें, बेंद्री, तेंद्री, चोरिंद्रकी हिंसा करे, सो नपूंसक होवे.

७० प्र—स्त्री कायसे होवे? उ—स्त्रीयों के विषय में अत्यंत लुब्ध होवे, पुरुष हो स्त्रीका रूप बनावे, स्त्रीयोंकी तरह चेष्टा करे या दगाबाजी करे,सो स्त्री होवे.

७१ प्र—निगोदमें कायसे जाय? उ-देव गुरु, धर्म की निंदा करनेसे. कंद मूलका भक्षण करनेसे.

७२ प्र—एकेंद्री कायसे होय? उ-पृथ्वी, पाणी,अग्नि हवा, वनस्पति, कंद-मूल, वृक्ष, घास फूल, पत्र, का छेदन भेदन करे सो एकेंद्री होवे.

७३ प्र—विकलेन्द्रिय कायसे होवे? उ—निर्दयपणे

त्रसकी घात करे अनाज (दाणें) बहुत दिन संग्रह कर रक्खे, त्रस जीव (कीडे) की उत्पति होवे ऐसी वस्तु का संग्रह करे, उन्हकी घात करे, मच्छर, खट मल, निवारने धुम्रादिक उपचार कर उन्हे मारे, बोर प्रमुख त्रस जीव उत्पन्न होवे ऐसे फलोंका भक्षण करे. मोरी, गटार में पेशाब करे,सो मरके विकल्येन्द्रि य (बेन्द्री, तेन्द्री, चौरिन्द्री) होवे.

७४ प्र—कलंग (अंगोपंग रहित) कायसे होवे? उ—जोवके हाथ, पांव, कान, नाक, आँक, अंगुली, आदि अंगोपांगका छेदन भेदन करे, कान कतरे बींदे कंगूरा करे, ऐसा करते देख हर्षावे सो कलंग (अंगो पांग रहित) होवे.

७५ प्र—पूर्ण अंग कायसे होवे? दूसरेके अंगोपांग का छेदन होता देख रक्षण करे, अपंगीकी करूणा करे, उसे सुधारनेका उपचार करे, आजीविका दिलावे. सहा य देवेतो पूणांगी (संपूर्ण अंगवाला) होवे

७६ प्र—नीच जाति कायसे पावे? उ—अपणी उंच जाति कुलका अभिमान करे, उच्च की निंदा करे, नी चका द्वेष करे, नीच कामें करे, सो नीच जाती पावे.

७७ प्र—उच जात कायसे पावे? उ—सत्पुरुषोंके गुण की पशंसास्या करे, वंदना नमस्कार करे, अपणी

दुर्गुण प्रगट करे, चार तीर्थकी भक्ति करे, यह मनुष्य जन्म पाय तो राजादिक कुलमें जन्में और तिर्यंच होय तो राज्यका मानेता हो सुख भोगवे.

७८ प्र–उंच जातीका दास क्यों बने? उ–उंचक में कर अभिमान करे, गुरुकी आज्ञाका भंग करे, उंच हो दीनोंके शिर आल चडावे उंचहो नीच काम करे-सो उंच हो नीच (दासके) कर्म करे.

७९ प्र–प्रदेश फिरके आजीका क्यों करे? उ–भिक्षुकोंको लालचा वारंवार फिराय फिर दान दे, नोकरों की नोकरी तरसाय २ दे, धर्म नामसे निकला धन बहुत दिन घरमें रक्खे, काशीदको भटकावे, सोप्रदेश फिर अजीविका करे.

८० प्र–सुख अजिव का कायसे मिले? उ–धर्मात्मा को स्वस्थान रहे अहार वस्त्रादि पहोंचाय सहाय दे, उनके पास धर्म वृद्धी कराय. आप स्थिर चित से धर्म ध्यान करे, [illegible] करे, सो घर बैठे सुखे अजीविका कमावे.

८१ प्र–दुःखकर अजीविका क्यों चलावे? उ–दुष्ट भावसे दीन जनोंको दान दे. मुनिको भक्ति रहित दान दे, चोरादिक कु कर्मियोंसे आजीविका चलावे, उनकी प्रशंसा करे. मच्छादिसे निर्वाह करने वालेके

कलंक चडावे. सो महा मुशिवत से कमाकर अजीवी का चलावे.

८२ प्र—सच्चावटसे आजीविका कौन करे? उ—सरल भावसे, विनय सहित, धर्मात्मा कों अहार देवे; दीन की रक्षा करे, निर्दोष आजिविका न मिलनेसे क्षुधादि परिषह सहे परंतु कु व्यापार नहीं करे सो सरलपणे सुखे आजिविका उपार्जन करे.

८३ प्र—मनुष्य पशु बजारमें क्योंविके? उ—मनुष्य व पशु कों वेंचे (मोलदेवे) कन्या विक्रय पुत्र विक्रय करे, या मोल दिलाने की दलाली करे, सो मनुष्य हो दास (गुलाम) पणे या पशु हो विके-वेचाय.

८४ प्र-सामुदानिय कर्म कायसे बन्धे? उ—मनुष्य या पशु का वध होता होय वहां देखने बहुत जन खडे रहें, मनमें आय कि इसे किति वेग मारे अपन अपने घर जावें, उन के. तथा बहुत मतांतरी यों एकत्र हो सत्य देव. गुरु धर्म की निंदा करे, उन्हके सामुदानिय कर्म बंधते हैं. वो पाणी मेडूब, आग में जल, या मारी प्लेगा दिके सपाटेमें आ एकदम बहुत मनुष्य मार जाते हैं.

८५प्र—एक दम बहुत जीव स्वर्ग में कैसे जावे? उ—धर्म मोत्सव, दिक्षा औत्सव, केवल औत्सव, धर्म

सभा व्याख्यानादिकमें बहुत जन मिल हर्षावे. वैराग भाव लावे. उसकी प्रशंसा करे. सो एक दम बहुत जीव स्वर्ग या मोक्ष जावे.

८६ प्र—कोइ विना काम द्वेष करे इसका क्या सबब ? उ—परभव में किसी को दुःख दिया होय, उस का नुकशान किया होय तो वो विना दोष ही द्वेष धरता हैं.

८७ प्र—विना स्नेही स्नेह जगे सो क्या सबब उ— दुः खसे छोडाया होय. साता उपजाइ हो वन में पहाडमें या संग्राममें निराधार हुवे को आधार देनेसे. वो पीछा अचित्य दुःख में आकर सहाय करे. विना कारण प्रेम करे.

८८ प्र—व्यंतरादिव्याधिसे मुक्त न होवे सो क्या कारण ? उ—वैद्य (हकीम) हो, अनेक जीवों केसाथ विश्वास घात करे, जानता हुवा खराब औषध दे, रोग बढाय और ज्योतिषि हो ग्रह, नक्षत्र भूत व्याधि आदि डर बताय, दूसरे कों लूंटे. देव देवी की मानता कराय; तथा विष शास्त्र अग्नि से आप घात करे सो अत्यंत उपचार करतेहो रोग विमारी और व्यंतरादि व्याधिसे छूटे नहीं.

८९ प्र—धनेश्वरीका धन धर्म काममें नहीं लगे उ.

सका क्या कारण ? उ-अन्यको कुशीक्षा दें,उसका द्र-व्य. वेश्या नृत्यादि कुव्यसन में खरचाय, अन्यका नुकसान सुन खुशी होवे. जुगार सट्टेके वेपारादि में द्रव्य गमाय, जो धनेश्वरी होके कुमार्गमें धनका व्यय कर सके परंतु धर्म काममें धन नहीं लगा सके

९० प्र-गर्भमेंही मृत्यु क्यों पावे? उ-शोकोंका या स्वता पोता का औषधोपचार या मंत्रादिसे गर्भ गलावे, पाडे, पडावे, सो गर्भ मेंही मृत्यु पावे.

९१ प्र-हित शिक्षा खराब क्यों लगे? उ-अन्यको कुशिक्षा दे कुमार्ग चलावे. गुरूके पिताके हित वचन नहीं सुने, शिक्षककी हँसी करे, उसे हित शिक्षा अ-हित कारी हो परिगमें.

९२प्र-जाती स्मरण और अवधि ज्ञान कायसे होय उ-तप संयम पाला हो ज्ञानीयोंकी वैयावच्च करी हो, ज्ञान की महिमा, बहुमान किया हो, उन्हे जाति स-मरण, अवधीज्ञान, उपजे.

९३ प्र-व्रत-पच्चखाण क्यों नहीं कर सके?उ-अन्य-के व्रत भंग कराय, शूद्धवर्त्तीके दोष लगाय, अन्यके व्रत भंगा देख खुशी हो. पोते व्रत ले प्रणामोंमें सक ल्प विकल्प करे, वार २ व्रत भांगे, उससे व्रत पच्चखा. ण न हो सके

१०२ प्र-भ्रमित चित्त क्यों रहे? उ-मदिरा भांग, अफीमादी केफी वस्तु सेवन करनेसे.

१०३ प्र-दहाज्वर कायसे होवे? मनुष्य पशु पे ज्यादा वजन लादनेसे.

१०४ प्र-बाल विधवा क्यों होवे? उ-पतिकी घात कर व्यभिचार सेवन करने से. पतिका आपमान करनेसे.

१०५ प्र-मृत्यु वन्धा क्यों होवे? उ-पशु पक्षी के बच्चे अन्डे मारनेसे. या लीखों फोडनेसे. उगती व नास्पतिकी कूंपल चूंटने-तोडनेसे.

१०६ प्र-ज्यादा पुत्री क्यों होवे? पाणी पीते पशु ओंको रोकके मारनेसे बहु पुत्रीयेकी निंदा करनेसे.

१०७ प्र- विधवा पुत्री क्यों होवे? उ—धर्मका धन खाय तो. धर्म के उप करण चोरे तो.

१०८ प्र-मंद कायसे होवे? उ-मदिरा मांसके भोग बनेसे. मंद बालकी हंसी करनेसे.

१०९ प्र—अपच्छाका रोग कायसे होवे? उ—साधु को खराब आहार देनेसे.

११० प्र-क्षय रोग कायसे होवे? हड्डीका व्यापार करे, सहत (मध) खाडे तो.

१११ प्र-कुरूप पेडोल मुख कायसे होवे? उ-दाने

शरीरकी निंदा करनेसे. मुखका बहुत शृंगार करनेसे.

११२ प्र-छोड कायसे रहे उ-गर्भपात करनेसे.

११३ प्र-स्थान भ्रष्ट कायसे होवे रस्ते परके झाड काटनेसे. आश्रितों का आसरा छोडानेसे.

११४ प्र-श्वेत कुष्ट कायसे होवे उ-गोवध, कन्या विक्रय करनेसे, तथा साधु हो व्रत भंग करनेसे.

११५ प्र-पुत्र वियोग कायसे होवे? उ-गाय भैसके बच्चेको दूध न पानेसे. पशु पक्षीके पुत्र मारनेसे.

११६ प्र-बचपणमें मात पिता क्यों मरे? सरण आयेकी घात करनेसे. मात पिताका अपमान करनेसे.

११७ प्र-जलोदर काहसे होवे? अभक्ष भक्षणेसे.

११८ प्र-दांत कायसे दुखे? अत्यंत रसनाकी लुब्धतासे. अभक्ष भक्षणसे.

११९ प्र-लम्बे दांत क्यों होवें उ-घरोघर, निंदा करनेसे, चहाडी चुगली करनेसे.

१२० प्र-मुख कुष्ठ पथरी कायसे होवे? उ-राणियों या परस्त्रीयोंसे गमन करनेसे.

१२१ प्र-गुंगा कायसे होवे? उ-झुटी साक्षी भरे, गुरूको गाली देनेसे

१२२ प्र- शूलरोग कायसे होवे? उ-पशु पक्षीको बाणो से मारनेसे, शूल कांटे आर चुभानेसे,

१२३ प्र-उत्तम जाती का मनुष्य भीख क्यों मांगे? उ-माता, पिता, गुरुकों मारें, या अपमान करनेसे.

१२४-प्र-गुंड भस्से ज्यादा क्यों होवे? पशु पक्षी के स्थर से मारनेसे.

१२५ प्र-चमडी फटे तथा दाद क्यों होवे? उ-सांप, विच्छु, गो, खटमल, ज्युं, लीख को मारे तो.

१२६ प्र- सदा बीमार क्यों होवे! उ-धर्मादा का खाके धर्म नहीं करेतो.

१२७ प्र-पीनस रोग क्यों होवे? उ-चीडीयों, मयुर तोते आदि मारनेसे.

१२८ प्र-कुष्ट रोग कायसे होय? उ-साधुको संताप देनेसे.

१२९ प्र-शरीर कायसे धूजे? उ-रस्ते चलते-वृक्ष तृण तोडेतो.

१३० प्र-अर्धांगरोग क्यों होवे उ-स्त्रीयोंकी हित्यासे

१३१ प्र-नासूर कायसे होवे उ-पशु पक्षी मनुष्य की नाक मे नाथ डालनेसे.

१३२ प्र-गलित कुष्टी कायसे होवे? उ-पशु पक्षी मनुष्य को फासीदे मारनेसे.

१३३ प्र-हरस (मस्सा)कायसे होवे उ-नदी तलाब पाणी शोशनेसे, और जलचर जीव मारनेसे.

पश्चताप नहीं करे तो.

१४७ प्र– काणा कायसे होवे? उ–बीज,फल फूल छेदे, हार गजरे वगैरे बनानसे.

१४८ प्र–गलित कुष्ट कायसे होवे? सुवर्ण चांदी लोहा ताबा वगैरे की खानो खोदनेसे.

१४९ प्र–यश करते अपयश क्यों होवे? उ-तचित औषधी करनेसे. अन्यकृत्य उपकार न माननेसे.

१५० आँख में वामणी कायसे होवे? निमक (लुण) के आगर खोदनेसे.

१५१ प्र–आँख भँजरी कायसे होवे? सम्यक दृष्टी हो मिथ्यात्वी का अनार्योका काम करनेसे.

१५२ प्र-रुंड मुंड शरीर कायसे होवे? उ-न्यायाधीश हो कठण दंड देनेसे.

१५३ प्र–कंठमाल कायसे होवे? उ–मच्छीका आहार करनेसे.

१५४ निरोगी दिखे, और रोगिष्ट होवे सो, क्या कारण? उ–लांच ले झुठा न्याय करनेसे.

१५५ प्र–संयोग मिल वियोग क्यों होवे? उ–कृतघ्नता, मित्र द्रोह और विश्वास घात करनेसे.

१५६ प्र–डरकण स्वभाव कायसे होवे? उ-कठोर दंडी कोटवाल होवे सो, तथा अन्यको डरावे सो.

१६८ प्र—जाड़ कायसे हूवे उ—पाखानेमें झाडे जामे. मूतनें मूत करे, सर्व रात मूतका संग्रह करनेसे

१६९ प्र—खोजा क्यों होवे उ- बहुत वन कटाइ करनेसे. खोजोंके साथ क्रीडी करनेसे.

१७० प्र—यौवन अवस्थामें दाँत पडजाय श्वेत बाल होवेतो क्या कारण? कोमल वनास्पति का छेदन भेदन, चटनी कचुमर करनेसे.

१७१ प्र-भरा नांगल (गुम्वडा) कायसे होवे? उ-फलोको चीर मसाला भरनेसे.

१७२ प्र—शरीरमें कीडे कायसे पडे? उ—दुसरेपे घोडेका पिशाब छिटकनेसे. सडी वस्तु खानेसे.

१७३ प्र—एक साथही मोले रोग कायसे होवे उ ग्रामोंको उजाड करे लूटे धाडा, पाडनेसे,

१७४ प्र—पाले हुवे मनुष्य क्यों वदले? रशोइका व्योपार करनेसे. अच्छी वस्तु दिखा खोटी खिलानेसे

१७५ प्र=१२ वर्ष का छोड कायसे रहे? उ-पेशाब भेला कर सर्व रात्रि रखनेसे.

१७६ प्र—प्र२४ वर्षका छोड कायसे रहे? उ-तीव्र भाव विषय सेवनेसे. गर्भ गलानेसे.

१७७ प्र—सदा शरीर क्यों जले? उ-फूलोंका मर्दन करनेसे. महोत अत्तर उगटणे लगानेसे.

१७८ प्र–वंध्या स्त्री कायसे होवे? उ–फूलका अत्त-र निकालनेसे. मनुष्य पशुके बच्च मारनेसे.

१७९ प्र– बहुत स्त्री होके भी पुत्र क्यों न होवे? उ=बहुत वनास्पतिका रस निकालनेसे

१८० प्र हलालखोर कायसे होवे? उ-जलचर जीव बहुत मारनेसे. कपाईके कर्म करनेसे.

१८१ प्र–सशक्त धर्म क्यों नहीं बने? उ=ममइ (मनुष्यका रक्त) बहुत निकाला होवेसो.

१८२ प्र- शरीर भारी कायसे होवे? उ-आसा श्राप दारू बहुत पिया होयतो.

१८३ प्र–गर्भ में आडा कायसे आवे? उ-साधुके शिर आल देवे, शुद्ध आहार लेने वाले साधुको अशुद्ध देवे. तो गर्भ में आडा आवे.

१८४ प्रश्नोत्तर-नर्क तिर्यंच गति में अकाम निर्जरा कर मनुष्य हुवा वो पहले दुःखी हो पीछे सुख पावे. कुलीन के शिर कलंक आवे. राजा सजा पावे, फिर इन्साफ होनेमें निर्दोष ठहरे छूट जावे.

१८५ प्रश्नमोक्ष कायसे मिले? उत्तर ज्ञान दर्शन चारित्र और तपको सम्यग् प्रकारे आराधन पालन स्पर्शन करनेसे. इति

इत्यादि कर्म बन्ध करनेके. और भुगतनेके

अनेक कारण शास्त्र ग्रन्थ में बताये हैं. कितनेक कर्म इस भवके किये इसही भव में भोगववते हैं. और कितनेक आगे के जन्म मे भोगवते हैं. अनंत ज्ञानी सर्वज्ञ भगवंत ने संसारी जीवोंकी कर्म विपाकसे होती हुइ दिशाको अवलोकन करी, परन्तु वाणी द्वारा सम्पूर्ण वर्णन कर सके नहीं, क्यों कि सम्पूर्ण विश्व अनंत जीवों कर भरा है. और एकेक जीवकेअंनत कर्म वर्गणाके पुद्गल लगे हैं. और एकेक वर्गणाके वर्णादि पर्यायकी अनंत व्याख्या होती है. ऐसा अपरम्पार विपाक विचय का वर्णन् भाषा द्वारा कदापि न होनेके, तथापि धर्म ध्यानी ज्ञानी की अनुसार, विपाक विचय का यथा शक्ति विचार करते हुये कर्मों की विचित्रता से वाकेफ होते हैं. वो कर्म बन्ध के कारणसे बचके कर्मक्षय करनेके मार्गमें प्रवर्तन हो, अनंत अध्यात्मिक सुख प्राप्त करते हैं.

चतुर्थ पत्र—"संस्थान-विचय"

संस्थान नाम आकार का है. सो जगत् का तथा जगत में रहे हुये पदार्थोंका आकार का विचार करे सो संस्थान विचय धर्म ध्यान. अनंत आकाश (पोलार) रूप अनंत क्षेत्र है कि जिसका अंतः पार ही नहीं. उसे अलोक कहते हैं, इस अलोक के मध्य भा

+ ९६ के उपरके बोल गौतम प्रच्छा और धर्मज्ञान प्रकाशके अनुसारसे कुछ-पदाके लिखे हैं.

ग में ३४३ रज्जु घनाकार लम्बी चौडी जितनी जगा में जीवाजीव रूपी अरूपी पदार्थ रूप एक पिंड है, उसे 'लोक' कहते हैं. यह लोक नीचे सातमी नरक के तले ७ राजु का चौडा है, और उपर मात राजु और वहां मूल से घटता २ मध्य लोक के स्थान एक राजु का चौडा है, और वहां से उपर चडते चौडाइ में बढते २ चार राजु (पांचमे देवलोक तक) और, वहां ५ रजू का चौडा है, और चौडाइ में घटते २ तीन राजु लोकाग्र [मोक्षस्थान] उपे यहां १ एक राजु का चौडा है. नीचे उलटा उस पे सुलट और उसपे एक उलटा यों तीन डिबे रखे, तथा पांव पसार कम्मर को हाथ लगा मनुष्य खडा रहे, इत्या

दि संस्थान (आकार) मय लोक है. ऐसा कथन भ गवति आदि शास्त्र में लिखा है, इस लोकके मध्य भाग में एक निसरणी जैसी एक राजु चौडी और सातमी नरक से मोक्ष तक १४ राजू लम्बी त्रस नाल है. उस के अन्दर त्रस और स्थावर दोनों प्रकारके जीव हैं. बाकीके सर्व लोकमें एक स्थावरही जीव भरे हैं,, त्रस नालके नीचेका विभाग सात राजु जितनी (उलटे दीवे जैसी) जगा में सात नर्कस्थान है, वहां पापकी अधिकता होती है, वो जीव उपजके कृत कर्म के अशुभ फल दुःखी हो भुक्ते हैं. मध्य में दोनों दीवेकी संधी मिलती है, वहां गोळाकार१८०० जोजन उंची जगा है. उसे मध्य (तिरछा) लोक कह ते हैं. वहां मध्य में तो एक लक्ष जोजन का उंचा और नीचे दश हजार जोजनका चौडा उपर एक हजार जोजन चौडा (मलस्थंभ जैसा) मेरु पर्वत है, उसके चारही तर्फ फिरता [चूडी जैसा) एक लक्ष जोजनका लम्बा चौडा (गोळ) 'जंबु द्विप' है, उसके बाहिर चारही तर्फ (चूडी जैसा) फिरता दो लक्ष जोजनका चौडा 'लवण समुद्र' है. उसके चारही त र्फ वेनाही-फिरता चार लक्ष जोजन चौडा 'धातकी खंडद्विप' है. उसके चौगिर्दा ८ लक्ष जोजन चौडा

'कालोदधी समुद्र है' उनके चौगिर्दा १६ लक्ष जोजन चौडा 'पुष्करद्वीप' है.† यों एकेकको चौगिरदा फिरते और चौडासमें एकेकसे दुगणे, असंख्यात द्विप, और असंख्यात समुद्र, सब चुडी (बंगडी) के संस्थानमेंहैं. मेरु पर्वतके जड में समभूमी है, वहांसे ७९० योजन उपर तारा मंडल, वहांसे १० जोजन उपर * सूर्यका विमान, वहां से ८० जोजन उपर चन्द्रमाका विमान हैं. और उपर २० जोजन के अन्दर सब जोतषीयों के विमान आगये हैं. अढाइ द्विप के अन्दर के जोतिषीके विमान आधे कविठके संस्थान है. और बाहिर के इंट जैसे है. आगे उपर (मृदंग के संस्थान) सात राजू मंठरा कुछ कम लोक है, उसे उंचा लोक कहते हैं. वहां १२ देवलोक, ९ लोकांतिक ९ ग्रीवेक

† पुष्कर द्विपके मध्य भागमें गोलाकार [सुडा सेसा] मानु क्षेत्र पर्वत हैं. उसके अन्दरही मनुष्य की वस्ती हैं जंबुद्विप घातकी खंड द्विप और आधा पुष्करार्ध द्विपयों अढाइ द्विप कहते हैं.

* चन्द्रमां का विमान सामान्य पणे १८०० कोश का चौडा हैं सूर्य का १६०० कोश चौडा. और ग्रह नक्षत्र तारा के विमान जघन्य १२५ कोश उत्कृष्ट ५०० कोश चौडे हैं और १६ लक्ष कोश सूर्य तथा १७ लाख ६० हजारकोस चन्द्रमा पृथ्वी से उंचा हैं ऐसा मिथ्य खंडन ग्रंथ में लिखा हैं.

५ अनुत्तर विमान आगयाहै. इनमें सर्व विमान-८४९-७०२३ है. कितनेक चौखूणे-कितनेक तीखूणे और कितनेक गोळाकार हैं. वहां पुण्य की अधिकता होती है वो जीव उत्तम के कृत कर्म के शुभ फल सुख मय भुगतें है. सर्वार्थसिद्ध विमान के उपर १२ जोजन सिद्ध सिला है सो चित्ते छत्र के जैसी ४५ लक्ष जोजन की लम्बी चोडी (गोळ) है. उसके उपर एक जोजन के चोवीसवे भागमें अनंत सिद्ध भगवंत अरूपी अवस्थामें अलोक से अड (लग) के विराज मान हैं. यह संक्षेपसे लोक का और लोक में रहे स्थूल पदार्थों के संस्थान-का वर्णन किया.

जीवके ६ संस्थान-१ जिसका चारहीं तर्फ बरोबर अंग होय-अर्थात् पद्मासन से बेठ के दोनो घुटने के विचमें की डोर और दोनो खन्धे के विच की डोरी बरोबर आवे. तैसे दोही डोरी बांहा खन्धा और बाये घुटनेके विच, और डावे खन्धा और डावे घुटने के बीच बरोबर आवे. जैसे अच्छी कितनीक जैन मूर्ती को बनाते है. सो 'समचउरस संस्थान' २ जैसे वट (वड) का झाड. निचे तो फक्त लकड का ठूंठ रुंड मुंड दिखता है, और उपर शाखा प्रतिशाखासे शोभे तैसेही कम्मर के नीचे का शरीर अशोभनीक, और उपरका शरीर

शोभनीक होवे, सो 'निगोह परिमंडल' संस्थान. ३ जैसे खुरशाणी अम्वली. उपरको तो टुंठा निकल जाय और नीचे शाखा प्रतिशाखा कर शोभे. तैसेही उपरका शरीरतो अशोभनीक और कम्मरके नीचेका शरीर शोभनीक लगे, सो 'सादी संठाण' ४ वावन ठिंगना (छोटा) शरिर होयसो 'वावना संस्थान' ५ पीठपे तथा छातीपे कुवड निकले सो 'कुवडा संठाण' ६ आधा जलामुर्दाका जैसा सवशरीरखरावहोय, सो 'हुंडसंठाण'.

इन ६ संस्थान मेंसे नरक पांच स्थावर तीन विकेंद्री और असन्नी तिर्यंच पचेंद्री मे फक्त १ हुंड संस्थान पावे. सन्नी मनुष्य और सन्नी तिर्यंचमे ६ ही संथान पावे, और सब देवता तिर्थंकर, चक्रवर्ति, वलदेव, वासुदेव आदि उत्तम पुरुषोंका एक समचउरस संस्थान होता हैं.

अजीवके ५ संठाण—१वटे गोळ (●) लड्डू जैसा २ तंसे=तीखुणा > सिंघाडे जैसा. ३ चौरंसे=चौखुणा [] चौकी (बाजोट) जैसा. ४ परिमडल—गोल .O. चूडी जैसा और पांचमां आइंतस—लम्वा । लकडी जैसा. इन पांचही संस्थानमय इस जगत्में अनेक अजीव पदार्थ हैं. वट्टे तो वाटले वेताडादिक, तंसे और चोरंसे सो कित्नेक देवताके विमाण वगेरे. तथा परि

१

मंडल द्वीप समुद्रादिक ऐसा औरभी अनेक पदार्थ जानना.

यह संठाण-संस्थोनो का जो वर्णन् किया इन आकारके सर्व पदार्थोंमें; अपना जीव अनंत वक्त उपजके मर आया है. स्वतः सर्व प्रकारके उंच नीच संस्थान मय वस्तूका मालिक हो आया है. भोगव आया है. अब्बी यहां रे जीव ! तुझे पुण्योदयसे तेरेशरीर का, स्त्रिआदीका, मनोरम्य संस्थान मिलगया तथा सयनासन, वासन, वस्त्र, भूषण, वाहन, इत्यादि इच्छित ऋद्धी प्राप्त हुइ देख के, क्यों उसके फंदमें फसता है. क्या मरके उसहीमें उत्पन्न होना है? कहते हैं—"आसा वहां वासा" ऐसा जाण, अच्छे संस्थानके पदार्थोंपेसे ममत्वका त्याग करना. और कोइ वक्त अशुभोदय से अशोभनीक संस्थान मय अपना, शरीर यास्त्रिआदिक कुटुम्ब संयोग मिलगया. या अमन्योग्य शयनासनका योग्य वना तो, खेदित न वनें. क्यों कि संस्थान तो फक्त एक व्यवहारिक रूप है, इनमे अंतरिक कुछ कार्य की सिद्धी न होती है. जिन ने किसी कार्य की सिद्धी न होवे. उस पे हृष्ट तुष्ट होना येही अज्ञानता जानी जाती है. और. भी विचारे किन्‍े जीव! तूं ज्ञानी वन के निकम्मे काम

मंडल द्वीप समुद्रादिक ऐसा औरभी अनेक पदार्थ जा
नना.

यह संठाण-संस्थोनो का जो वर्णन किया इन आ-
कारके सर्व पदार्थोंमें; अपना जीव अनंत वक्त उपज-
के मर आया है. स्वतः सर्व प्रकारके उंच नीच सं-
स्थान मय वस्तूका मालिक हो आया है. भोगव आ
या है. अब्बी यहां रे जीव ! तुझे पुण्योदयसे तेरेश-
रीर का, स्त्रिआदीका, मनोरम्य संस्थान मिलगया
तथा सयनासन, वासन, वस्त्र, भूपण, वाहन, इत्यादि
इच्छित ऋद्धी प्राप्त हुइ देख के, क्यों उसके फंदमें फ-
सता है. क्या मरके उसहीमें उत्पन्न होना है? कहते
हैं—"आसा वहां वासा" ऐसा जाण, अच्छे संस्थान-
के पदार्थोंपेसे ममत्वका त्याग करना. और कोइ वक्त
अशुभोदय से अशोभनीक संस्थान मय अपना, शरी-
र यास्त्रिआदिक कुटुम्ब संयोग मिलगया. या अम
न्योग्य शयनासनका योग्य बना तो, खेदित न वनें.
क्यों कि संस्थान तो फक्त एक व्यवहारिक रूप है,
इनमें अंतरिक कुछ कार्य की सिद्धी न होती है.
जिन से किसी कार्य की सिद्धी न होवे. उस पे हृष्ट
तुष्ट होना येही अज्ञानता जानी जाती है. और. भी
विचारे किरे जीव! तूं ज्ञानी बन के निकम्मे काम

मंडल द्वीप समुद्रादिक ऐसा औरभी अनेक पदार्थ जाननाः

यह संठाण-संस्थानो का जो वर्णन् किया इन आकारके सर्व पदार्थोंमें; अपना जीव अनंत वक्त उपजके मर आया हे. स्वतः सर्व प्रकारके उंच नीच संस्थान मय वस्तूका मालिक हो आया हे. भोगव आया हे. अब्बी यहां रे जीव ! तुझे पुण्योदयसे तेरेशरीर का, स्त्रिआदीका, मनोरम्य संस्थान मिलगया तथा सयनासन, वासन, वस्त्र, भूपण, वाहन, इत्यादि इच्छित ऋद्धी प्राप्त हुइ देख के, क्यों उसके फंदमें फसता है. क्या मरके उसहीमें उत्पन्न होना है? कहते हैं-"आसा वहां वासा" ऐसा जाण, अच्छे संस्थानके पदार्थोंपेसे ममत्वका त्याग करना. और कोइ वक्त अशुभोदय से अशोभनीक संस्थान मय अपना, शरीर यास्त्रिआदिक कुटुम्ब संयोग मिलगया. या अमन्योग्य शयनासनका योग्य बना तो, खेदित न बनें. क्यों कि संस्थान तो फक्त एक व्यवहारिक रूप है, इनमे अंतरिक कुछ कार्य की सिद्धी न होती है. जिन ने किसी कार्य की सिद्धी न होवे. उस पे हृष्ट तुष्ट होना येही अज्ञानता जानी जाती है. और भी विचारे किरे जीव! तूं ज्ञानी बन के निकम्मे काम

शोभनीक होवे, सो 'निगोह परिमंडल' संस्थान. ३ जैसे खुरशाणी अम्वली. उपरको तो ठुंठा निकल जाय और नीचे शाखा प्रतिशाखा कर शोभे. तैसेही उपर का शरीरतो अशोभनीक और कम्मरके नीचेका शरीर शोभनीक लगे, सो 'सादी संठाण' ४ वावन ठिगना (छोटा) शरीर होयसो 'वावना संस्थान' ५ पीठपे तथा छातीपे कुवड निकले सो 'कुवडा संठाण' ६ आधा जलामुर्दाका जैसा सवशरीरखरावहोय, सो 'हुंडसंठाण'.

इन ६ संस्थान मेंसे नरक पांच स्थावर तीन विक्लेंद्री और असन्नी तिर्यंच पचेंद्री मे फक्त १ हुंड संस्थान पावे. सन्नी मनुष्य और सन्नी तिर्यंचमें ६ ही संयान पावे. और सव देवता तिर्थंकर, चक्रवर्ति, वलदेव, वासुदेव आदि उत्तम पुरुषोंका एक समचउरसं संस्थान होता हैं.

अजीवके ५ संठाण–१वट्टे गोळ (☉)लड्डू जैसा २ तंस=तीखुणा > सिंघाडे जैसा. ३ चौरंसे=चौखुणा [] चौकी (वाजोट) जैसा. ४ परिमंडल–गोल ○ चूडी जैसा और पांचमा आइंतस–लम्वा। लकडी जैसा. इन पांचही संस्थानमय इस जगत्में अनेक अजीव पदार्थ हैं. वट्टे तो वाटले वेनाडादिक, तंसे और चौरंसे सो कित्तेक देवताके विमाण वगैरे. तथा परि

मंडल द्वीप समुद्रादिक ऐसा औरभी अनेक पदार्थ जानना.

यह संठाण-संस्थोनो का जो वर्णन् किया इन आकारके सर्व पदार्थोंमें; अपना जीव अनंत वक्त उपजके मर आया है. स्वतः सर्व प्रकारके उंच नीच संस्थान मय वस्तूका मालिक हो आया है. भोगव आया है. अब्बी यहां रे जीव ! तुझे पुण्योदयसे तेरेशरीर का, स्त्रिआदीका, मनोरम्य संस्थान मिलगया तथा सयनासन, वासन, वस्त्र, भूषण, वाहन, इत्यादि इच्छित ऋद्धी प्राप्त हुइ देख के, क्यों उसके फंदमें फसता है. क्या मरके उसहीमें उत्पन्न होना है? कहते हैं-"आसा वहां वासा" ऐसा जाण, अच्छे संस्थानके पदार्थोंपेसे ममत्वका त्याग करना. और कोइ वक्त अशुभोदय से अशोभनीक संस्थान मय अपना, शरीर याश्त्रिआदिक कुटुम्ब संयोग मिलगया. या अमन्योग्य शयनासनका योग्य वना तो, खेदित न वनें. क्यों कि संस्थान तो फक्त एक व्यवहारिक रूप है, इनमे अंतरिक कुछ कार्य की सिद्धी न होती है. जिन मे किसी कार्य की सिद्धी न होवे. उस पे हृष्ट तुष्ट होना येही अज्ञानता जाती जाती है. और. भी विचारे किरे जीव! तूं ज्ञानी वन के निकम्मे काम

रुचि नाम. उत्कृष्ट इच्छा का है, जैसे-कामी को कामकी. द्रामी को द्राम की नामी को नाम की क्षुधित को अन्नकी, तृषित को जल की. समुद्र पडे को झाज की. रोगी को औषधी की- रस्ता भूले को साथ की. इत्यादि कार्यर्थिक को कार्य पूरा करने की स्वभाविक इच्छा होती है; यो कार्य पूर्ण न होवे वहां लग मनमे तलमल लगी रहे, कार्य पूर्ण होनेसे अत्यंत हर्षाय, और वियोग होने से पीछी वैसीहि उत्कंठा जगे उसी का नाम रुचि है. संसारी जीवोंकी जैसी रुचि व्यवहारिक पुद्गलिक कामोंकी होती है वैसाही रुचि धर्म ध्यानी की आत्म साधन के कामों में होती है. यह आत्म साधन के परमार्थिक कामोंके मुख्य चार भेद किये हैं.

प्रथम पत-अज्ञा रुचि

१ आज्ञा रुचिः—अनादि काल से यह जीव जिनाज्ञा का उल्लंघन कर स्वच्छंदा चारी हो रहे जिस सेही इतने दिन संसार में परिभ्रमण किया. उत्तराध्येयन सूत्र में फरमाया है कि "छंदो निरोहेण सुहो इ मोक्खं" अर्थात्-अपना छांदा (इच्छा) का निरुंधन करे जिनाज्ञा में प्रवर्तन से ही मोक्ष मिलती है. इस

सहन करे, मिष्ट कटु वचनकी दरकार न रक्खे. निद्रा प्रमाद आहार कमी करे, सदा ज्ञान ध्यान तप संयम में आत्मा को रमण करते प्रवर्तें (इस आज्ञा रुचिका विस्तार पहिले आज्ञा विषय में विस्तारसे होगया है. वहां कहा सो तो विचार समजना और यहां कहा सो प्रवर्तन करनेकी इच्छा समजना)

द्वितीय पत्र-"निसग्गरुचि"

२ 'निसग्ग रुचि'—धर्म ध्यानी पुरुष को इस विश्वालय में के सर्व पदार्थ ऐसे भाष होते हैं कि जाने मुझे सद्बोध ही करते हैं. श्री आचारंग शास्त्र के फरमान मुजब ज्ञानी महात्मा आश्रव के स्थान मे ही संवर निपजा लेते हैं. जैसे * नमीराज ऋषिने

---

* मिथला नगरी के नमी रायजीके शरीर में दहा ज्वर हुवा, उसवक्त वैद्यके कहेनेसे शांती उपचार के लिये १०-८ राणीयों बावन चंदन घिस के लगाने लगी, तब उन सबके हाथ की चुडीयों का एक दम शोर मच गया तब नमीराय बोले-मुझे येशब्द अच्छा नहीं लगता है. कि उसी वक्त सब प्रेमलाने शोभाग्यके लिये एकेक चूडी हाथमें रख सब चूडीयों उतार डाली. अवाज बंद होनेकारण समझने से विचार हुवाकी, "बहुत चूडी एकस्थान थी तबही गडबड थी और एक रहनसे सब गडबड मिट गइ;

तत्व ज्ञान पे रुचि लगने से सम्यक्त्व की प्राप्ति हुइ सो 'निसर्ग रुचि' ऐसे किसी भी तरह तत्वज्ञता प्राप्त हो उस में परिणाम स्थिरीभूत होवे वोही धर्म ध्यानी की निसर्ग रुचि का लक्षण जाणना.

तृतीय पत्र-"उपदेश रुचि"

३ 'उपदेश रुचि'-श्री तिर्थंकर केवल ज्ञानी, गणधर महाराज, साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, सम्यक दृष्टी, इत्यादि जो शुद्ध शास्त्रानुसार उपदेश करे, उसमे धर्म ध्यानी की रुचि लगेसो उपदेश रुचि दशवे कालिक सूत्र के चौथे अध्येयनमें फरमाया है:-

गाथा-सोचा जाणइ कल्लाणं. सोचा जाणइ पवगं.
उभयंपि जाणइ सोचा. जंभेयं तं समायरे.११

अर्थ-सुनने सेही मालम होता है कि-अमुक सुकृत्य करने से अपणी आत्मा का कल्याण (अच्छा भला) होगा और अमुक पाप कृत्य करनेसे बुरा होगा; तथा अमुक काम करने से, अच्छा और बुरा दोनो ऐसा मिश्र काम होगा जेसे-कि काम भोग में सुख थो तोडा है और दुःख अनंत है, यह दोनों बात समझे. तथा मिश्र पक्ष जो ग्रहस्थ धर्म है, जिसे शास्त्र में 'धम्मा धम्मी' तथा-'चरित्ता चरित्ते' कहे हैं. क्योंकि संसार में बेठे हैं सो बिना पाप गुजरान

होना मुताकिब ऐसा समझे उदासीन वृत्ति पश्चाताप युक्त काम पूरता कर्म करते हैं. और आत्म कल्याण का कर्ता धर्म कों जाण, जब २ मौका मिलता है तब अत्यंत हर्ष युक्त धर्म क्रिया करते हैं. यह तीन ही बातो सुनने से मालम पड़ती है. उसमे से अच्छी लगे उसे स्विकार के सुखी होते हैं. यह सब उपदेश सेही जाणा जाता है. उपदेश (व्याख्यान) में सदा अभीनव तरह २ का सद्बोध श्रवन करते स्वभाविक तत्व रुचि तत्वज्ञता उत्पन्न होती है. ध्यानस्थ हुये वो बोध हृदय में रमण करता है. तब अन्य सर्व वृती से चित्त निवर्त हो, एकांत धर्म ध्यानही में लग, ध्यान की सिद्धि करता है. इस लिये धर्म ध्यानी उपदेश, श्रवण, मनन, निर्धध्यासन, और उसी मुजब प्रवृतन करने में अधिक रुचि रखते हैं.

चतुर्थ पत्र-"सूत्र रुचि"

४ सूत्र रुइ—सूत्र—द्वादशांगी भगवंत की वाणी को कहते हैं. सो १ 'आचारांग जिस में—साधु के आचार गोचार वगैरका वर्णन है. २ 'सुयगडांग' जिसमें-अन्य मतावलम्बीयोंके मतका स्वरूप बताके उसका निराकरण कियाहै, ३'ठाणायंगजी में दशस्थानकका अधीकार है. ४'समवायंगजी में जीवादी पदार्थके समोह

का संख्या युक्त समवेस किया हे. विवहा पणंती(भग वती)में विविध प्रकार का अधिकार हे. ६ ज्ञाता- में धर्म कथा ओं हे. ७ 'उपासकदशा' में :दश श्राव कों का अधिकार हे. ८ 'अंतगडदशांग' में अंतगडके- वलीयों का अधिकार. ९ 'अणुत्तरोववाइ'में अणुत्तर विमन में उपजे उनका अधिकार. १० 'प्रश्नव्याकार, ण' में आश्रव संवर का अधीकार ११ 'विपाकमें' शु भाशुभ कर्म भोगवणेंकी कथा और१२वा दृष्टी वादांगमें सर्व ज्ञान का समवेश किया था.

यह द्वादशांगी श्रीजिनेश्वर भगवानकी वाणी अगा ध ज्ञान का सागर हे. तत्वज्ञान कर प्रतिपूर्ण भरी हुइ हे. ज्ञाता को अपूर्व चमत्कार हृदयमें उत्पन्न क- रती हे. आत्म स्वरुप वताने वाली, मिथ्या भर्म मि- टाने वाली, मोह पिशाच भगाने वाली, मोक्ष पंथ लगाने वाली, अनंत अक्षय अव्याबाध सुख कों च- खाने वाली, एक श्री जिनश्वर भगवंत की वाणीही गुण खाणी हे. जिसे पठन, श्रवन मनन निधिध्यासन करनेमें धर्मध्यानी महात्मा सदा प्रेमातुर रहते हैं, ए- केक शब्द अत्यंत उत्सुकता से ग्रहण कर उसके रसे- में अंतः करण कों प्रवेश कर, एकाग्रता से लीनहो. अपूर्व अनोपम आनंद प्राप्त करते हैं.

तृतिय प्रतिशाख–धर्मध्यानिके "आलम्बन"

सूत्र धम्मस्सणं झाणस्स चत्तरी आलंवणा पण्णतातं जहाः-वायणा. पुच्छणा, परियट्टणा,धम्मकहा

अर्थ-धर्म ध्यान ध्याने वाले को चार आलम्बन [आधार] फरमाये हैं, जैसे बृद्ध मनुष्यको मार्गक्रमणेको ज्येष्टिका [लकडी] आधार भूत होती है या मेहलपे चढने को पंक्तीयें का आलम्बन डोरी आधार भूत होती है. वैसेही धर्म ध्यानमें प्रवृत होने वाले मनुष्योंको चार तरहका आधार होता है, सो कहे हैं: १ 'वायणा'–सुत्रका पठन, २ 'पुच्छणा'–संदेह निवारन गुरुसे पृच्छना [पुछना] ३ 'परियट्टना' पढे ज्ञान को वारम्वार संभारना [फिरना] और ४ धम्मकहा–धर्म कथा (व्याख्यान) दे प्रगट करना.

प्रथम पत्र-"वायणा"

१ 'वाचान' गीतार्थ बहु सूत्री, आचार्य, उपाध्याय इत्यादि विद्वानोके पाससे ज्ञान ग्रहण करना (पढना) या लिखित सूत्र ग्रन्थादि वाचना (पढना) यह ध्यानी के ध्यायका प्रथम आलंबन आधार है.

अत्यन्त चतुर्थ (चौथे) आरेमें, प्रवल (तीक्षण) प्रज्ञा (बुद्धि)के सद्भावसे, शास्त्रादिक लिखेन की आ-

वश्रकना बहुतही थोडीथी. वो अपणे गुरुओंके पाससे थोडेही कालमें बहुत ज्ञान कंठाग्र कर लेतेथे, कितनेक तो ऐसी तेज बुद्धि वाले थे की, चउदह पूर्वकी विद्या, जो कदापि लिखे तो १६३८३ हाथी डूबे इत्नी श्याही लगे, इत्ने ज्ञानको एक मुहूर्त मात्रमे कंठ कर लेतेथे. अर्थात् १ उपनेवा=उत्पन्न होने वाले पदार्थ, २ विघनेवा=विनाश होने वाले. और ३ धुवेवा ध्रुव (स्थिर)रहने वाले पदार्थ यह तीन पद पढाते जिसमें चउदह पूर्वका ज्ञान सनज जातेथ! जैसे कुंडभर पाणीमें एक तेलकी बुंद डालनेसे सब हौदमें फेल जाती है. तैसेही उन्हे लिखाया हुवा, संक्षिप्त शब्द विस्तार कर परगम जाताथा. और चउदे पूर्वका ज्ञान जिसके एक खुणेमें समाजाय ऐसा दृष्टी वाद अंगके पाठी (पढे हुये) भी विराजमान थे. इस ज्ञानके पर मोत्कृष्ट रसमें जब उनकी अंतरात्मा लीन होजातीथी. तब छे छे महीने जित्ना समय ध्यान में व्यतिक्रान्त होते भी उनको भूख, प्यास, शीत, उष्णादि पीडा (दुःख) जनक न मालम होतीथी.ऐसे २ प्रबल बुद्धि वाले थे. तब लेखका कष्ट सहनेकी क्या जरूर पडे? चौथा आरा उतरे लगभग ९७६ वर्ष गये पीछे. 'श्री देवढ्ढी गणी क्षमा श्रमण, नामे आचार्य, किसी व्या-

सूत्रोंकी लिखाइ संक्षेपमें हुइ, कि जिनकी हुन्डी (नामादी) श्री समवायँगजी तथा नंदीजी सूत्रमें हें. वाकीका सब ज्ञान उन्हीके साथ गया.

अब इस पंचम् कालमें तीर्थंकर केवल गणधर द्वादशांग के पाठी पूर्वधारी वगेरे जो अपार ज्ञान के धारक कोई नहीं रहे.

श्री उत्तराध्यदन जीके दशमें अध्ययनमें कहाहे :-

गाथा नहु जिणे अज्ज दिस्सइ,बहू मए दिस्सइ मग्गदेसिए
संपइ नेया उए पहे, समय गोयम मा पमायए ३१.

अर्थात् अभी इस पंचम कालमें नहीं देखते हे निश्चय से श्री जिन–तिर्थंकर भगवान व केवल ज्ञानी. परन्तु बहुत हें मोक्ष मार्ग के उपदेशनें बताने वाले जिनोक्त सिद्धांत तथा सद्बोध कर जीवोंको मुक्ति पन्थ में चलानें वाले 'सद्गुरु' उनके पाससे न्याय मार्ग मोक्ष पन्थ प्राप्त करने में हे गोतम (जीव) समय मात्र प्रमाद आळश मत करो!

इस गाथानुसार अभी तो भव्य मोक्षार्थि जीवोंको फक्त जिनोक्त शास्त्र ओर सद्बोध कर्ता सद्गुरुओंकाही आधार रहा हे, मोक्षार्थियोंकी इच्छा सिद्धि करने वाला ज्ञान हे. वो इस वक्त सुत्र व ग्रन्थों मे हे. ओर उनकी रहस्य गीतार्थों बहु सूत्रीयों उत्पात

बुद्धि और दीर्घ दृष्टी वालोंके पास है, कि जिनोंने अपने गुरुओंके पास यथा विधि धारण की है, और वो न्याय मार्ग में लौकीक लोकोत्तर में शुद्ध प्रवर्ती से प्रवृत्त रहे हैं, क्षांत, दांत, निरारंभी, निष्परिग्रही हैं. उनके पास शास्त्राभ्यास करना. क्यों कि शास्त्र समुद्र अति गहन गुढार्थों करके भरा है, उसकी यथार्थ समज होना है सोही आत्म कल्याण करने वाली है.

इस वक्त कितनेक ले भग्गूओं अभिमान के मारे गुरु गम हिन पुस्तकी विद्या पढ पंडितराज वन बैठे हैं, उन्होंने वहुत से स्थान अर्थका अनर्थ कर शास्त्रका शस्त्र बना दिया है; अनंत भव भ्रमण मिटा ने वाला पवित्र अहिंशा मय परम धर्म को हिंशामय कर, अनंत भवका वढाने वाला बना दिया है; इस लियेही चेताना पडता है कि मोक्षार्थियोंको अव्वल ज्ञान दाता गुरुके गुणोंकी परिक्षा शास्त्रानुसार कर उनके पाससे ज्ञान करना चाहीये.

श्री सुयगडायंगजी सूत्र के ११ में अध्ययन में धर्मोपदेशके लक्षण इस प्रमाणें चाहीये.

गाथ अया गुत्ते सयां दंते, छिन्न सोए अणासवे.
जेधम्मं सुद्ध मइक्खाति, पडि पुन्न मणालिसं. २४

अर्थात्–मन, वचन, काया. रूप, आत्माको पाप

मार्ग में जाती हुइ रोक, अपने वश में करी है, कुमा
र्ग में आत्माको नहीं जाने देते हैं, सदा पंच इन्द्रि
और मनको विषय से निवार धर्म ध्यान में लगा
रख्खा है. संसारका जो आरंभ परिग्रह रुप प्रवाह
है उसे बंद किया है. मिथ्यात्व, अव्रत्त. प्रमाद. कषा
य, और अशुभ जोग. इन पंच आश्रवों करके, रहित
हुये हैं, और अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य, अममत्व
यह पंच महाव्रत धारन किये, इतने गुणके धारक
होवें सोही, सत्य, शुद्ध, यथा तथ्य, श्री वीतराग
प्रणित धर्म फरमा सक्के हैं, वो वैसा धर्म फरमायेंगे
तो कि-प्रतिपूर्ण न्युन्याधिक ता रहित. देशव्रत्ती (श्रा
वकका) या सर्वव्रति [साधुका] निरुपम ओपमा रहि.
त, वैसा धर्म अन्य कोइ भी प्रकाश नहीं शक्के हैं,
ऐसे गुणज्ञोंके पास से ज्ञान संपादन करना.

अन्न, धन, आदि सामान्य वस्तुभी दातार के
पास से ग्रहण करनें अनेक लघुता करने हैं. तथा स
रो वरमे से भी विना नमन किये पाणी प्राप्त नहीं
हो सक्ता है, तो ज्ञान जैसा अत्युत्तम पदार्थ विना
लघुता नम्रता किये कहांसे प्राप्त होगा. इस लिये
ज्ञान प्राप्त करनेकी श्री उत्तराध्ययनजीके पहिले अ-
ध्याय में यह रीती फरमाइ है:—

गा–आसण गओनपुच्छजा,नेव सिज्जागओ कयाइवि
आगम्मुकडुओ संतो, पुच्छेज्जा पंजालि उडो॥२३॥
एवं विणअ जुत्तस्स, सुत्तं अत्थंच तदुभयं ॥
पुच्छ माणस्स सीसिस्स, वागरज्जं जहा सुयं ॥२३॥

अर्थात्–अपने आसण (बिछोना) पे बैठा हुवा तथा सेजा में सूता हुवा कदापि प्रश्नादिक नहीं पूछे क्यों कि आसण यह अभिमान जनक है, और, अ. भिमान ज्ञानका शत्रु है. और सूता हुवा ज्ञान ग्रहण करने से अविनय और प्रमाद होता है, यह ज्ञानके नाश करनेवाले हैं. इस लिये जब प्रश्न पूछनेकी का ज्ञान ग्रहण करनेकी इच्छा होय तब आसन अविनय मान और प्रमादको छोडके जहां गुरू महाराज विराजे होवें उनके सन्मुख नम्रता युक्त आवे और दोनो घुटने जमीनको लगा, दोनो हाथ जोड मस्तकपे चडा, तीन वक्त (उठ बैठ) नमस्कार करे, और दोनो घुट नें जमीनको लगाये, दोनो हाथ जोडे, नमा हुवा सन्मुख रहके, उच्च बहुमान वचनासे प्रश्नोत्तर करे, सूत्र अर्थादिक दिल चायसो पूछे. और क्या उत्तर मिलता है. ऐसी उत्कंठा युक्त एकाग्र उनके सन्मुख दृष्टी रखे, जो फरमावे सो, जी! तहत, वचन में ग्रहण करे जितना अपनको याद रहे. उतनाही ग्रहण करे.

ज्यादा लोभ नहीं करे. ऐसी तरह विनय युक्त पूछनेसे, गुरु महाराज ने अपने गुरुके पास से जैसा ज्ञान धारन किया वैसाही उसे देवेंगे (पढायेंगे)

जो सद्गुरूके पाससे ज्ञान ग्रहण किया है, उसकी पुनरावर्त्ती करते (फेरते) किसी तरह की शंका उत्पन्न होवे, या कोइ शब्द विस्मरण होगया (भूल गये) हो, तथा किसीने प्रश्न पूछा, उसका उत्तर नहीं आया हो तब तथा धर्म दीपाने, नवी बात अन्यको जचाने पूर्वोक्त विधिसे गुरू महाराजके सन्मुख आके:—

द्वितीय पत्र-"पुच्छणा"

२ 'पूछणा' अर्थात्-पूछा करे कि-हे कृपाल! आपने अनुग्रह कर मुझे अमुक पढाया था. उस में इस प्रकार संशय उत्पन्न होता है, सो हे पुज्य! उसका निराकरणा-निवारण करने आपको तकलिफ देताहूं सो माफ किजीये. और. मुझे मार्ग बताइ देइत्यादि नम्रता युक्त, अपने मन की शंका खुल्ली २ गुरुजी सन्मुख प्रकाश करे, और गुरु महाराज उत्तर देवे वो आप एकाग्रता से-उत्सुकता से जी! तहेत इत्यादि सकोमल-मीठे वचनो से वधाता हुवा ग्रहण करे. जहां तक अपने चित्तका पूरा समाधान न होवे

वहां तक नर्क उठार के पृछताही जाय, शरमाय नहीं डरे नहीं, घबराय नहीं, निश्चल चित्त सें पूरा निराकरण-कर * संदेह रहित होवे कि कोइ भी उस बात को पूछे तो आप उसके हृदय सचोट ठसा सके, ऐसा निश्चय करे और जो अभ्यास कर निश्चय कर निसंदेह ज्ञान किया है उसेः—

तृतीय पत्र-"परियट्टणा"

३ 'परियट्टणा' अर्थात्-वारंवार फेरता (याद करना) रहे. क्योंकि अब्बी इतनी तीव्र बुद्धि नहीं है कि जो एक वक्त पढा, पीछा याद नहीं करे तो विस्मरण (भूल) नहीं होवे, और वारंवार फेरने में बहुत फायदा है—

श्री उत्तराध्ययन जी सूत्रके २९ में अध्यायमें भगवंतने फरमाया हैः—

"परिट्टणं या पणं वंजण लद्धिं च उप्पाइए" अर्थात ज्ञानको वारंवार फेरनेसे अक्षरानुसारणी लब्धी उत्पन्न होती है. जिससे एक अक्षर व पदके अनुसारसे दुसरे आगे पीछे अक्षरोंका ज्ञान होता है, अर्नो विना पढी ही विद्या नेका हो अन्यके मूल

* पोछणा प्रति पोछणां करनेसे ज्ञानी बहुत खुशी होते हैं और जानकार उसका खुलासा करते हैं.

हुये अक्षरोंको आप बना सके. ऐसी शक्ति उपजे.

और जो ज्ञान फेरे वो ऐसा नहीं फेरे कि जैसे बच्चे 'गुणनी' करते हैं, पढ़े हैं वोही कह देते हैं परन्तु उसके मतलब में कुछ नहीं समझते हैं, तूं चल, मैं आया ऐसी 'गड़बड़' भी नहीं करे, ज्ञान फेरती वक्त 'अणुप्पेहा' अर्थात् उपयोग रक्खे. जो जो अक्षरोंका मुख से उच्चार होवे उसका अर्थ अपने मन में विचारता जाय, उसपे दृष्टी फैलता जाय. इस में बहुत गुण है.

सूत्र– "अणुप्पेहाएणं–आउयवज्जाओ सत्तकम्म पयडीओ धणीय बंधाओ, सिढिल बंधण बद्धा ओपकरेइ, दिह काल ट्ठिइयाओ रहस्स ओ काल ट्ठिइया ओपकरेइ; तिव्वाणु भाओ वाओ मंदाणु भावाओपकरेइ, बहु पएस गाओ, अप्प पएस गाओपकरेइ, आउयं चणं कम्मं सियबंधइ सियनोबंधइ, अस्सायावेयणि ज्जंचणं कम्मं नो भुज्जो २ अवचिणाइ; अणाइयंचणं अणवदग्गं दीह मद्धं चउरंत संसार कंतारं खिप्पा मे व वीइ वयइ, ३२ उत्तरा० अ० २९

अर्थात्–उपयोग युक्त ज्ञान फेरनेसे, या शब्द का अर्थ परमार्थ दीर्घ दृष्टीसे विचारनेसे और आठ कर्मों मेंसे आयुष्य कर्म छोड बाकीके ७ कर्मकी प्रकृ-

तियों जो पहलें निबड (मजबूत) बांधी होय उसे शिथ ल (ढीली) करे (जलदी छुट जाय ऐसी) बहुत काल तक भोगवणा पडे, ऐसा बंध बांधा होय तो; थोडेही कालमें छुटका होजाय ऐसी करे. तीव्र भाव (चीकट रससे उदय आने) की होवे, उसे मंद भाव (सरलपणें) भोग जाय ऐसी करे. • आयुष्य कर्म कदाचित कोइ बंधे, कोइ नहीं बांधे. असाता वेदनी (रोग दुःख देने वाले) कर्म वारंवार नहीं बांधे; और चार गती रूप संसार कांतार [जंगल] का पन्थ-मार्ग आदि रहित है और मुशकिल से पार होय ऐसा है. उसे क्षिप्र (शीघ्र) अतिकमें (उल्लंघे)-अर्थात् जल्दी पार पावे. -मोक्ष प्राप्त करें. देखिये! श्री महावीर वर्द्धमान श्वामी ने खुद, शास्त्र द्वारा विचारना [ध्यान] का कितने विस्तार से गुणानुवाद किया है. ऐसी उत्तम विचार शक्ति है, ऐसा जाण पूर्व उपयोग युक्त ज्ञान को वारंवार फेरना चाहीये.

जो ज्ञान फेर कर पक्का किया उन का रस हु येहु परगमा उसका लाभ दूसरे को देणे के लिये.

चतुर्थ पत्र-"धम्मकहा"

२ 'धम्मकहा' अर्थात् धर्मकथा (व्याख्यान) करे.

• आयुष्य कर्म का बन्ध एक भवमें एकही वक्त होता है.

धर्म कथा श्री ठाणायंग सूत्र में ४ प्रकार की कहके; एकेक के चार २ भेद करनेसे १६ प्रकार होते हैं,सो-

(१) अखेवणी-अर्थात् अक्षेपनी. जो बोध श्रोताकों सूणावे उसकी असर श्रोताके मनमें हूबहू होवे, पीछा वमन न होवे. एसा पक्का ठसजाय, रुचजाय, पचजाय, उसे अक्षेपनी कथा कहनी. इसके ४ भेदः– (१)प्रथम साधुका धर्म ५ महाव्रत, ५ समिती, ३ गुप्ति, (यह १३ चरित्र) आदि कहे, जो साधु होने समर्थ न होवें. उनके लिये श्रावकके १२ व्रत * आदि कहे के यथा शक्त धारन करनेकी सूचना करे. (२) निश्चय में और व्यवहारमें प्रवर्तनेकी रीती स्याद्वाद शैलीसे कहे. कि निश्चय में मोक्ष ज्ञानादि त्रय रत्नकी आराधनासे और व्यवहार में रजोहरण मुहपति आदि साधुके चिन्ह व शुद्ध क्रियासे, निश्चय विना व्यवहार, और व्यवहार विन निश्चय की सिद्धि होनी मुशकिल है,

* १ त्रस जीवकी हिंसा नहीं करे, स्थावरकी मर्याद करे,. २ बडा झूठ नहिं बोले. ३ बडी चोरी नहीं करे.४परस्त्रीका त्याग करे. परिग्रह की मर्याद करे. ६ दिशाकी मर्याद करे, ७ उपभोग परिभोगकी मर्याद करे, ८ अनर्था दंड त्यागे, ९ सामायिक करे, १० दिशावकाशी करे, नियम चितारे, ११ पोसा करे, १२ मुनिराज को १४ प्रकारका सुजतो दान उत्कृष्ट भाव से देवें.

व्यवहारमें शुद्ध प्रवर्त्ती कर, निश्चय सिद्धिकी स्थापकरनेसे सर्व सिद्धि होती हे. (३)श्रोताओंको संशयका उच्छेदन करनेको अपने मनसेही प्रश्न उठाके आपही उसका समाधान करे, कि जिससे इष्टार्थ सिद्ध होवे, तथा प्रश्नका उत्तर मार्मिक शब्दमें दे समाधान करे. (४) सत्य सरल सबको रुचे एसा सद्बोध करे.परन्तु पक्षपात राग द्वेष बडे,या आत्म श्लाघा परनिन्दा होवे एसा उपदेश नहीं करे. "पापकी निंदा करे परंतु पापी नहीं."

(२)"विक्षे वणी" अर्थात विक्षेपिणि, संयम या श्रद्धासे चलित परिणामी को पुनः सद्बोध कर आत्मा स्थिर करे, सो विक्षेपणी धर्म-कथा. इसके ४ भेद(१) अन्य मत के परिचय से तथा ग्रन्थावालोकन से किसी की श्रद्धा भृष्ट हुइ होय तो जैन मत का गहन सुक्ष्मज्ञानयता के अन्य मत की बातोंसे मिला के,प्रगट फरक बतावे, कि जिसकी अकल तुर्त ठिकाणे आजावे. एसा बोध करे (२) एकांत अन्यमतमें ही किसी का मन लगा होय तो, उसे उसी के मत के शास्त्रों में जो साधु ओं की कठिण क्रिया, तथा जैन मत से मिलती बातों होवे सो बता के उससे पूछे की एसे चलने वाले जैन हे या अन्य? तस्पना दुई। से

बाता के जैन का दृढ श्रद्धालु करे. (३) जब उन की श्रद्धा जैन मत पे जमी देखे, तबउसके हृदय का मिथ्या कंद निकंद करने. न्याय प्रमाण के शत्रों से खुल्लम खुल्ला मिथ्यात्व का स्वरूप बता शल्योधार निर्मळ करे. (४) जिन का निर्मळ हृदय होगया हो उनके हृदय में पीछा मिथ्यात्व प्रवेश न करे ऐसा सम्यक्त्व का विस्तारसे यथा तथ्य रुचि कारक स्वरूप बता के तथा अनेक प्रश्नोत्तर कर-पक्का करे, कि वो किसीका डगाया डगे नही.

(२) "संवेगणी" अर्थात सं-सीधे, वेग-रस्ते चलावे सो संवेगणी कथा, इसके ४ भेद [१]जिन२ वस्तूवोंपे संसारी जीवोंका प्रेम है, उनकी अनित्यता बतावेकि देखो! देखते २ वस्तूवोंके स्वभावमें, स्वरूप में कैसा फरक पडता है. ताजी वस्तू और बासी व. स्तुकों देखनेसे मालम होता है. वस्तूका स्वभाव क्षण भंगूर है. अर्थात क्षण २ में पलटता है. क्यों कि जो गुण और जो स्वाद गरम में था, वो टन्डी हुये पीछे नरहा: एसेही इस शरीर कों देखो-उत्पन्न हुये पीछे जवानी तक कैसी सुन्दरता में वृद्धि होती है, फिर वृद्धावस्था में कैसी सुन्दरता हीन होती है, औ शरीर नष्ट होजाता है. एसे सर्व जगतके सर्व पदा

र्थ जानना. क्षण २ में नवे २ पुद्गल उत्पन्न होते हैं, और ज्युने विनाश होते हैं. सब पदार्थोंमें कुछ एक ही दम फरक नहीं पडता है परन्तु पडता २ ही पड ता है. और एकदम पानीके परपोटे जैसे विनाशको प्राप्त होते हैं. ऐसा पुद्गलोंका स्वभाव जाण, ममत्व निवारे. फिर मनुष्य जन्मादि सामुग्रही प्राप्त हुइ है, उनकी दुर्लभता बतावेकी * चोरासी लक्ष जीवा यो-निमें अनंत परिभ्रमण करते महा पुण्योदय से सब भ-वभ्रमणके नाशका करने वाले=मनुष्य जन्म, शास्त्र श्र वण, शुद्ध श्रद्धा और धर्म स्पर्शनेकी सामग्री, महा मु-शकिलसे मिली है. इस व्यर्थ गमा देगा उसे किता पश्चाताप करना पडेगा? और ऐसी वक्त जो काम क-रनेका है वो कर लिया तो कैसा आनंद पावेगा? इ-त्यादि घात से वैराग्य प्राप्त कर धर्ममें संलग्न करे. (२)

* निचेदर धाउ सत्तय, तरुदश वयलिंदिय सुछच्चेव सुरणिरय तिरियचउ रो, चउदश मणुये सु सद सहस्सा.

अर्थ—७ लक्ष नित्य नीगोद. ७ लक्ष इतर निगोद, ७ लक्ष पृथवी. ७लक्ष पाणी. ७अग्नि. ७ लक्ष वायु. १०लक्ष प्रत्येक विनास्पति.२लक्ष बेंद्री.२लक्ष तेंद्री, २लक्ष चौरिंद्री. ४लक्ष नर्क. ४ लक्ष देव. ४ लक्ष तिर्यंच पचेंद्री; और १४ लक्ष जात मनुष्य की! यह ८४ लक्ष भय जानी है.

अल्पज्ञ जीवोंकों लालच लगने से धर्म वृद्धि करेंगे, ऐसे अवसर प देवादिक की ऋद्धि की, भोगकी, वैक्रयादि शक्ति, दीर्घ आयुष्य, निरोगता, आहार वगैरे का वरणन् करे. जो विशेष और निर्दोष धर्म करते हैं, उनको उत्तमोत्तम सुख मिलते हैं. और जो संसारके काम भोगमें लुब्ध रहते हैं पापकर्म करते हैं वो नरक में जाके दुःख भोगवते हैं. क्षेत्र वेदना परमाधामीकी वेदना वगैरेका वरणन करे क्षणिक सुखकेलिये सागरोपमका दुःख. इत्यादि रीत समजाणें से वो पापको छोड धर्म मार्ग में उद्यमवंत होवे. (३)

बन्धनानि खलु संति बहूनि। प्रेमरज्जुकृतबन्धमन्यत् ॥
दारुभेद निपुणोऽपिषडंघ्रिःपंकेज भवति दारुनिबद्धः॥

अर्थ-सर्व बन्धनोंसे प्रेम बंधन अतिही कठिणहै, क्योंकि प्रत्यक्षही देखीये! भ्रमर लक्कड जैसे कठिण पदार्थ को छेद डलताहै परन्तु कोमल कमल पुष्पमें फसकर मरजाता है!! "न पेम रागो परमत्थी बन्धो" अर्थात् जगत में प्रेमराग (स्नेह फान्द) जैसा और बन्धन नहीं है, प्रेम राग रूप फान्द में फसे जीव अपना सुख दुःख, भले बुरेका विचार नहीं करते. स्वजन मित्रका पोषण करने, अनेक आरंभ करते हैं, परन्तु उन की स्वार्थता को नहीं पहचानते हैं. देखीये! जब कुं

अल्पज्ञ जीवोंको लालच लगने से धर्म वृद्धि करेंगे. ऐ से अवसर प देवादिक की ऋद्धि की. भोगकी. वैक्रयादि शक्ति. दीर्घ आयुष्य. निरोगता. आहार वगैरे का वरणन् करे. जो विशेष और निर्दोष धर्म करते हैं. उनको उत्तमोत्तम सुख मिलते हैं. और जो संसारके काम भोगमें लुब्ध रहते हैं पापकर्म करते हैं वो नरक में जाके दुःख भोगवते हैं. क्षेत्र वेदना परमाधामीकी वेदना वगैरेका वरणन करे क्षणिक सुखकेलिये सागरोपमका दुःख. इत्यादि रीत समजाणे से वो पापको छोड धर्म मार्ग में उद्यमवंत होवे. (२)

बन्धनानि खलु संति बहूनि। प्रेमरज्जुकृत बन्धमन्यत ॥
दारुभेद निपुणोऽपिषंडघिःपंकज भवति दोपीननन्द्ः॥

अर्थ-सर्व बन्धनोंसे प्रेम बंधन अतिही कठिणहै, क्योंकि प्रत्यक्षही देखीये! भ्रमर लकड जैसे कठिण पदार्थ को छेद डलताहै परन्तु कोमल कमल पुष्पमें फसकर मरजाता है!! "न पेम रागो परमत्थी बन्धो" अर्थात् जगत में प्रेमराग (स्नेह फास) जैसा और बन्धन नहीं है, प्रेम राग रूप फास में फसे जीव अपना सुख दुःख, भले बुरेका विचार नहीं करते. स्वजन मित्र-का पोषण करने, अनेक आरंभ करते हैं, परन्तु उन की स्वार्थता को नहीं पहचानते हैं. देखीये! जब कु

अल्पज्ञ जीवोंकों लालच लगने से धर्म वृद्धि करेंगे, ऐसे अवसर प देवादिक की ऋद्धि की, भोगको. वैक्रयादि शक्ति, दीर्घ आयुष्य, निरोगता. आहार वगैरे का वरणन् करे. जो विशेष और निर्दोष धर्म करते हैं. उनको उत्तमोत्तम सुख मिलते हैं. और जो संसारके काम भोगमें लुब्ध रहते हैं पापरभं करते हैं वो नरक में जाके दुःख भोगवते हैं. क्षेत्र वेदना परमाधामीकी वेदना वगैरेका वरणन करे क्षणिक सुखकेलिये सागरोपमका दुःख. इत्यादि रीत समजाणे से वो पापको छोड धर्म मार्ग में उद्यमवंत होवे, (२)

बन्धनानि खलु संति बहूनि। प्रेमरज्जुकृत बन्धमन्यत् ॥
दारुभेद निपुणोऽपिपंडाघिःपंकज भवति दोषीननन्दः॥

अर्थ-सर्व बन्धनोंसे प्रेम बंधन अतिही कठिणहै, क्योंकि प्रत्यक्षही देखीये! भ्रमर लक्कड जैसे कठिण पदार्थ को छेद डलताहै परन्तु कोमल कमल पुष्पमें फसकर मरजाता है!! "न पेम रागो परमत्थी बन्धा" अर्थात् जगत में प्रेमराग (स्नेह फास) जैसा और बन्धन नहीं है, प्रेम राग रूप फास में फसे जीव अपना सुख दुःख, भले बुरेका विचार नहीं करते. स्वजन मित्रका पोषण करने, अनेक आरंभ करते हैं, परन्तु उन की स्वार्थता को नहीं पहचानते हैं. देखीये! जब कु

र्थ जानना. क्षण २ में नवे २ पुद्गल उत्पन्न होते हैं, और ज्युने विनाश होते हैं. सब पदार्थोंमें कुछ एक ही दम फरक नहीं पडता है परन्तु पडता २ ही पड ता है. और एकदम पानीके परपोटे जैसे विनाशको प्राप्त होते हैं. ऐसा पुद्गलोंका स्वभाव जाण, ममत्व निवारे. फिर मनुष्य जन्मादि सामुग्रही प्राप्त हुइ है, उसकी दुर्लभता बतावेकी ॐ चोरासी लक्ष जीवा यो-निमें अनंत परिभ्रमण करते महा पुण्योदय से सब भ-वभ्रमणके नाशका करने वाले=मनुष्य जन्म, शास्त्र श्र वण, शुद्ध श्रद्धा और धर्म स्पर्शनेकी सामग्री, महा मु-शकिलसे मिली है. इसे व्यर्थ गमा देगा उसे किंत्रा पश्चाताप करना पडेगा? और ऐसी वक्त जो काम क-रनेका है वो कर लिया तो कैसा आनंद पावेगा? इ-त्यादि घात से वैराग्य प्राप्त कर धर्ममें संलग्न करे. (२)

निच्चइतर धाउ सत्तय, तरुदश वेयलिंदिय सुछच्चेव सुरणिरय तिरियचउ रो, चउदश मणुवे सु सद सहस्सा.

अर्थ—७ लक्ष नित्य नीगोद, ७ लक्ष इतर निगोद, ७ लक्ष पृथ्वी. ७लक्ष पाणी. ७अग्नि. ७ लक्ष वायु. १०ल प्रत्येक वनास्पति. २लक्ष बेंद्री, २लक्ष तेंद्री, २लक्ष चौरिंद्री ४लक्ष नर्क. ४ लक्ष देव. ४ लक्ष तिर्यच पचेंद्री; और १४ लक्ष जात मनुष्य की! यह ८४ लक्ष सब जानी हैं.

को ही शिक्षा होती है परन्तु उसके कुटुम्ब (माल खाने वाले) को नहीं. ऐसा जाण कर्म बन्ध से डरे, धर्म करे सो सुखी होवे. इत्यादि समझने से उसका मोह कम हो वो धर्म मे संलग्न करे. (५) कुटुम्ब से ममत्व कमी हुये पीछे सर्व पुद्गलों परसे ममत्व कमी कराने बोध करे. कि यह जीव अनादि कालमे नशें में बेशुद्ध हो, अपना निज स्वरूप को भूल, पर पुद्‌गलों के विषय त्रि योग कि रमणता कररहे हैं, परन्तु यों नहीं विचार ते हे कि-'पराये अपने कब होंगे.' इस संसार व्यवहार में अब्बी जो कोइ एक वक्त दगा देदेवे तो मनुष्य दुसरी वक्त उसकी छांहमें भी खडा नहीं रहता है. और इन पुद्गलोंने अपने साथ अनंत वक्त दगा किया, कभी शुभ संयोग मिल हंसा दिया तो कभी अशुभ संयोग मिला रोवा दिया. कभी न वग्रयवेक तक उंचा चडाया और कभी सातमीं नरक ते तले निगोद में दबाया. कभी सब के मनको रमणीक बनाया, और कभी विष्टारूप बना अपने उपर सब को थुकाय. ऐसी २ अनंत विटंबना इन पुद्गलो नें अपनी अनंत वक्त करी है! जहां तक इन की संग नहीं छूटेगा वहां तक पुद्गलों का जो स्वभाव है कि पुद्-पूरे (मिले) और गल-गले (बिछडे) वो क-

कू पडी!' देते हैं, तब कितना परिवार भेला होता है, ऐसेही संकट पडे तब स्वजनकी सहायता लेने 'संकट पडी' देवो तो कितने स्वजन आयेंगे * अजी! आने तो दूर रहे, परंतु माल खाने वाले ही कहेंगे कि क्या लड्डु किये बिन नाक जाता था? इत्यादि कह उलटा अपमान करते हैं. ऐसे मतलबीयों को पाप, पाप का भाग अपने मिले, नरक तिर्यंचादि गति में किये, कर्म के फल इकेलेही भुक्तते हैं. पापका हिस्सा कोइ भी ले नहीं शक्ता यहांही देखीये! चोर

* एक मराठी कवीने कहा है:—

संपदा बहु आलीयावरी. सांगेर जमा होती त्या घरी.
गेलीयास ती कष्ट होउनी. बंधु सांगे जाती सोडुनी॥

दो भाइयों के आपस में बहुत प्रेम था. एकके नाक (बाले) का रोग हुवा दूसरेने जमीनादि और [illegible] की औषधि करी. वो मरके नरक में नेरीया हुवा और दूसरे भाइने रोग कष्ट सहा सो अकाम कष्ट से परमा धामी देव हुवा और अपने भाइके नेरीयको मारने लगा. और कहा की तेने [illegible] प्रेमसे दुःख हा बहुत जमीन केद का आरंभ किया उस के फल भोगव नेरी या बोला भाइ! मैंने तेरे लियेही पाप किया और तुंही मुझे मारता है. यह कैसा अन्याय? परमाधामी-हम न्याय अन्याय कुछ नहीं समजते हैं तेरे किये कर्म के फल तुझेही भोग पडेंगे [illegible] भोगवना

को ही शिक्षा होती है परन्तु उसके कुटुम्ब (माल खाने वाले) का नहीं. ऐसा जाण कर्म बन्ध से डरे, धर्म करे सो सुखी होवे. इत्यादि समझने से उसका मोह कम हो वो धर्म मे संलग्न करे. (५) कुटुम्ब से ममत्व कमी हुये पीछे सर्व पुद्गलों परसे ममत्व कमी कराने बोध करे. कि यह जीव अनादि कालमे नशों में बेशुद्ध हो, अपना निज स्वरूप को भूल, पर पुद्गलों के विषय त्रि योग कि रमणता कररहे हैं, परन्तु यों नहीं विचार ते हे कि-'पराये अपने कब होंगे.' इस संसार व्यवहार में अब्बी जो कोइ एक वक्त दगा देदेवे तो मनुष्य दुसरी वक्त उसकी छांहमें भी खडा नहीं रहता है. और इन पुद्गलोंने अपने साथ अनंत वक्त दगा किया, कभी शुभ संयोग मिल हंसा दिया तो कभी अशुभ संयोग मिला रोवा दिया. कभी नवग्रवेक तक उंचा चडाया और कभी सातमीं नरक ते तले निगोद में दबाया. कभी सब के मनको रमणीक बनाया, और कभी विष्टारूप बना अपने उपर सब को थुकाय. ऐसी २ अनंत विटंबना इन पुद्गलो नें अपनी अनंत वक्त करी है? जहां तक इन की संग नहीं छूटेगा वहां तक पुद्गलों का जो स्वभाव है कि पुद्-पूरे (मिले) और गल-गले (बिछडे) वो क-

कू पत्नी' देते हैं, तब कितना परिवार भेला होता है, ऐसेही संकट पड़े तब स्वजनकी सहायता लेने 'संकट पत्नी' देवो तो कितने स्वजन आयेंगे * अजी! आने तो दूर रहे, परंतु माल खाने वाले ही कहेंगे कि क्या लड्डु किये बिन नाक जाता था? इत्यादि कह उलटा अपमान करते हैं, ऐसे मतलबीयों को पोष, पाप का भाग अपने सिरले, नरक तिर्यंचादि गति में किये, कर्म के फल इकेलेही भुक्ते हैं. * पापका हिस्सा कोइ भी ले नहीं शक्ता यहांही देखीये! चो

---

* एक मराठी कवीने कहा हैः—

संपदा बहु आलीयावरी, सांगेर जमा होती त्या घरी.
गेलीयास ती कष्ट होउनी, बंधु सांयरे जाती सोडूनी।

दो भाइयों के आपस में बहुत प्रेम था- एकके मा क (नाक) का रोग हुवा. दूसरेने जमींकंद और हारीकाय की औषधि करी. वो मरके नरक में नेरीया हुवा और दूसरे भाइने रोग कष्ट सहा, सो अकाम कष्ट से परमा धार्मी देव हुवा; और अपने भाइके जीवको मार ने लगा. और कहा की मैंने तेरे प्रेममें लुब्ध हो, बहुत जर्मी कंद का आरंभ किया उस के फल भोगव! नेरीया बोला भाइ! मैंने तेरे लियेही पाप किया और तूंही मुझे मारता है, यह कैसा अन्याय! तब बोला-हम न्याय अन्याय कुछ नहीं समझते हैं, तेरे किये कर्म के फल तुझेही भोग बनी पड़ेंगे "करना सो भोगना."

संसारसे निवर्तनेका स्वरूप दर्शाते. संसार में रोकने वाले कर्म हैं. इन में से कितनेक इस भवके किये इसही भव में भोगते. जैसे-हिंसा से शूली फांसी, झूठसे-अपमान, कारागृह, चोरीसे-कैद. खोडा बेडी, दुष्ट-विचारसे फजीती व गर्मिदादि रोगसे सडके मरना. ममत्व से कुटुम्बादिकके निर्वाहका महाकष्ट सहना. वगैरे. २ और भी जगत्वासी जीव जितने कर्म करते हैं वह सब सुखके लिये करते हैं, परन्तु सुखी बहुत ही थोडा दिखते हैं. इससे प्रत्यक्ष समज होती हैकि जिस उपाय से सुख होना है वो नहीं जानते हैं; और दुःखका उपाय कर सुख चहाते हैं, सो कहां से होय, अग्निमें शीतलता कदापी न मिल सकेगी! तैसे जो धनसे सुख चहाते हैं तो धन में सुख कहां है? विचारीये * धन उत्पन्न करने (कमाने) शीत, ताप, क्षुधा, तृषा. वगैरे अनेक कष्ट सह संग्रह करते हैं, और ज्यों ज्यों लक्ष्मीकी अधिकता होती है त्यों त्यों

---

* श्लोक–वित्तं मार्जितानां दुःख मार्जितानां च रक्षणं।
आय दुःखं व्यय दुःखं किमर्थं दुःख साधनं॥१॥

अर्थ–धन कमाने दुःख. कमाये पीछे रक्षण करनेका दुःख, और चला जाय तो भी दुःख. फिर दुःखका साधन क्यों करते हो!

दापि नहीं छोडने के, फिर कौन मूर्ख बनकर उनकी संगत में लुब्ध हो अपनी फजीती करावे ?

थ्रियांदोलोला विपजस्साः प्रान्त विरसाः ।
विपद्गेहं महदपि धनं भूरिनिधनम् ॥
वृहच्छोको लोकः सतत सवला दुःख बंहला ।
स्तथाप्यस्मिन्घोर पथिवत ताहन्त कुधियः ॥

अर्थात्–लक्ष्मी दोलना (बिजली) जैसी चंचल है, विषय रसका परिणाम निरस है, शरीर, विपतका घर है, और स्त्रीयों नित्य दुःख देने वाली है, अरर! तोभी अज्ञानी संसार के घोर कर्म में लुब्ध हो रहे हैं ॥१॥

ऐसा जान, जो अपनी आत्मा को सुख चाहचो तो पुद्गलों का ममत्व त्यागो. और ज्ञान दर्शन चारित्र यह रत्न त्रय हैं, इनके स्वभाव में कभीभी फरक (फेर) नहीं पडता है, ऐसे स्थिर स्वभावी निजात्म गुण हैं उनको पहचान, अखंड प्रीति करो!! की वो अपने रूप चैतन्य को वना, अनंत अक्षय, अव्याबाध सुख का भुक्ता बनावे, इस बोधसे मोक्ष के तर्फ श्रोताओंका मन खेंचे.

४ निर्व्वेगणी–अर्थात् निर्वृत्तनी कथा संवेगणी में संसारका यथार्थ स्वरूप दर्शाया. और निर्व्वेगणी में

संसारसे निवर्तनेका स्वरूप दर्शावे. संसार में रोकने वाले कर्म हैं. इन में से कितनेक इस भवके किये इसही भव में भोगवे. जैसे-हिंसा से शूली फासी, झूठ से-अप्रतीत, कारागृह, चोरीसे-कैद, खोडा बेडी, व्य-भिचारसे फजीती व गर्मियादि रोगसे सडके मरना. ममत्व से कुटुम्बा दिकके निर्वाहाका महाकष्ट सहना. वगैरे. २ और भी जगत्वासी जीव जितने कर्म कर तेहैं वह सब सुखके लिये करते हैं. परन्तु सुखी बहुत ही थोडा दिखते हैं. इससे प्रत्यक्ष समज होती हैकि जिस उपाय से सुख होना है वो नहीं जानते हैं, और दुःखका उपाय कर सुख चहाते हैं, सो कहां से होय, अग्निसे शीतलता कदापी न मिल सकेगी! तैसे जो धनमे सुख चहाते हैं तो धन में सुख कहां है? विचारिये ७ धन उत्पन्न करते (कमाने) शीत, ताप, क्षुधा, तृषा. वगैरे अनेक कष्ट सह संग्रह करते हैं. और ज्यों ज्यों लक्ष्मीकी अधिकता होती है त्यों त्यों

---

* श्लोक—वित्तं मार्जितानां दुःख मार्जितानां च रक्षणं।
आय दुःखं व्यय दुःखं किमर्थं दुःख साधनं॥१॥

अर्थ-धन कमाने दुःख, कमाये पीछे रक्षण करनेका दुःख, और चला जायतो भी दुःख, फिर दुःखका साधन क्यों करते हो?

तृष्णाभी अधिक दढती जाती है, और "तृष्णाया परमं दुःखं" अर्थात्-तृष्णाही परम उत्कृष्ट दुःख है. अब अंतराय टूटनेसे द्रव्यकी बृद्धि हुइ तो उसके स्वरक्षण करनका दुःख, रखे मेरा धन राजा, चोर, अग्नि, पाणी, पृथ्वी, कुटुम्ब, देवतादिकसे नष्ट हो जाय, व्यय (खरच) होजाय. और रोकड में एक पाइ भी घट जाय तो शेठजी को चेन नहीं पडे, तो फिर पूर्ण नष्ट हुये तो उनके दुःखका कहनाही क्या? इत्यादि विचारसे धन दुःख काही साधन दिखता है. और कितनेक स्त्री से सुख मानते हैं, सो पतिव्रता स्त्री तो इस कालमें मिलनी मुशकिल है, और कुभार्जा तो अनेक दिखती है. उत्तम जातीयों मे भी पतिका अपमान करती है, पतिके सन्मुख अनाचार करती है, पतिको अपने हुकम में चलाती है, और इतने परभी पर घर मे भराकर पतिके नामको और कुलको बट्टा लगाती है. येही स्त्री से सुख समजना क्या? और कितनेक पुत्र मे सुख समजते हैं, पुत्र के लिये सम्यक्त्व रत्न में भी बट्टा लगाके, कुदेवोंके और देड चमारोंके पांव पडते हैं, धर्म भ्रष्ट होते हैं, पुत्र हुवातो भी इस कालमें सपूत निकलना मुशकिल है, परन्तु कपूत बहूत दिखते हैं, वृद्ध मात पिताको कष्ट

और लट्ठी के प्रहार करते हैं, घरपे धनके अपनी मुख्त्यारी का राजमें झगड कर फजीत करते हैं. पुत्रका सुख भी दिख रहा है. इत्यादि किस २ का बयान करूं! "संसार मी दुक्ख पउरेय" अर्थात् संसार दुःख करके प्रती पूर्ण भरा है. यह पापके फल बताये. (२) अब देखीये! पुण्य फल—जो किसीको दुःख नहीं देते हैं, वह हमेशा निश्चिंत आराम करते हैं, और वक्तपे सब मिल उनकी सहाय्यता करते हैं. झूट नहीं बोलतेहैं तो उनकी इज्जत पंचायती में तथा राज सभामें करते हैं. चोरी नहीं करते हैं वो बडे विश्वासु होते हैं, भंडारमें जातेभी उन्हे कोइ नहीं कटकाता है, ब्रह्मचारी हैं उनका तेज, बल, बुद्धि, निरोगता, सर्वाधिक होती है ममत्व तृष्णा रहित हैं वह सदा सुखी हैं, "संतोषं नंदनं वनं" अर्थात्—संतोष 'नंदन वन' समान सुखदाता है देखीये! साधुजी विना धन ही बडे २ महाराजोंके पूज्य हो, निश्चित ज्ञानमें अपनी आत्माको रमण करते सांधे अन्न वस्त्रसे निर्वाह करते, सदा आनंदमें रहते हैं, यह सुभ कृत्यका फल इसही भवमें प्रत्यक्ष दिखता है, (३) कितनेक कर्म ऐसे हैं कि इस भवमें किये आगे फलप्राप्त होतेहैं, यहां कितनेक जन पाप कर्म करतेभी सुखी दिखते हैं, वो सुख उनको पूर्वोपार्जित, शुभ

कृत्योंका फल समजना चाहीये, किये पापकृर्तव्यके फल आगे जरूर भोगवेंगे, यथा दृष्टान्त—अव्वल पक्वान भोगवे और फिर कांदा(प्याज) भोगवे तो उसे पहिले पक्वानकी डकार आयगी, और फिर कांदेकी. दूसरा—प्रत्यक्ष देखते हैं:—एक पालखीमें बैठा और चार उठाके चलते हैं. पालखी वाला उतर गादीपे लोटता है और उटाने वाले पांव दाब (चांप) ते हैं, यो पांचही मनुष्य एक से होकेभी प्रत्यक्ष पुण्य पापके फल अलग २ भोगवते दिखते हैं, और जो कर्म फिर जाय तो उठाने वाले पालखीमें बैठ जाय. और बैठने वाले पालखी उठाने लग जाय। यह प्रत्यक्ष पाप पुण्यकी विचित्र रचना परभव के इस भवमें भोगवते दृष्टी आते हैं, (२) ऐसेही कितनेक ऐसे कर्म हैं कि इस भवके शुभ कृत्य के फल आगेके जन्ममें भोगवेंगे, जैसे—कितनेक धर्मात्मा ओंको दुःखी देखते हैं तब मनमें शंका लाते हैं कि-जो धर्मसे सुख होता हो तो यह दुःखी क्यों? परंतु वैम लानेका कुछ कारण नहीं है, प्रत्यक्ष देखीये! अच्छी कोइ औषधि लेते हैं वो लेतेही एकदम गुण नहीं कर देती है. परन्तु मुद्दतपे, पथ्य पालन से गुण कर्ता होती है. जहां तक पहिलेका विकार क्षय नहीं होगा वहां तक पहिले औषधिका गुण देना मुशाकिल

है. जैसेही गत अशुभ कर्मका जोर कमी न होवे, वहांतक धर्म करणीका फल दर्शाना मुशकिल है, परंतु इतना तो निश्चय समजीये की "करणी तणा फल जाणजे, कदीय न निर्फल होय" जो जन्मतेही सुखी दृष्टि आति हैं. वो पूर्वोपार्जित पुण्यकाही फल है. ऐसेही यहांकी करणीभी आगे फल देगी. निर्वेदनी कथाका मुख्य हेतु यहहैकि "कडुाण कंम्मा न मोरक अत्थी." अर्थात् कृत कर्म के फल अवश्य मेव भोगवने पडते हैं; फिर इस जन्म में देवो या आगे के जन्म में. ऐसा समज कर्म बन्ध से बचने प्रयत्न हर वक्त करते रहेवे.

वांचना, पूछना, और परियट्टणा कर, जो ज्ञानें पक्का किया है, उसे इन चारही प्रकारकी धर्म कथा कर उसका लाभ दूसरे को देना चाहिये.

यह धर्म ध्यानके चार आलम्बन आधार कहे हैं, इन चारही काममें धर्म ध्यानी सदाको रमण कर इन्द्रियोंको विकार मार्गासे निवार. आत्म साधन अच्छी तरह कर. इच्छितार्थ सिद्ध कर सक्ते हैं.

चतुर्थप्रतिशाखा - 'धर्मध्यानस्यअनुप्रेक्षा'

सूत्र-धम्मस्सणं झाणस्स चत्तारिअणुप्पेहापण्णतातंजहा आणिच्चाणुप्पेहा, असरणाणुप्पेहा, एगत्ताणुप्पेहा, संसारणुप्पेहा.

कृत्योंका फल समजना चाहीये, किये पापकृर्तव्यके फळ आगे जरूर भोगवेंगे, यथा दृष्टान्त–अव्वल पकान भोगवे और फिर कांदा(प्याज) भोगवे, तो उसे पहिले पकानकी डकार आयगी, और फिर वांदेकी. दूसरा–प्रत्यक्ष देखते हैं:–एक पालखीमें बेठा और चार उठाके चलते हैं. पालखी वाला उतर गादीपे लोटता है और उठाने वाले पांव दाब (चांप) ते हैं, यो पांचही मनुष्य एक से होकेभी प्रत्यक्ष पुण्य पापके फल अलग २ भोगवते दिखते हैं, और जो कर्म फिर जाय तो उठाने वाले पालखीमें बेठ जाय. और बेठने वाले पालखी उठाने लग जाय! यह प्रत्यक्ष पाप पुण्यकी विचित्र रचना परभव के इस भवमे भोगवते दृष्टी आते हैं, (४) ऐसेही कितनेक ऐसे कर्म हैं कि इस भवके शुभ कृत्य के फल आगेके जन्ममें भोगवेंगे, जैसे–कितनेक धर्मात्मा ओंको दुःखी देखते हैं तब मनमें शंका लाते हैं कि-जो धर्मसे सुख होता हो तो यह दुःखी क्यों? परंतु वेम लानेका कुछ कारण नहीं है, प्रत्यक्ष देखीये! अभी कोइ औषधि लेते हैं वो लेतेही एकदम गुण नहीं कर देती है. परन्तु मुद्दतसे, पथ्य पालन से गुण कर्ता होती है. जहां तक पहिलेका विकार क्षय नहीं होगा वहां तक पहिले औषधिका गुण दर्शाना मुश्किल

गुण में व स्वरूपमें, शाश्वत (नित्य) हैं. परंतु इनकी पर्याय (अवस्था) स्वभाव विभाव रूप उत्पन्न होतीहैं, और विनाशपानी है इस लिये यह अनित्य है. इन छ ही द्रव्यों का गुण पर्याय का साधर्म्य पना कहते हैं: एक अगुरु लघुपर्याय तो छःही द्रव्यो का एकसा है. अरूपी गुण पुद्गल द्रव्यको छोड बाकीके पांच द्रव्यो मे एकसा है. अचेतन्य गुण जीवद्रव्य को छोड पांच द्रव्यों में एकसा है, सक्रिया गुण-निश्चय तो पुद्गलों में है, और व्यवहारसे जीवमें भी गिना जाता है. बाकी-के चार द्रव्य अक्रिय हैं.

और जो भिन्न गुणों की कथनी करें तो—चलनगुन-धर्मास्ति में बाकीके पांच द्रव्यों में नही. स्थिरगुण अधर्मास्तिमें पांचमें नही, विकाश गुण आकास्तिमें पांच में नहीं, वर्तना गुण कालमे पांच में नहीं, चेतन्य ता गुण जीवें में पांच में नहीं, और मिलन विछडन गुण पुद्गल में बाकीके पांच द्रव्यों में नही, ऐसे यह छही द्रव्य के जो मूल गुणहैं वो अपने २ स्वामी मेंही रहेते हैं, अन्य में नहीं- धर्म अधर्म और आकाश इन तीन द्रव्यों के तीनगुन और चार पर्याय एक से हैं और इन तीन गुनोंसे काल द्रव्य भी सधर्म्य ता रख ता है धर्म अधर्म असंख्यात प्रदेशी और लोक व्यापी

अर्थात्-धर्म ध्यानीकी चार अनुप्रेक्षा (विचार) धर्म ध्यान ध्याता महात्मा चार प्रकार उपयोग युक्त विचार करते हैं भगवनने फरमाया है उसी मुजब यांहां कहते हैं. अनित्यानुप्रेक्षा, २ असरणाणुप्रेक्षा. ३ एकत्वानुप्रेक्षा, और ४ संसारानुप्रेक्षा.

प्रथम पत्र-"अनित्यानुप्रेक्षा"

धर्मास्तिकायादि ॐ पट [illegible] के, द्रव्य दृष्टिस अवलोकन करने से छहों [illegible] अपने २

नाम	धर्मास्ति	अधर्मास्ति	आकाशास्ति	कालास्ति	जीवास्ति	पुद्गलास्ति
द्रव्य मे	एक असंख्य प्रदेशी	एक असंख्य प्रदेशी	एक असंख्य प्रदेशी	अनंत असंख्या प्रदेशी	अनंत असंख्य प्रदेशी	अनंत अनंत प्रदेशी
क्षेत्रमे	लोक प्रमाणे	लोक प्रमाणे	लोका लोक प्रमाणे	अढाइ द्विप प्र	लोक प्रमाणे	लोक प्रमाणे
कालमे	अनादि अनंत	अनादि अनंत	अनादि अनंत	अनादि अनंत	अनादि अनंत	अनादि अनंत
भाव मे	अरूपी	अरूपी	अरूपी	अरूपी	अरूपी	रूपी
गुणमे	अचैतन्य, अक्रिय, गति सहाय	अचैतन्य, अक्रिय, स्थिति सहाय	अचैतन्य, अक्रिय, अवगाहदान	अचैतन्य, अक्रिय वर्तमान	अनंत ज्ञान दर्शन चारित्र, वीर्य	सक्रीय पूर्ण गलन

है आकाश अनंत प्रदेशी और लोका लोक व्यापी है-
काल द्रव्य उप चारसे अढाइ द्विप व्यापीही गिना जा-
ताहै क्यों कि बाह्य काल का आधार चंद्रसूर्य की ग-
ती परही रहा है, जीव द्रव्य अ . . हैं, एकेक जीवके
असंख्यात २ प्रदेश हैं एक जीव शरीर मात्र व्यापक
है, और सवजीव लोक व्यापी है. और पुद्गल द्रव्य के
परमाणु अनंत हैं, प्रत्येक प्रमाणु वर्ण गंध रस स्पर्श
युक्त हैं.

छःही द्रव्यों निश्चय नयसे अपने २ स्वरूपमें परिण
में हुवेही हैं. हरेक द्रव्यका परिणमन गुण अलग २
है. क्योंकि जो . . . . . . भिन्न २ न कहाय.

व्यवहार से जीवऔर पुद्गल दोनों परिणामी हैं, राग
द्वेष युक्त जो जीव है. उसका पुद्गल के साथ परिणम
ने का स्वभाव है सो अशुद्ध परणती से निपजताहैं.
धर्म अधर्म . . . और काल इन चारों का परिण-
मन निज गुणमें होने से शुद्ध परिणमन कहा जाता
है, और जीव का परिणमन पुद्गल के संयोग से होता
है सो अशुद्ध परिणमन कहा जाता है, क्योंकि संसा-
री जीव अनादि से अशुद्ध परणमीसे . . . . अष्ट
सात आठ कर्मोके योगः करण का अशुद्ध वनेहैं.
पुद्गल द्रव्य के दो प्रमाणु भले होनेसे द्वणुक, तीन

देख चेनो! जैसे तुमारी गत कालकी सब घटिकाओं गइ और तुमारे शरीर व संपती का रूपांतर किया. रम्या को अरम्य और अरम्य को रम्य बनाया, तैसे ही आगे की रही हुइ घटिका पूर्ण होनें से क्षण मात्र में शरीर संपत्ति का क्षय होजायगा! फिर तुम कोट्यान उपाय कर गइ घटि को बुलावेंगे तो वो नहीं आने की, और पस्तावेंगे तो भी कुछ नहीं होने का. ऐसा जाण हे हितार्थीयों!

स्व कार्य मद्य कुर्वीत, पूर्वा ह्नेचा पराह्नि कम् ॥
नहीं प्राति क्षेत्त मृत्य, कृतम स्य नवा कृतम् ॥

अर्थ—काल का आज और आज का अभि धर्म कार्य करना हो सो करलो, क्यों कि काल को विचार नहीं है कि इस का काम अधुराहै!

जो बाकी आयुष्य रहा हैं उसे व्यर्थ मत गमावो! यह चिंतामणी रत्न तुल्य घटि काकुकर्म मेंव्यय (खर्च) मत करो! इस क्षणक संसार की क्षणिक

---

* गाथा—जाजा वच्चइ रयणी, णसा पडि णिवत्तइ,
अहम्मं कुण माणस्स, अफला जांति राइ ओ ॥ २४ ॥

उत्तरा ध्येनजी, अ.१४

अर्थ—जो जो दिन रात्रि जाते हैं वो पीछे नहीं आते हैं, अधर्म के निष्फल जाते हैं. (और इसके आगेकी गाथामें कहा है.) धर्मीके दिन रात सफल जाते हैं.

स्थिति को प्राप्त हो रही क्षण में सुधारा करने का हो सो कर घडी, को लेखे लगावो!

और जो तुम शरीरको नित्य मानते हो वो तो यह भी नित्य नहीं है, क्षण २ में इसके स्वभावमें, रूपादि गुणोंमें फरक पडना हुवा परोक्ष और प्रत्यक्ष भाष होता है, देखीये! अव्वल जब जीव मनुष्य पर्याय रूप गर्भमें आ उत्पन्न होता है तब माताका रुद्र, और पिता का शुक्रका आहार कर, मांड (चांवलोंके धोवण) जैसा शरीरको प्राप्त होता है. फिर काल स्वभावसे फरक पडते २ उन पुद्गलोंमे कठिणता प्राप्त होते २ सेढा (नाकका मेल) वोर, अम्बा, रूपवन, अंगोपांग के अंकूर फुट, इन्द्रियों के छिद्र पड, बाला दिक का आगम हो, संपुर्ण शरीरके अवयववों को प्राप्त होता है, जन्म समय पुण्योंदयसे सिधाही बाहिर पड़े, अज्ञान असमर्थ अवस्थाके पराधीनता के अनेक कष्ट सह, ज्ञानावस्थामें विद्याभ्यासमें; तरुणपणा प्राप्त होते-विषय पोषणकी सामग्रीयों का संयोग मिलाने स्त्रीयोंके प्यारे बनने कुटुंबके भरण पोषण करने, *

---

* कितनेक गर्भमे आडे आके कटके निकलते हैं.

• पंचेद्रीमें नित्य घातक है. हृद रहा जैसा रहा का दुः पाप के काज पच नित्य पापमें लाग रहा जैसा हांडी का पर्व विज्ञान कछु नहीं जानत. पापही पाप मांहे मन लग दिन को बात दिगारन है नहीं. नाच रहा जैसा होरका

वृद्धावस्था प्राप्त होते-काया नगरकी खराबी होने ल- गी, शिर थर्राया, कर्ण कम सुने, चक्षुका तेज घटा, प्राण झरने लगा, दंतावली नष्ट होनेसे मुख उजाड हुवा, जिह्वा लथडाने लगी, स्वर मंद पडा, जठराग्नि मंद होनेसे, पचन शक्ति घटी, जिससे अनेक व्याधि- यों उठने लगी, कम्मर झुकी, गोडे थके, पांव धूजने लगे, इत्यादि शरीर की शक्ति हीन निकम्मी होनेसे जिनको प्यारे लगतेथे उनको ही खारे (खराब) लगने लगे. और एक दिन सर्वायुष्य क्षय होने से सब सज्जन मिलके उस ही शरीर को चितामें जला भस्म करदीया, यह इस शरीरकी दशा क्षण २ में पलटती हुइ दिखती हैं. यह शरीर नित्य-सदा अभी- नव रूप धारण कर्ता है. समय २ में पलटता है, बालवस्थाको तरुणपण गिलता है, तरुण पणेको वृद्ध- पणा और वृद्धपणेका काल भक्षण कर जाता है. यह मच्छ गळ.गल लगी है. परन्तु ऐसा नहीं समजीये

* छपय-मनुष्य तणो अवतार. वर्ष चाली से मीठो॥
फ. टयो होय पचास साठे कोय पड्यो ॥
तित्तर सगो न कोय. अस्सी ये नांहि सगाइ ॥
नव्वे नाग्गो होय हंसे सब लोक लुगाइ ॥
वर्ष आया जब सेंकडा तन मन हुवा खोकरा ॥
पतिव्रता पतिको कहे अब मरतो क्युंरे डोकरा॥१॥

कि बालका तरुण और तरुणका वृद्ध जरूर होगा. यह भरोसा नहीं है. कालको बाल युवा वृद्ध का कुछ भी विचार नहीं है. कालरूप घट्टीको तो हमेशा चन्द्र सूर्य फिरा रहे हैं, जैसे घट्टी के दो पट होते हैं तैसे कालरूप घट्टीका भूत कालरूप तो स्थिर पट है, और भविष्य कालरूप चल पट है, आयुष्य रूप खीले से अडके जो रहे हैं वो बचे हैं, 'खूटा छूटा के आटा हुवा' अपने देखते बहुतेका हो गया, और बाकी रहे उनका भी एक दिन होनेवाला; ऐसी इस शरीर की दशा देखते जो इस शरीरको नित्य जाण मोह में गर्क हो रहे हैं, यह बडा आश्चर्य है.

इस शरीरका नाम उदारिक है. इसके दो अर्थ करते हैं:-(१) उदार, प्रधान, और (२) उदारा मांग के लिया, जैसे पंचायती जगा, क्रिया वर करने के लिये, पंचोंसे मांगके थोडे कालके लिये उदारी लेते हैं; और उसे सिणगार के उसमे जो क्रियावर करनेका है वो कर लेते हैं. तो उनको वो जगा छोडती वक्त पश्चाताप नहीं होता है और जो क्रियावर हुये पहिले मुदत पूरी हुये पंचोंके सिपाइ मकान खाली कराते हैं तब रोना पडता है कि—कुछ नहीं किया, ऐसेही यह शरीर

(पंच*भूत वादी के कथनानुसार) पृथव्यादी पंच भूतोंका बना हुवा शरीर रूप बाडा कियावर [अच्छी क्रिया धर्म करणी) करने कों मिला. जो धर्म करणी कर लेते हैं उनको मरती वक्त पश्चाताप नहीं होता है. और करणी नहीं करी है उनने शरीरको काल छोडावेगा, तब पश्चातप साथ छोडनाही पडेगा. ऐसा जाण इस क्षण भंगुर शरीरसे धर्म करणी बने जितनी शीघ्रही करलीजीये, की इसे छोडती वक्त पश्चाताप नहीं करना पडे.

जैसी शरीरकी अनित्यता है, वैसीही कुटुंबकी भी समझीये, क्यों कि मात पितादि स्वजन भी, उदारिकही शरीरके धरण हार हैं, अपेने पहिले आये-माता, पिता, काका, मामा वगैरे, अपने बरोबर आये-भाइ, बेन, स्त्री मित्र, वगैरे. अपने पीछे आये-पुत्र, पौत्रादिक और भी जक्त वासी जन, देखते२ आयुष्य खुट चले गये हैं, चल रहे हैं, और रहे सो एक दिन सब चले जायँगे, "जो जन्मा हैं सो अवश्य मरेगा"

* १ आकाशसे-काम, क्रोध, शोक, मोह: भय, २ वायसे-धावन, वलण, प्रसरण, आकुंचन, निरोधन, ३ अग्निसे-क्षुधा, तृषा, आलस, निद्रा, मैथुन, ४ पाणीसे-लाल, मूत्र, रक्त, मज्जा, रेत, ५ पृथवीसे-हड्डी, नाखु मांस त्वचा, रोम. यों ५ भूतसे २५ तत्व हुवे कहते हैं.

इस लिये कुटुम्ब परिवार को भी अनित्य समझीये.

जैसा कुटुंब अनित्य है. तैसे धनभी अनित्य है, इसे 'दोलत' कहते हैं, अर्थात् आना और जाना ऐसी दोलत (आदत) इस में है, तथा धारकको क्षण में हसाना और क्षण में रूलाना, ऐसी दो आदते हैं. यह किसीके पास स्थिर नहीं रहती है* "जर जोरु और जमीन, किनकी न हुइ यह तीन" जरमन कि तीजोरीयों में, खुब ऊंडे खड्डे में, या नग्गी समशेरों के पहरे में भी खूब बंदो बस्तके साथ रक्खी, तो भी नहीं रहनेकी, पुण्य खुटेसे हाथ से रक्खा हुवा धन रूपांत्र पाके कंकर कायले पाणी या साँप विच्छु जैसा दिखने लगता है, ऐसी लक्ष्मी अनित्य है.

तैसे घर भी अनित्य है:—लक्कड मट्टीके संयोग से घना उसे अपना मान के बैठे हैं, येही जीर्ण होने से बिखर जायगा केइ घर या ग्रामादी नवीन वसते हैं, केइ उजड होते हैं, विनश ते हैं यह प्रत्यक्ष अनित्यता दिखाती है. ऐसेही उपभोग (एक वक्त भोगवने

* पिताने खुशी में आकर पुत्री से कहाकि-'लक्ष्मी' इधर आ., तब पुत्री गुस्से में आकर बोलीकि-इस नामसे मुझे कदापि नहीं बुलाइ ये. क्योंकि मै एक दिनमें अनेक मालक (पति) बनाने वाली लक्ष्मी जैसी नीच नहीं हूं!

में आवे अन्न पुष्पादि) और परिभोग (वारंवार भो गवने में आवे वस्त्र भूषणादि) यह भी अनित्य हैं— क्षणिकक है. सर्व वस्तु उत्पन्न हुइ के उनकी पर्याय में फरक पडना सुरू होता है; विनाश कालतक फरक पडते २ उसका स्वरूप ही और हो जाता है. यह अनित्यता की प्रत्यक्षता है.

प्रत्यक्ष देखते हैं कि,—जीव आता है तब बाह्य रूप में कुछभी साथ लेके नहीं आता है, उत्पन्न हुये पीछेही शरीर संपत्ति आदि संजोग मिलता है, और फिर वोभी 'पंच समवाय*' प्रमाणें हीन होतेर सब यहां हीज प्रलय पाता है, या रह जाता है, और आप आया था वैसाही, इकेला * जीव आगे को च

* काल-स्वभाव भवितव्य-कर्म और अद्यम, इन ५ समवाय के संयोग से सर्व कार्य होते हैं.

* संपनही गडी छांडी। सुंदरही मांडी छांडी।
रसोइ चडी छांडी। स्वप्न सो होगयो॥
ठाडे दास दासी छांडे। घोडे घांस खाते छांडे।
यार आस पास छांडे। अपने मते गयो॥
बुडे मात पिता छांडे। भाइ विल विलाट छांडे।
बेटे अरडाट छांडे। सब को दुःख देगयो॥
देवी दास अंत समय। एकहू न आयो साथ।
देखो भैया अपनो कियोसो साथ लेगयो॥१॥

पाके रौरव नरक में गिरता है. तब असाह्य दुःख से घबराकर रोता है.

भाइ! अग्नि स्नान से शीतलता, और विष भक्षणा से अमरत्व चहाते हैं, तैसेही आत्म घाती. जन पुद्गल के संग से सुख चहाते हैं. इन अज्ञको के से समजावे!

और भी अनित्यताके दर्शानेके लिये देखीये—
(१) हमेशा स्थानकी वृक्षोंपे पक्षियोंका समोह आ जमता है. जिस डालपे आप बैठे, वहां दुसरे पक्षि को बैठने नहीं देते हैं, क्यों कि उस वृक्षको अपना मान लिया है परन्तु. वोही पक्षियों सूर्यका प्रकाश होते दशोदिश उड जाते है तब उस झाडका पत्ता भी उन्ह के साथ नहीं जाता है. तैसे ही देह वृक्षपे जीव पक्षियों चार गतियों में से आ बैठे हैं. कालरूप सूर्योदय होते सब भग जायेंगे. देह यहांइ रह जायगा

(२) बाजीगर (इन्द्र जालीया) की डुमडुमीका शब्द सुणतेही चहुदिशा से मनुष्य वृंद उलट आते हैं, बाजी समेटी के सब दशोदिश भग जाते हैं. और इकेला बाजीगर दंड भंड ले आप ने रस्ते लगता है. तैसेही जीव बाजीगरको, पुन्य सामग्री देखने कुटुम्बा दि मिले हैं. पुन्य खुटे सब रस्ते लगेंगे. और जीव

इकेला चला जायगा.

(३) मेला-यात्रादि में चौदिशा में मनुष्यों का समागम होता है वांही सनयानंतर शून्य अरण्य (जंगल) रह जाता है.

(४) लग्नादि उत्सवके प्रसंग में, स्वजानादि समुह जमता है; और उत्सव निवृतते घर धणीही रह जाते हैं.

(५) संध्या [श्याम] की वक्त बहुधा आकाश में संध्याराग (चिचित्र रंग) का दर्शाव होता है, और क्षणेक में अन्धकार फैलजाता है.

इत्यादि अनित्यत्ता दर्शानेके अनेक बनाव हमेशा बनते हैं. और देखते हैं, परं मोहकी धुन्धी में मुग्ध बने कौन विचार करें.

एक समय राज्यरूढका महोत्सव की धामधूम लग्नका उत्सहा दृष्टी पडता है; और उसी स्थल उस ही समय पुद्गलोंका रूपान्तर होनेसे मृत्युआदि निपजनेसे हाहाकार मच जाता है! स्मशान गमनकी तैयारी होती को क्या नहीं देखते हैं? एसे २ अनित्यता बतानेके जगत् में थोडे साधन हैं क्या?

ज्यादा क्या कहुं, जिन २ परमाणुओ पदार्थों कर के शरीरकी रचना हुइ, और पोषणता होती है,

वेहीं प्रमाणुं गये कालमें तेरे शत्रु बन तेरे धारण किये हुये अनंत शरीरोंका नाश किया था, अब तूं उनके साथ अत्यंत प्रेम करता है. और वक्त पडे येही तेरे शरीर के घातक बन जायँगे, मतलबकी पुद्गल संयोग सेहीं सम्बन्ध जुडता है. और संयोग सेही बिखरता है.

श्री भगवतीजी सूत्र में 'अविचय' मरण कहा है, की जो जगत् के सर्व पदार्थका आयुष्य क्षण २ में क्षय करता है, जैसे अंजली(हाथके खोवे)में लिया हुवा पाणी बूंद २ कर कमी होता है. तैसेही सब पदार्थोंका आयुष्य घटता है. *

और भी जैसे १. स्वप्नकी सायबी, २ मेघपटलों (बादलों) का समोह, ३ विद्युत (बिजली) का चमत्कार, ४. इन्द्र धनुष्य, ५. मायवी सायबी, वगैरे

हरीगीत छन्दः

* बहु पुण्य केरा पुंज थी शुभदेह मानव नोमल्यों ॥
तो ए अर भव चक्र नो आंटो नही एके टल्यो॥
सुख प्राप्त करतां सुख टळेछे. नेक एलक्षे लहो ॥
"क्षिण२ निरंतर भाव मरणें" का अहो राची रहो॥१

कवी रायचन्द्र.

अनेक पदार्थ क्षणिकता के सूचक हैं उनको आँखोसे देख हृदय में विचार सोच समज मानू ये मेरे सद्बो.ध कर्ता गुरुही हैं. और समजा रहे हैं कि हे चैतन्य अब चेत! चेत!! मोह धुन्धी उडा, अज्ञानका पडदा दूर कर, और अंतःरिक ज्ञान लक्ष लग के देखकि- कपिल केवली ने फरमाया है "अध्रुव असासयं मी, संसारंमि दुख पओरए" अर्थात् यह अध्रुव [अनिश्चल] अशाश्वत और दुःखसे पूर्ण भरा हुवा संसार है, इस में रहे जो ममत्व मूरछा करते हैं, बोही दुःखी होते हैं, जब जीवोंके देखते पदार्थों का नाश होता है तो जीवकोही पश्चाताप होता है कि हाय मेरे प्राण प्यारी वस्तु कहां गइ. और पदार्थ छोडके जीव जाता है तबही बोही रोता है कि हाय इस सायबी को छोड अब में चला. न की वो पदार्थ रोयंगे कि मेरे मालक कहां गये. क्यों कि उनके मालक बणने वाले अनेक बेठ हैं.

ऐसा समज हे सुखार्थी धमार्थी जीवो! इस अनित्यानुप्रेक्षाके सत्य विचार मे अनित्य अशाश्वत वस्तुऐं से ममत्व त्याग, निज रम गुण ज्ञानादी श्रीरत्न नित्य शाश्वत अक्षय अनंत उन में रमण कर सुखी बनो.

द्वितीय पत्र-"असरणाणु प्रेक्षा"

स्याद्वाद मतमें हरेक तर्फ अनेकांत दृष्टीसे देखा जाताहै, निश्चयमें तो कोइ किसीकों सरण का दाता आश्रय का देनें वाला नहीं है, क्योंकि सर्व द्रव्य अपनी ९ शक्ति के बलसे ही टिक रहे हैं इस सबबसे कोइ किसीका कर्ता हर्ता नहीं है, व्यवहार द्रष्टीसे फक्त निमित माल यह जीव दुःख कष्ट उत्पन्न हुये अन्यके शरण की अभिलाषा करते हैं; मेरी वस्तुका नुकशान न होय, या मेरेपर किसी प्रकार का दुःख आके नहीपडे, इस लिये कोइ तारण-शरण आश्रय कादाता होय उनका शरण ग्रहण करुं, की जिससे मुझे किसी प्रकार का दुःख नही होय. इत्यादि विचार से अन्मन्य अनेक का शरण ग्रहण करता है, परन्तु यों नहीं विचारता है कि जिस दुःख से बचने में आश्रय-शरण ग्रहण करता हुं वो खुदही इस दुख से बचे हैं क्या ? क्यों कि जो आप दुःखसे बचे होगे तो वो दुसेरकोभी बचा सकेंगे, और जो आपही की रक्षा नहीं कर सके तो अन्यकी क्या करेंगे, फिर व्यर्थ उनके शरण ग्रहण करनेंमें क्या सार है, अब विचारिये ! अपन जिन २ का शरण ग्रहण कर ते हैं, वो योग्य है या अयोग्य,

अनेक पदार्थ क्षणिकता के सूचक हैं उनको आँखोंसे देख हृदय में विचार सोच समज मानू वे मेरे सद्बो-ध कर्ता गुरुही हैं. और समजा रहे हैं कि हे चैतन्य अब चेत! चेत!! मोह धुन्धी उडा, अज्ञानका पडदा दूर कर, और अंतःरिक ज्ञान लक्ष लगके देखकि- कपिल केवली ने फरमाया है "अधुव असासयं मी, संसारंमि दुख पओरए" अर्थात् यह अध्रुव [अनि-त्य] अशाश्वत और दुःखसे पूर्ण भरा हुवा संसार है, इस में रह जो ममत्व मूर्छा करते हैं, वोही दुः-खी होते हैं, जब जीवोंके देखते पदार्थों का नाश होता है तो जीवकोंही पश्चाताप होता है कि हाय मेरे प्राण प्यारी वस्तु कहां गइ और पदार्थ छोडके जीव जाता है तबही वोही रोता है कि हाय इस मायकी को छोड अब मैं चला. न की यो पदार्थ रोयेंगे कि मेरे मालक कहा गये. क्यों कि उनके मालक बनने वाले अनेक बेठे हैं.

ऐसा समज हे मुमुक्षु धर्मार्थी जीवों! इस अनित्यानुप्रेक्षाके सत्य विचार से अनित्य अशाश्वत वस्तुओं से ममत्व त्यागो. निज आत्म गुण ज्ञानादी और रत्न नित्य शाश्वत सदाय अनन्त उन ही में रमण कर सुखी बनो.

द्वितीय पत्र-"असरणाणु प्रेक्षा"

स्याद्वाद मतमें हरेक तर्फ अनेकांत दृष्टीसे देखा जाताहै, निश्चयमें तो कोइ किसीकों सरण का दाता आश्रय का देनें वाला नहीं है, क्योंकि सर्व द्रव्य अपनी २ शक्ति के बलसे ही टिक रहे हैं इस सबबसे कोइ किसीका कर्ता हर्ता नहीं है, व्यवहार दृष्टांसे फक्त निमित मात्र यह जीव दुःख कष्ट उत्पन्न हुये अन्यके शरण की अभिलाषा करते हैं; मेरी वस्तुका नुकशान न होय. या मेरेपर किसी प्रकार का दुःख आके नहींपडे, इस लिये कोइ तारण-शरण आश्रय कादाता होय उनका शरण ग्रहण करुं, की जिससे मुझे किसी प्रकार का दुःख नहीं होय. इत्यादि विचार से अन्नन्य अनेक का शरण ग्रहण करता है, परन्तु यों नहीं विचारता है कि जिस दुःख से बचने में आश्रय-शरण ग्रहण करता हुं वो खुदहीं इस दुख से बचे हैं क्या ? क्यों कि जो आप दुःखसे बचे होगे तो वो दुसरेकोभी बचा सकेंगे, और जो आपही की रक्षा नहीं कर सके तो अन्यकी क्या करेंगे, फिर व्यर्थ उनके शरण ग्रहण करनेंमें क्या सार है, अब विचारिये ! अपन जिन २ का शरण ग्रहण कर ते हैं, वो योग्य हैं या अयोग्य,

अनेक पदार्थ क्षणिकता के सूचक हैं उनको आँखोंसे देख हृदय में विचार सोच समज मानृ ये मेरे सद्बो. ध कर्ता गुरुही हैं. और समजा रहे हैं कि है चैतन्य अब चेत! चेत!! मोह धुन्धी उडा, अज्ञानका पडदा दूर कर, और अंतःरिक ज्ञान लक्ष लग.के देखकि-कपिल केवली ने फरमाया है "अधुव असासयं मी, संसारंमि दुख पओरए" अर्थात् यह अध्रुव [अनिश्चल] अशाश्वत और दुःखसे पूर्ण भरा हुवा संसार है, इस में रहे जो ममत्व मूरछा करते हैं, वोही दुःखी होते हैं, जब जीवोंके देखते पदार्थों का नाश होता है तो जीवकोही पश्चात्ताप होता है कि हाय मेरे प्राण प्यारी वस्तु कहां गइ. और पदार्थ छोडके जीव जाता है तबही वोही रोता है कि हाय इस सायबी को छोड अब में चला. न की वो पदार्थ रोयंगे कि मेरे मालक कहां गये. क्यों कि उनके मालक बणने वाले अनेक बेठे हैं.

ऐसा समज हे सुखार्थी धमार्थी जीवो! इस अनित्यानुप्रेक्षाके सत्य विचार मे अनित्य अशाश्वत वस्तुयें से ममत्व त्याग, निज रस गुण ज्ञानादी श्री रत्न नित्य शाश्वत अक्षय अनंत उन में रमण कर सुखी बनो.

द्वितीय पत्र-"असरणाणु प्रेक्षा"

स्याद्वाद मतमें हरेक तर्फ अनेकांत दृष्टीसे देखा जाताहै, निश्चयमें तो कोइ किसीको सरण का दाता आश्रय का देनें वाला नहीं है, क्योंकि सर्व द्रव्य अपनी २ शक्ति के बलसे ही टिक रहे हैं इस सबबसे कोइ किसीका कर्ता हर्ता नहीं है, व्यवहार दृष्टीसे फक्त निमित मात्र यह जीव दुःख कष्ट उत्पन्न हुये अन्यके शरण की अभिलाषा करते हैं; मेरी वस्तुका नुकशान न होय, या मेरेपर किसी प्रकार का दुःख आके नहींपडे, इस लिये कोइ तारण-शरण आश्रय कादाता होय उनका शरण ग्रहण करुं, की जिससे मुझे किसी प्रकार का दुःख नहीं होय. इत्यादि विचार से अन्मन्य अनेक का शरण ग्रहण करता है, परन्तु यों नहीं विचारता है कि जिस दुःख से बचने में आश्रय-शरण ग्रहण करता हुं वो खुदही इस दुख से बचे हैं क्या? क्यों कि जो आप दुःखसे बचे होंगे तो वो दुसरेकोभी बचा सकेंगे, और जो आपही की रक्षा नहीं कर सके तो अन्यकी क्या करेंगे. फिर व्यर्थ उनके शरण ग्रहण करनेंमें क्या सार है, अब विचारिये! अपन जिन २ का शरण ग्रहण कर ते हैं, वो योग्य है या अयोग्य,

अनेक पदार्थ क्षणिकता के सूचक हैं उनको आंखोंमें देख हृदय में विचार सोच समज मानू ये मेरे सहाय कर्ता गुरुही हैं. और समजा रहे हैं कि हे चैतन्य अब चेत! चेत!! मोह धुन्धी उडा, अज्ञानका पडदा दूर कर, और अंतःरिक ज्ञान लक्ष लगाके देखकि-कपिल केवली ने फरमाया है "अधुव असासयं मी संसारंमि दुःख पओरए" अर्थात् यह अधुव [अनिश्चल] अशाश्वत और दुःखसे पूर्ण भरा हुवा संसार है, इस में रह जो ममत्व मूरछा करते हैं, वोही दुःखी होते हैं, जब जीवोंके देखते पदार्थो का नाश होता है तो जीवकोही पश्चाताप होता है कि हाय मेरे प्राण प्यारी वस्तु कहां गइ और पदार्थ छोडके जीव जाता है तबही वोही रोता है कि हाय इस मालकी को छोड अब मैं चला. न की वो पदार्थ रोयंगे कि मेरे मालक कहां गये. क्यों कि उनके मालक बनने वाले अनेक बैठ हैं.

ऐसा समज हे सुखार्थी धर्मार्थी जीवो! इस अनित्यानुप्रेक्षाके सत्य विचार से अनित्य अशाश्वत वस्तुओं से ममत्व त्याग. निज स्व गुण ज्ञानादी को स्व नित्य शाश्वत अक्षय अनंत उन में रमण कर मुखी बनो.

द्वितीय पत्र-"असरणाणु प्रेक्षा"

स्याद्वाद मतमें हरेक तर्फ अनेकांत दृष्टीसे देखा जाताहे, निश्चयमें तो कोइ किसीको सरण का दाता आ श्रय का देनें वाला नहीं हे, क्योंकि सर्व द्रव्य अपनी २ शक्ति के वलसे ही टिक रहे हैं इस सववसे कोइ कि सीका कर्ता हर्ता नहीं है, व्यवहार द्रष्टीसे फक्त निमित मात्र यह जीव दुःख कष्ट उत्पन्न हुये अन्यके शरण की अभिलाषा करते हें; मेरी वस्तुका नुकशान न होय, या मेरेपर किसी प्रकार का दुःख आके नहीपडे, इस लिये कोइ तारण-शरण आश्रय कादाता होय उनका शरण ग्रहण करुं, की जिससे मुझे किसी प्रकार का दुःख नही होय. इत्यादि विचार से अन्नन्य अनेक का शरण ग्रहण करता है, परन्तु यों नहीं विचारता है कि जिस दुःख से बचने में आश्रय-शरण ग्रहण करता हुं वो खुदही इस दुख से बचे हें क्या? क्यों कि जो आप दुःखसे बचे होंगे तो वो दुसरेकोभी बचा सकेंगे, और जो आपही की रक्षा नहीं कर सके तो अन्यकी क्या करेंगे, फिर व्यर्थ उनके शरण ग्रहण करनेंमें क्या सार है, अब विचारिये! अपन जिन २ का शरण ग्रहण कर ते हैं, वो योग्य है या अयोग्य,

ऐसा पृथक २ (अलग २) विचारिये.

हे जीव! तुं इस शरीर करके तेरा रक्षण चहाता है, तो देख! यह शरीर पुद्गल पिंड क्षण २ में नष्ट होता है. आधि व्याधि उपाधि कर भरा हुवा है, य र म्बार रोगो कर ग्रासित, जरा कर पिडित, और मृत्युका भक्षक बनता है. यह अपनी रक्षा नहीं कर सक्ता है तो तेरी क्या करेगा. इस लिये शरीर को तरण शरण मानना व्यर्थ हैं, जो तूं तेरे परिवार और मित्रको शरण दाता ममजता होय तो भी तेरी भूल हैं, निर्मोह बुद्धिसे देख. जो तूं द्रव्योपार्जनमें कुशल सबकी इच्छा प्रमाणें चलने वाला हुवा तो माता पिता कहेंगे हमारा पुत्र रत्न हैं, भाइ कहेगा मेरी बांहां है, बहन कहेगी—मेरा वीरा हीरा है. स्त्री कहेगी मेरे भरतार करतार (परमेश्वर) हैं. इत्यादि सर्व कुटुम्ब हुकम हाजीर रहे, जी ! जी ! करते हैं. और जो मुर्ख बेकमाबू होय तो; मात पिता कहे—पेटमें पत्थर पड़ा होता तो नींव (मकान के पाय) में देते तो काम आता,! भाइ कहे—मेरा वैरी है. बेहन कहे—किस्का भाइ लाट (गरीब), स्त्री कहे—मोल्या है (मोल लिया गुलाम है) इत्यादि सब सज्जनों की तर्फसें अपमान और दुःख प्राप्त होता है. देखिये! स्वार्थ सुज्ञ मानाने प्रकार

दत्त चक्रवर्त्ति को मारनेका उपाय किया, कनक रथ राजा जन्मते पुत्रोंको मार भरत, बाहुबली दोनों भाइ आपसमें लडे. कोणिक कुमरने अपने पिता श्रेणिक राजाको पिंजरेमें कब्ज किया, दुर्योधनने सब कुटुम्बका संहार किया. और सुरी कंता राणीने प्यारे पति प्रदेशी राजाके प्राण हरण कर लिये. ऐसे २ प्राचीन अनेक दाखले हैं. और वर्तमान में बणाव बण रहे हैं. ऐसे मतलबी जन शरण भूत कदापि न होने वाले.

शरीर, धन, कुटुम्ब इत्यादि जिनको प्राणसे भी अधिक प्यारे समज रहा है, चिंतामणी तुल्य मनुष्य जन्म जिसके लिये गमा रहा है वो भी तारण शरण न होवे तो, अन्यकी क्या कहना. मतलबकी विकराल काल वेतालकी फांस में फसे हुये उस फास से बचाने कोइ समर्थ नहीं हैं कालबली बडा जबर है, नरेंद्र चक्रवर्ति आदि राजा, सुरेंद्र शक्रदादि देव. बडे २ बलिष्ट दैत्य जैसा शस्त्रधारी क्षत्रियों, वेद पाठी ब्राम्हणो, श्रीमंत साहुकारों, जमीदार जागीरदारों, सहश्र विद्या के साधक विद्याधरों (खेचरों) सिंहादिक वनचरों, सर्पादि उरचरों घर वस्त्र, भूषण, इत्यादि सर्व पदार्थों के पीछे काल वेताल लगा है, कालसे ज्यादा बलिष्ट इस संसारमें कोइ भी नहीं है. कालसे बचाने जैसी

कांइ घर, भूंयारा, गुफा पहाडादि कोइ स्थान नहीं. की जहां छिप जाय, अमृत और अमर वेल, वगैरे नासधारी चूंटी औषधीये, भी काल रोग मिटाने समर्थ नहीं, तो अन्यकाक्या? रोहणी प्रज्ञसी आदि विद्या, घंटा करणादी मंत्र, विजय प्रतापादी यंत्र, रस सिद्ध आदी तंत्र, में भी कालसे बचाने की शाक्ति नहीं, सरघनआदि कांइ शस्त्रभी नहीं, जिससे कालको डरावे तभी गणां! काल अजब शक्ति वाला है, पाणीमें गलता नहीं, अग्निमें जलता नहीं, हवामें उडता नहीं, वज्रमय भींतसे भी रुकता नहीं, यम जैसे पराक्रमीसे ही दबता-डरता नहीं है काल बडावे विचार है-बाल, वृद्ध, तरुण, नव परिणत धनाढ्य, गरीब, सुखी, दुःखी अनेकों के पालने वाले, और अनेकोंके संहारने वाले ऐसे २ मनुष्योंको, पशुवोंको, दिपवाली आदी तेहवारोंको उंच नीच ग्रहका, काम पूरा नहीं हुवा उनका, रात्री दिन भोगमें मशगुल उनका, इत्यादि किसीका भी जरा विचार नहीं है, कैसा ही हो झपाटेमें आयाही चाहीये कि तुर्त गट काया, अनंत प्राणीयोंका अनंत वस्तुओंका भक्षण अनंत वक्त किया, तोभी कालका पेट नहीं भराया, साक्षात् अग्नि सेभी अधिक सदा अतृप्ती महा विकराल राक्षसही है, महा

प्रतापी है-बडे २ सुरेन्द्र, नरेंद्र, सइकी दृष्टी मात्र सें अत्यंत त्रभा पाते हैं. भान भूल जाते हैं, आर्त रौद्र ध्यान ध्याने लगते हैं, उनका भी मुलायजा कालकों नहीं हैं. यह तो फक्त अपने मतलब साधनेंकी तर्फही दृष्टी रखता है. ऐसे निर्दयी निर्लज्ज काल वेतालके फा सः में पडे जीव जो अन्यके शरण से सुख चहाते हैं, वोमृगजल सें प्यास बुझाना चहाते हैं, वांझा का पुत्र खिलाना चहाते हैं, या आकाश पुष्पोंसे श्रृंगार सजना चहाते हैं, तैसा निष्फल काम हैं.*

इस काल की रचनाका तो जरा विचार करो,यह काल हरेक वस्तुका एक वक्त आहार कर पीछा तुर्त निहार कर देता है, और तुर्त पीछा उसके भक्षणका लोलपि हो उसके पीछे पडता है. तो दूसरी वक्त उसका पूरा भक्षण नहीं करे वहां तक उसका क्षण २ में क्षय करताही रहता है, और अचिंत्य खाजाता है और पीछे वेके वे ही हाल; ऐसे आहार निहार करते २

* गाथा–जस्सत्थी मच्चूणं सक्ख, जस्सत्थी पलायणं, जो जाणे इन मरीस्सामि,सोहूं कंक्खे सुहेसिया,

उतराध्ययन,

अर्थ–जिसकी कालसे प्रीती होय, भग जाणेकी शक्ती होय. अथवा भरोसा होय के मैं नहीं मरूंगा. वोही सुख संमूना रहता है.

अनंतानंत समयवीत गया. तो भी यह तृप्त नहीं हुवा और नकभी होगा.

अपने स्वजनका मृत्यु देख मूर्ख फिकर करता है. परन्तु यों नहीं समजता है कि--मेभी कालकी दाढ में बैठा हूं. जराक सम्का लगने की देर है कि इस जैसे हाल मेरे भी होंगे!!

काल के विचार मात्र में ही बडे२ इन्द्र नरेन्द्र तिजस्थान च्युत हो नीचे पडते हैं. तो बेचारे मनुष्यों में कीडे की क्या कथा.!

एक मनुष्य वन में सूता था. वो वहां रात्री को अचित्य दावा नल (आग) लगी. और उस मनुष्य को घेर लिया. उष्णता का लगते ही तुर्त जाग्रत हो एक वृक्षपर चढ बैठा. और चारही तर्फ जंगली जानवरों को जलते देख हंसने लगा. की यह जला! यह मरा! परंतु मूढ यों नहीं समजता है कि--यह वृक्ष जाला की मेरीभी येही दशा होगी. अर्थात-जैसे जगत् जीव मरते है वैसेही एक दिन अपन भी मरेंगे! इसमें संशयही नहीं!!

बाप, दादे, गये वोभी इस धन. कुटम्ब कर अपना रक्षण नहीं कर सके.तो तुम कौन सामर्थ्य वालेहो जोबच सकोगे

रहे तो निश्चय समजीये कि सब सज्जन मुह ताकेनही खड रहेंगे. सब संपति[१] निजस्थान हीं पडी रहेगी, और चित मुनी के कहे मुजब, एक दिन सब की दशा होगीः—

जहेह सिहो व मिअं गहाय, मच्चुनरं णेइहू अंत काले ॥ णतस्स माया व पियाव भाया, कालंमि तस्स महरा भवंति ॥

उत्त॰ १३

अर्थात्—जैसे वनमें फिरते हुये मृग [हरिण] के जुथ मे से सिंह (शेहर) एक मृग कों पकड के ले जाता है, तब सब हिरणे थरेर २ कांपते अपनी २ जान बचाते भग जाते हैं. तैसे ही कुटुंबो के वृंद में रहे हुये मनुष्य को काल सिंह ले जायगा. तब सब मुह ताकते ही खडे रहेंगे. पर कोइ भी बचा नहीं सकेगा.

तैसेही आगे कों तुम्हरी सहाय करने तुम्हरी संपति में से कुछ भी साथ न आवेगा. कहा है—

[१]—कंचन के आसन, सुखदासन कंचनके पलंग सब इतानत धरे रहे॥ हाथी हट शालनमे, घोडे घुडशालनमे, कपडे जामदानिमे, घडी धंधे ही रहे.॥ बेटा औ बेटी दोलतका पार नहीं, जवारोंके डब्बे ताले ही जडे रहे. ॥ देह छोड डिंगजब हो चले दिगम्बर, कुटके कुटुम्ब सब देखतेही खडे रहे. ॥ १ ॥

श्लोक-द्रव्याणि भूमो पशवाश्च गोष्ठी ॥ कान्ता गृह द्वारि जनस्य श्मशाने देह श्चिता यां परलोक मार्गे, ॥ कर्मानुगा गच्छति जीव एक: ॥१॥

अर्थात् धन, जमीन, पशु, घर संपति यह सब निजस्थान रह जायगी. कान्ता-प्रिय पत्नी को दारा कहते हैं, वो दरवजे तक आवेगी, और कुटुम्ब परिवार सब श्मशाण तक (देह) को पहोंचा ने आयंगे, दह शरीर चितामें जल जायगा. आगे अपने किये हुये शुभाशुभ कम किंसाथ ले चेतन्यइ केला चला जायगा.

एसा निश्चय कर, हे सुवार्थी जनो! इस दुर्लभ मनुष्य जन्मादि सामग्री को अन्यके शरण के लालच में पड मत गमावो! निश्चय करो कि-इस जगतकी कोइ भी पदार्थ मेरा रक्षक नहीं, है: सब भक्षक हैं! एसा जान उनपेसे ममत्व त्याग-तरण तारण, दुःख निवारण, निराधार के आधार गरीबनिवाज सदा कृपालु, करूणा सागर, अनंत दुःखा से उद्धार के कर्ता, विकराल काल व्याल के दुःख के हरता अनंत अक्षय अजर अमर अविनाशी अतुल्य सुख रूप मोक्ष स्थानके दाता-व्यवहारमे तो श्री अर्हंत सिद्ध आचार्य उपध्या और साधु यह पंच प्रमेष्टी हैं. औ-

र निश्चयसे अपने आत्माके गुण ज्ञानादि त्रि रत्न की शुद्धता है, जिनका आश्रय शरण ग्रहण कर, अजरा-मर आत्मा पर मानन्दी परम सुखी बन!!

तृतीय पत्र-"एकत्वानुप्रेक्षा"

जैसे सुवर्णका और मट्टीका अनादि सम्बन्ध होनेसे दोनो एकही रूपसे दिखते हैं, अर्थात्-सुवर्ण भी लाल मिट्टि जैसा दिखता है, परन्तु है दोनों अ-लग २. दोनों एकही होय तो मिट्टी मेसे सुवर्ण जुदा निकले नहीं. परन्तु अनादि सम्बंधसे एक रूप दिख ते हैं. जैसे सुवर्ण से मट्टी को अलग कर निजरूप में प्राप्त करनेके वास्ते सुवर्णकार, मूस, अग्नि, सोहागीक्ष र, और द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव, की अनुकुलता, इ त्यादि योग्य मिलनेसे सुवर्ण मिट्टीसे अलग हो निज रूपको प्राप्त होता है, ऐसेही जीव कर्मका अनादि सम्बन्ध तोडनेको इन चार वस्तुकी आवश्यकता है.

१ ज्ञान' रूप 'सुवर्णकार,' ज्यों सुवर्णकार मि ट्टी मे सुवर्ण निकालने का जाण होता है, और य- थाः विधि कर्म कर कार्य साधता है. तैसही जीव ज्ञा न कर कर्म से अलग होनेकी विधिका जाण होताहै, कृतव्य परायण होनेकी शक्ति आती है. २ 'दर्शन'-

श्लोक–द्रव्याणि भूमौ पशवाश्च गोष्टे ॥ कान्ता गृह द्वारि जनस्य श्मशाने देह श्चिता यां परलोक मार्गे, ॥ कर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥१॥

अर्थात् धन, जमीन, पशु, घर संपति यह सब निजस्थान रह जायगी, कान्ता–प्रिय पत्नी को दारा कहते हैं, वो दरवज्जे तक आवेगी, और कुटुम्ब परिवार सब श्मशाण तक (देह) को पहोंचा ने आयेंगे, यह शरीर चितामें जल जायगा. आगे अपने किये हुये शुभाशुभ कर्म कोंसाथ ले चैतन्यइ केला चला जायगा.

ऐसा निश्चय कर, हे सुखार्थी जनो! इस दुर्लभ मनुष्य जन्मादि सामग्री को अन्यके शरण के लालच में पड मत गमावो! निश्चय करो कि–इस जगतकी कोइ भी पदार्थ मेरा रक्षक नहीं है; सब भक्षक हैं! एसा जान उनपेसे ममत्व त्याग–तरण तारण, दुःख निवारण, निराधार के आधार गरीबनिवाज महा कृपालु, करूणा सागर, अनंत दुःखो से उद्धार के कर्ता, विकराल काल व्याल के दुःख के हरता अनंत अक्षय अजर अमर अविनाशी अतुल्य सुख रूप मोक्ष स्थानके दाता–व्यवहारमें तो श्री अर्हंत सिद्ध आचार्य उपाध्या और साधु यह पंच प्रमेष्टी हैं. औ-

र निश्चयमें अपने आत्माके गुण ज्ञानादि त्रि रत्न की शुद्धता है, जिनका आश्रय शरण ग्रहण कर, अजरा-मर आत्मा परमानन्दी परम सुखी बन !!

तृतीय पत्र-"एकत्वानुप्रेक्षा"

जैसे सुवर्णका और मट्टीका अनादि सम्बन्ध होनेसे दोनो एकही रूपमे दिखते हैं, अर्थात्-सुवर्ण भी लाल मिट्टि जैसा दिखता है, परन्तु है दोनों अलग २, दोनों एकही होय तो मिट्टी मेसे सुवर्ण जुदा निकले नहीं. परन्तु अनादि सम्बंधसे एक रूप दिखते हैं. जैसे सुवर्ण से मट्टी को अलग कर निजरूप में प्राप्त करनेके वास्ते सुवर्णकार, मूश, अग्नि, सोहागीक्षर, और द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव, की अनुकुलता, इत्यादि योग्य मिलनेसे सुवर्ण मिट्टीसे अलग हो निजरूपको प्राप्त होता है, ऐसेही जीव कर्मका अनादि सम्बन्ध तोडनेको इतने चार वस्तुकी आवश्यकता है.

१ 'ज्ञान' रूप 'सुवर्णकार,' ज्यों सुवर्णकार मिट्टी मे सुवर्ण निकालने का जाण होता है, और यथा विधि कर्म कर कार्य साधता है. तैसही जीव ज्ञान कर कर्म से अलग होनेकी विधिका जाण होताहै, कृतव्य परायण होनेकी शक्ति आती है. २ 'दर्शन'—

श्रद्धा रूप 'मूश' क्यों कि श्रद्धाही सद्गुणोंके रहने का स्थान है. ३ 'चरित्र'—संयम रूप 'क्षार', क्योंकि चा रित्रही कर्म मेलको फाडनेवाला है, और ४ 'तप'— रूप 'अग्नि', क्यों कि तपही कर्म मेल जलाने समर्थ है. यह चारही पदार्थोंका योग मिले औदारिक शरी रूप द्रव्य, आर्य क्षेत्र, चतुर्थ आरादि काल, और : त्यात्म भाव का संयोग मिले यथा विधि साधन से अनादि कर्म रूप मेलको दूरकर चैतन्य निजात्म रूपको प्राप्त होता है.

ऐसेही दूध में घी मिला होता है, और उ निकालने खटाइ, रवाइ, भाजन, मथक (मथन करे वाला) का संयोग होनेसे छाछ रूप मेलको छोड़ शु न अपने रूपको प्राप्त होता है, तैसेही-अनर औ पुष्प, लोह और चमक वगैर अनेक दृष्टांत कर औ का और कर्मका अनादि सम्बन्ध समजना. और सु वर्ण की तरह इन पदार्थोंका अनादि सम्बन्ध छुडा निजरूप में प्राप्त करनेके अनेक उपाय समजना. है तैसे ही आत्माको अनादि-कर्म सम्बन्धसे छुडाके-निज

दुहा—तुर्गी पावक मोहगी, फुंकपातणो उपाय, रामचरण चारू मिल्या, मेल कनकका जाय!!?

रूप में प्राप्त करने के उपरोक्त ज्ञानादि चार साहि त्योंका संयोग अर्थात(युक्त=मुक्त) उपाय है.

१ बड़ा विद्वान और सदा शुचि पवित्र रहने वाला वारुणी (मदिरा) के नशे में गर्क हो, अशुचि से भरे उकरडेपे लोटेने मे सुकुमाल गादीपे लोटने जैसा मजा मान ने लगता है. और गटरोंकी हवाको. बगीचेकी महल समज ने लगता है, उसे अशुचि, से निवर्तनेके बोधकको मूर्ख जाण गाली प्रदान करने लगता है. वोही जीव नशेसे निवर्ते बाद, अपनी कु दशा देख शरमाने लगता है, और किसीके विना कहे ही उकरडेको त्याग (छोड) चला जाता है. ऐसेही जीव रूप पवित्र पुरुष, मोह मद रूप मदिराके नाश में छक हो. कर्म रूप उकरडा भोग (विषय) रूप अशुचि से भरे हुयेपे लोटता हुवा आनंद मानता है; और विषय विरक्त सद्बोधकको मूर्ख जान, उनके उपदेशका अनादर करता है, और वोही जीव सत्संगतादि प्रसंगसे मोह नशा उतरनेसे शुद्धि में आ, अज्ञान दशा में कृत कर्मका पश्चात्ताप कर, तुर्त विषय विरक्त हो एकी भाव को अङ्गीकार करता है.

२ जैसे बचपनसे बकरीयोंमे उछरा हुवा सिंहका बच्चा, अपनी जातिको भूल अपने को बकराही

मान रहाथा. और वन में सच्चे सिंहके दर्शन और सद्बोध से बकरीयों का सङ्ग छोड स्वेच्छारी एकल हुवा. ऐसेही-जीव अनादि कर्म सम्बन्ध से अपना निज स्वरूप भूल, कर्म जनित पदार्थ शरीर संपत्ति आदिको अपनी समज रहा है, जब सद्गुरु के सद्बोध का सम्बन्ध से अपना आत्म भान प्राप्त हुवा, तब जानने लगा कि मै चैतन्य, आधि व्याधि उपाधि कर के रहित हूं; यह शरीर, संपत्ति, तीनहीं दुःखों से व्याप्त है, मैं निराकार हूं, यह साकार है; मैं शुद्ध शुची हूं, अशुचि अशुद्ध है; मैं अजरा मर हूं, यह क्षणिक विनाशी है; मैं अनंत ज्ञानादि गुण युक्त चैतन्य हूं, यह जड है; इत्यादि किसी भी प्रकार से इनका मेरा स सम्बन्ध नहीं मिले. इनके प्रसंग कर मैंने-४ गत, २४ दंडक, ८४ लक्ष जीवा योनि में, उच्च नीच जाति स्थान में अनंत विटंबना भुक्ती है. अब इनका संङ्ग छोड मुझे एकत्वता धारण करना योग्य है; ऐसे विचार से सर्व सम्बन्ध परित्याग कर वीतराग दशाको अवलम्बे.

जैसे बद्दलो के फटनें से सूर्य का प्रकाश को प्राप्त होता है, तैसेही कर्म पडूल दूर होनें से आत्म के निजगुण ज्ञानादि प्रकाशित होते हैं, और चैतन्य

अपना स्वरूप पहचानता है.

एक स्वानु प्रेक्षक विचार करे कि—मैं कौन हूं. एक हूं या अनेक हूं, दीखने रूपतो एकही शरीर का धारक हूं. ७ परन्तु जो एक मानू तो—मातपिता कहे मेरा पुत्र, क्या मैं पुत्र हूं? बेहन कहे मेरा भाइ, तो क्या मैं भाइ हूं? स्त्री कहे भरतार, तो मैं भरतार हूं? पुत्र पुत्री कहे पिता, तो क्या मैं पिता हूं! यों कोइ काका, कोइ बाबा, कोइ मामा, मासा, व्याइ, जमाइ ऐसे २ सब मेरा २ कर मुझे बोलाते हैं; अब विचार होता है कि मैं कौन हूं? और किसका हूं? हा! आश्चर्य! मेरा पत्ता लगना हीं मुझे मुशकिल हुवा! मैं एक हो कितने नाम धारी बना. कितनेका हुवा. परंतु जो निश्चयात्मक हो विचारता हूं तो—यह सब कर्मोंके चाले हैं; मैं न पुत्र हूं, न पिता हूं, न कोइ

सवैया—केश शीश झुड भाल भ्रहणी पलक नैन।
गोलक कपोल गंड नाशा मुख श्रोन है॥
होडी होट दाढ दंत रसना मसुढा तालु।
चिबुका कंठिका कंठ कंध कर मौन है॥
काँख कटि भुजा नाडी नाभी कुच पेट पीठ।
अंगुली हथेली नख जंघ स्थल जान है॥
नितंब चरण रोम एते नाम अंगनके।
नामे विचार नर तेरा नाम कौन है? ॥१॥

अन्य हूं. न मेरा कोइ है, और न मैं किसीका हूं, जो मैं इन नाम रूप होता तो सदा इसही रूप में, बन रहता. जो मैं पुरुष हूं? ऐसा निश्चय करता, अन्य जन्म में स्त्री हो पुरुष संभोगकी क्यों इच्छा करी? और जो स्त्री हूं ऐसा निश्चय करता अन्यजन्म में पुरुष हो स्त्री भोग की क्यों चाहूं? इत्यादि विचार से यह सब मिथ्या भाव विदित होता है, मैं मोह नशे में बेशुद्ध हो, कर्म संयोग से विकल हो भूल रहा हूं. जैसे-नाटकिया नाटक शाला में स्त्री पुरुषादि नाना प्रकारके रूप धर नाचता है. जैसा रूप बनाता

गाथा—एगया खत्तीओ होइ, तओ चंडाल बो कसो।
तओ कीड पयंगोया, तओ कुंथु पिपीलीया॥१॥
एव मवट्ट जोणी सु, पाणीणो कम्म किब्बिसा,
नवि निव्विज्जंति संसारे, सव्वट्ठे सुव खत्तिया॥१॥

उत्त॰ अ॰ ३

अर्थ—जैसे क्षत्री राजा सदा परिश्रम से भी पूरा राज्य मिलाके तृप्त नहीं होता है तैसे जीवभी कोइ वक्त क्षत्री हुवा. कोइ वक्त चंडाल भंगी हुवा. कोइ वक्त बुक्कस (वर्ण शंकर) हुवा कभी कीडा तो कभी पतंगीया. इत्यादि योनिमें कर्मोंके वश हो प्राणी परिभ्रमण करते. नाना (अनेक) प्रकार के रूप धारनेभी सर्व अर्थ ज्ञान करने समर्थ न हुवा हो ऐसे संसारमें.

है वैसाही भाव हूबाहू भजता है. परन्तु जो अंता दृष्टी से देखोतो—वोनट वैसा नहीं है; राजा नहीं, राणी नहीं, संयोगी नहीं, वियोगी नहीं, इन सब भावों से अलग ही है: फक्त प्रेक्षक को देखाने हँसा ने, फसाने, रुलाने, अनेक भाव दर्शाता है, और अं तर मे तो सब से अलग है. तैसेही=संसार रूप नाट क शाळा में चैतन्य नट कर्म संयोग अनेक उंच नीच एकेंद्रीय से पचेंद्री तक, चंडालसे चक्रवर्ति तक रूप धारण कर, उस रूप प्रमाणें अनेक योग्य कर्म किये. और आखीर एकही कायम नहीं रहा! सब निज २ स्थान रहगये, और चैतन्य अलग ही राहा. यह दे-खाये कर्मोका तमाशा, अब जरा कर्म रूप नशेका उ-तार आया दिखता है, जिस से थोडा भान आया, और विचार होने से कर्मों की विचित्रता समज भेद विज्ञानी हुवा है. तो अब विभाव को त्याग स्वभाव में रमण कर.

देख! जब तू आया (माताकी योनिसे बाहिर प डा) था तब इकेलाही था. और तेरे देखते २ अनेका गये. वो इकेलाही गये. वैसे तू भी इकेलाही जावेगा. अशुभ कर्म के फल भोगवने नरकमें. और शुभ कर्म के फल भोगवने स्वर्गमें गया तो इकेलाही [illegible] व

मित्र, मकान, भोजन भूषण, वगैरे का हिस्सा (पांतो) लेने वाले अनेक स्वजन हैं. परन्तु कृत कर्मके फलो का हिस्सा लेने वाला कोइ नहीं है.

इस जगतमें परिभ्रमण करते हुये अनंत जीवों मेंसे रस्ते चलतेर थोडे दिनोंके लिये स्त्री कोइ वन जाता है- कोइ पुत्र हो जाता है, ऐसे २ अनेक सम्बंन्ध करते हुये पुद्गल परावर्तनके फेरेमें किदर के किदर ही चले जाते हैं. फिर उनका पत्ताभी लगना मुशकिल होजाता है. ऐसेही हे जीव! तूं भी केइका पिता, केइका पुत्र, केइकी स्त्री, इत्यादि वन आया, और छोड आया. वो तुझे पहचाने नहीं, तू उन्हे पहचाने न-नहीं. ऐसे २ विचार भी तेरे समक्ष रजु होने तेरा एकत्वपणा तुजें भाप(मालम)नहीं होताहै. यह अश्चर्यहै!

हे आत्मान्! सर्व जगत के पदार्थ तेरेसें भिन्न (अलग) हैं, और तूं उनसे भिन्न है. तेरे उनके कुछभी सम्बन्ध नहीं हैं, इस लिये अब तूं तेरे निज स्वरूप को पहचान कि तूं शुद्ध है, सत्य है, चिदानंद है, सिद्ध समान है. हमेशा इसही ध्यान में लीन हो कि इस रूप वर्ते.

चतुर्थ पत्र-"संसारानुप्रेक्षा".

संसारके स्वरूपको विचारे, सो संसारनुप्रेक्षा

"संसरति इति संसारः" जिसमें परिभ्रमण करना पडे सो संसार चार तरह का है; उन्हे चार गति कहतेहै-गतागत (आना गमन) करे सो गति चारः-

१नारक गति न=नहीं×सूर्यः अर्थात् अन्ध कार से भरा हुइ अन्धकार मय सो तम % गति या नरक गतिके ७ स्थान अधो (नीचे) लोकमें एकेक के नीचे हैः-(१)* रत्न प्रभा–श्याम वर्णके रत्नमय भयंकर सर्व स्थान. २ शर्कर प्रभा=तरवारसेभी अतितीक्ष्ण सर्व स्थान हैं. (३) वालु प्रभा=भाड भूंजके भाडका वालु (रेती) से भी अत्यंत उष्ण सर्व स्थान. (४) पंक प्रभा रक्त, मांस, पीरू के कीचड मय सर्व स्थान. (५) धूम्म प्रभा–राइ मिरची के धूम्र [धूंवे] से भी अधिक तीक्ष्ण धुम्रमय सर्व स्थान. (६) तम प्रभा=भाद्रव की घटा छाइ अमावस्या की रात्रि के भी अत्यंत अन्धकार नय सर्व स्थान. [७) तम तंमा प्रभा-घोरा नघोर अन्धारे मय सर्व स्थान. यों सातही नरकके गुण निष्पन्न नाम (गोत्र) हैं. इन ७ नरकके४२ आंतरे (खाली जगा,) ४९ पांथडे(नेरीये रहनेकी जगा,) ८४

% बहुत शास्त्रमें नरकका तम गति भी नाम हैं,

*घम्मा, वंशा, शीला, अंजाना, रिष्ठा, मग्घा, मघवाइ यह ७ नर्कके नाम हैं और ऊपर अर्थ युक्त के है सो गोत्र हैं.

लक्ष नरक वासे (उत्पति स्थान) हैं. इनमें रहे समदृष्टी जीव तो स्वकृत कर्मोदय जाण, सम भाव से दुःख भोगवते हैं; और मिथ्या दृष्टी हाय ब्र हाय कर दुःख भोगवते हैं, नरक में तीन तरह की वेदनः—१प्रमाधर्मी [यमदेव] कृत, २ आपस की, और ३ क्षेत्र वेदना.

१ प्रमा धामी १५ जातके हैं:—'अम्ब'-नेरीये को आमकी तरह मशलते हैं, २ अम्बरसे'-आम का रस निकाले ज्यों रक्त मांस हड्डी अलग २ करते हैं. ३ 'शाम'=प्रहार करते हैं. ४ 'सबल'=मांस निकालते हैं. ५ 'रुद्र'=शस्त्रसे भेदते हैं. ६ 'महारुद्र'—कसाइ की तरह टुकडे २ करते हैं. ७ 'काल'—अग्निमें पचाते हैं. ८ 'महाकाल'— चिमटेसे चर्म मांस तोडते हैं. ९ 'असि पत्र'—शस्त्रसे [illegible] काटते हैं. १० 'धनुष्य'—शिकारी की माफिक धनुष्य बा[illegible] बाणसे भेदते हैं. ११ 'कुंभ'—कुम्भीमे पचाते हैं. १२ 'वालु[illegible]रु'—भाड भूंज माफिक उष्ण रेतीमें भूंजते हैं. १३ 'वीतरणी[illegible] [illegible] अत्यंत उष्ण रससे भरी वीतरणी नामक नदीमे डाल[illegible] [illegible]ते हैं. १४ 'खरसर' शस्त्रसेभी अति तीक्ष्ण पत्रवाले [illegible] शामली वृक्षके नीचे बैठा पत्ते डालते हैं. १५ 'महाघोष' अन्धेरी कोठडीमें ठसोठस भरते हैं. यह नाम [illegible]ण कहे. परंतु [illegible] शिवाय औरभी अनेक तरहके दुःख [illegible] कृत कर्मके

वैसेही फल देते हैं. जैसे मांस भक्षीको—उसीका मांस तोडके खिलाते है. मदिरा पानीको-तरु आ गर्म कर पिलाते हैं. पर स्त्री भोगी को-लोहकी उष्ण पुतली से संगम कराते है. हिंसक को जैसी तरह हिंशा करी हो वैसी ही तरह उसे मारते हैं. इत्यादि अनेक कष्ट- दुःख नेरीयों को देते हैं. वो बेचारे पराधीन हो आकंद करते हुवे सहन करते हैं.

२ आपसकी वेदना तीसरी नरकके आगे, यम (परमाधामी) नहीं जा शक्ते हैं. वो नेरीये अनेक विकराल भयंकर स्वगात्र जंगली रूप बनाके, आपसमें लडते हैं, मारते हैं. हाय त्राहाय करते हैं, ज्यों नवा कुत्ता आनेसे दुसरे कुत्ते उस पे टूट पडते हैं, वैसा.

३ क्षेत्र वेदना १० प्रकारकी हैं:—१ अनंत क्षुधा=नर्कके एक जीवको सर्व भक्ष पदार्थ [illegible] दें तो भी तृप्ती नहीं आय, और [illegible] एक दाणा नहीं मिले. २ अनंत [illegible]

+ पहिली से तीसरी नरक तक [illegible] योनि, [illegible] थोमें शीत योनिये बहुत [illegible] उष्ण योनि पे बहुत शीत [illegible] और [illegible] मासे एक उष्ण योनि है. [illegible] होते हैं उनके [illegible] की वेदना होती है. और [illegible] योनिये उत्पन्न होते हैं [illegible] वेदना होती है

पाणी पीनेसे प्यास नहीं मिटे. और पान एक बूंदभी नहीं मिले. ३ अनंत शीत-लक्ष मणका लोहका गोला विखर जाय ऐसी ठन्ड उष्ण योनि स्थानमें हैं. ४ अनंत उष्ण लक्ष मण लोहका गोला गलके पाणी हो जाय ऐसी गर्मी शीत योनी स्थान में हैं. ५ अनंत दहा ज्वर. ६ अनंत रोग सब रोगोमें नेरीये का शरीर व्याप्त है. ७ अनंत खाज (खुजली). ८ अनंत निराधार. ९ अनंत शोक (चिंता) १० अनंत भय. सदा भयभीत रहते हैं. यह १० प्रकारकी वेदना स्वभावसेंही होती है.

ऐसे दुःख मय नरक स्थानमें, अपना जीव अनंत वक्त उपजके दुःख भोगव आया है.

२ "तिर्यंच गति" तिरछे बहुत वक्तमें तिर्यंच (पशु) कहे जाते हैं. इन के ४८ भेदः– पृथ्वी काय, आपे काय, तेउ काय, वायु काय, इन चारोके सुक्ष्म प्रजाप्तों अप्रजाप्ता, और बादर का प्रजाप्त, अप्रजाप्त यों ४×४=१६ हुये. वनस्पतिके सुक्ष्म साधारण प्र...

---

१ द्रष्टी न आवे. २ जिस जगे जितनी प्रजा हैं, उतनी पुरी.पांच:सो.प्रजाप्ता. ३.अधुरी पांध सो प्रजाप्ता. ४द्रष्टी आवेसो. ५.एक शरीरमें अनंत जीव वाले. ६एक शरीर एक जीव. [illegible]

इन तीन के प्रजाप्ता, अप्रजाप्ता, दो, भेद करने से:— ३×२=६ हुये. बेंद्री, तेंद्री, चौरिंद्री इन तीनके प्रजाप्ता अप्रजाप्ता यों ३×२=६ भेद हुये. जलचर, थलचर, खेचर, उरपर, भुजपर, यह पांच सैंनी और पांच असैंनी. इन १० के पर्याप्त अपर्याप्त, यों १०×२=२० यह सब मिल ४८ भेद तिर्यंच के हुये.

यह बेचारे कर्माधीन हो परवश में पडे हैं. मिट्टी को-खोदते हैं, फोडते हैं गोवरादिक मिला के निर्जीव करते हैं. पाणी को-गरम करते हैं न्हावण धोवण वगैरे यह कार्य में ढोल ते हैं. क्षारादि मिला के निर्जीव करते हैं. अग्नि को-प्रजालते हैं, बुजाते हैं पाणी मिट्टी आदि से मारते हैं. वायुको पह्वा झाडु खोंडन. झटक. फटक, उघाड मुख बोलना, वगैरेसे मारते हैं. वनस्पति को छेदन, भेदन, पचन, पीलन, चालन. अग्नि मशाला वगैरे से निर्जीव करते हैं. बेंद्री-तेंद्री-चौरिंद्री.मिट्टीके, पानीके. हरी-लीलोतीके इंधन

७ पाणीमें रहे मच्छादि ८. पृथवी चले. गायादिक. ९ आकाशमेंउडे पक्षीयादि. १० पेट रगड चले सर्पादिक. ११ भुजसे चले उंदरादिक. १२ जो मात पिता के संयोग से उपजे. और जिन को मन (ज्ञान) होवे सो सन्नी. १३ मल-छिन उत्पन्न होवे और मन नहीं होवे सो असन्नी.

के, अनाज के वस्त्र पात्र आदिके आश्रय रहे, गमनागमन करते, आरंभ समारंभ करते. धुम्रादिक प्रयोगसे शीत, उश्न. वृष्टि से आदि अनेक तरह उपजते भी हैं, और मरते भी हैं. जलचर पाणी खुटने से, नवा पाणी आणे से या धीवरा दिक मारते हैं. स्थलचार या वनचर पशुओं वेचारे शीत, ताप वृष्टि, भूख, प्यास सहन करते हैं. काँटे, कंकर, कीचड, कीडे वाली भोमी में पडे जन्म पूरा करते हैं, घर वस्त्र राहित हीन-दीन, गरीब अनाथ, घास फूस आदी निर्माल्य मिले जितना खा के संतोष करते हैं. ऐसे निपराधी को भी रसगृद्धि निर्दयी मार डालते हैं, बन्धन में डालते है. ऐसेही ग्रामके रहवासी गौ (गाय) महिषी (भैंस) आदिकभी निर्माल्य वस्तु देवे जितनी खाके रहने वाले, खेतीआदि अनेक काम में मदत कर्ता, दूध जैसे उत्तम पदार्थ के दातार, मालेककी आज्ञा में चलने वाले, गरीब बेचारेके उपर असाह्य वजन भर देते हैं, कठिण बन्धन से बांधते हैं, कठोर प्रहार से मारते हैं, बहूत चलाते हैं, दुःख से रोग से या थाक से मुर्छित हो पडे हुवे को. श्वास रोकके उठाते हैं. खान पान पूरा नहीं देते हैं. और काम पूरा लेते हैं. और मतलब पूरा हुये कुरसी कपाइ आदि

को बेंच देते हैं. वहां विष शास्त्र से अकाले रीबा २ मारे जाते हैं. इन दीनो की करुणा करने वाला कौन है? ऐसी तिर्यंच गति मे अपना जीव अनंत वक्त उ. पजके दुःख भोगव आया है.

३ मनुष्य गति—मनकी इच्छा मुजव साधन कर सके सो मनुष्य के ३०३ भेद, असी, मसी-कसी, यह तीन कर्म कर उपजीविका करे सो कर्म भूमी मनुष्य इनकी उत्पत्ति के १५ क्षेत्रः—१ भरत १ ऐरावत, १ महाविदेह. यह तीन क्षेत्र जंबुद्विप में; और यही दो दो होनेसे ६ क्षेत्र धातकी खंडमें, और योंही ६ पुष्करार्ध द्वीपमे. यों ३+६+६=१५. वरोक्त तीनही प्रकारके कर्म विना दश प्रकारके * कल्पवृक्ष

---

१ हथीयार (शास्त्र) से. २ लिखने का ३ कृपाण(खेती)

* १ मतंगा वृक्ष=मधुर रस दे. २ भिंगा वृक्ष= व रतन दे. ३ तुडी येगा वृक्ष= वाजित्र सुणावे. ४ दिव वृक्ष—दीवा जैसा प्रकाश करे. ५ जोइ वृक्ष= सूर्य जैसा प्रकाश करे. ६ चितगा वृक्ष—विचित्र रंग के पुष्प हारदे ७ चित रसा—इच्छित भोजन दे. ८ मन वेगा वृक्ष—रत्न जडित भूषण दे. ९ गिहं गारा—रहने अच्छा. मकान दे. और १० अनियाना वृक्ष=श्रेष्ट वस्त्र दे. ३० अकर्म भूमी और ५६ अन्तर द्विपमे रहने वाले मनुष्यों की इन १० कल्प वृक्ष से इच्छा पूरी होती है.

से उपजीवका होवे. सो कर्म अकर्म भूमी मनुष्य के ३० क्षेत्र १ हेम वय, २ अरण वय, ३ हरीवास, ४ रमक वास, ५ देव कुरू ६ उत्तर कुरू, यह ६ क्षेत्र, जंबुद्वीप में, येही दो दो क्षेत्र होने से १२ क्षेत्र धात की खंड में, और येही १२ क्षेत्र पुष्करार्ध द्विपमें. यों ६+१२+१२=३०. जंबुद्वीप में के चुली हेमवंत और शिखरी पर्वत मेंसे आठ २ दाढों (खुणे) लवण समुद्रमें गइ है. उन्ह एकेक दाढोंपे सात २ द्वीप हैं तो आठ दाढोंपे ७×८=५६ अंतर द्विप हुवे, इनपर अकर्म भूमि जैसे मनुष्य रहते हैं. यह १५+३०+५६=१११ मनुष्य के क्षेत्र हैं. इन में जो मनुष्य होते हैं उनके दो भेद पर्याप्त और अपर्याप्त, यह २०२ हुये और १०१ अपर्याप्त मनुष्य जो १४ स्थान में समूर्छिम

* १ उच्चार=विष्टामें, २ पासवण-मूत्रमें, ३ खेल-खं कारमें, ४ संघण-नाकके मेलमेंहामें. ५ उमे-उलटीमें पित्ते-पित्तमें. ७ सग-रक्तमें. ८ पुय-रस्सी (पीप) में, ९ सुक्क-शुक्र [वीर्य] में. १० सुक्क पुग्गल परिसाड-शुक्रके सूके पुद्गल पीछे भिजनेमें, ११ मृत्यु कलेवर-पंचेंद्रिके कलेवर में १२ स्त्री पुरुषके संयोगमें. १३ नगरके नालेमें, और १४ नगरके सर्व अशुची स्थानमें [ईत्यादि हुये तुर्त असंख्य मनुष्य उत्पन्न होते हैं.]

(स्वभावने) उत्पन्न होवे हें वो अपर्यासही मरते हैं. इस लिये १०१ भेद उनके, यों सर्व मिल ३०३ भेद मनुष्य के हुये.

कर्म भूमि में महा विदेह छोड बाकी के क्षेत्र में छे आरे की प्रवर्ती मे कभी पुद्गलिक सुखकी वृद्धि और कभी हानी होती है. सदा एकसा न रहना वो भी दुःख काहीकारण है. और महा विदेह मे सदा चतुर्थ काल प्रवर्तता है, तो वहां भी विचित्र प्रकारके मनुष्य हैं. मतलब की जहां कर्म कर के उपजीवका है वहां दुःख ही है; अस्सी हथीयारसे उपजीका करने वाले, कसाइ होके बेचारे गरीब निपराधी जीवों-की घात कर, महा जब्बर पाप उपराजते हैं, सिपाइयों होके अपराधी और निरपराधी को विनाकारणभी मारते हैं. कितनेक राजादिक महाभारत संग्राम करते हैं. तो कितनेक स्वकुटुंब का संहारही कर डालते हैं, तो बेचारे एकेंद्रियादिकका तो कहनाही क्या? शस्त्र अनर्थकाही कारण है. शस्त्र हाथमें आयाकी प्रणाम हिंसामय हुये. मसी लिखाइ के कर्म कर उपजीविका चलाने वाले वणिकादिक कसाइ, कूंजडे, कलाल, दाणेका, लोहेका, धातुका वगैरे अयोग्य व्यपार कर गजा उपरांत वजन उठाये, गामडे में भटकते हैं

गुलामी करते हैं, वगैरे महा कष्ट सहते हैं. कस्सी-कृषी (खेती) के कर्म में अनेक एकेंद्री से पचेंद्री तक जी-वकी घात करते हैं, शीत ताप क्षुधा तृषादि महा क-ष्ट सहते हैं. महा मेहनत से तीनही क्षतु व्यतिक्रात करते हैं. अच्छी वृत मान कालकी स्थितीका ख्याल कर ने मालम होता है कि-द्रव्य (धन) है तो बहुत स्थान कुटुंबकी अंतराय रहती है, कुटुंब है तो दरिद्रता रहती है. धन कुटुंब दोनो है तो संप नहीं. शरीर रोगीला सदा क्लेश, लेने देनेका इज्जतका, वगैरे अनेक दुःख भु क्त रहे हैं. कितनेक बेचारे गरीब हैं, उन को अपने पेट भरनेकी ही मुशीबत पड रही है तो अन्य कुटुम्बका निर्वाहकरना तो दूरही रहा कितनेक अंगोपांग हीन लूले लंगडे, अन्धे, बहीरे वगैरे हैं, कितनेक अनार्य म्लेच्छ देशमें उत्पन्न हूवे; फक्त नाम मात्र मनुष्य हैं, उनके कर्म पशुसेभी खराब हैं, धर्मके नाममेंभी नहीं समजते हैं, मनुष्यका अहार करते हैं, वस्त्र रहित रहते हैं, मा त, भगि, पुत्रीआदि से व्यभिचारका कुछ विचार नहीं है. जंगलमें भटक २ जन्म पूरा करते हैं. अकर्म भूमि के क्षेत्रोंमें उत्पन्न हुये मनुष्य देव कुरू उत्तर कुरू में सुखकी उत्कृष्टता है, हरीवास रम्यकवास में सुखकी मध्यमता है, और हेमवय एरण्यवयमें सुख ही कनिष्टता

है परंतु सर्व धर्मरहित भद्रिक परणामी प्रर्याय पशु की तरह पूर्व पुण्येसे प्राप्त हुये दशकल्प वृक्षों के योग्य से सुख भोगवते हैं, और मर जाते हैं.

अंतर द्वीपमें रहने वाले मनुष्य नाम मात्र मनुष्य हैं, पानी पे डूगरीयोंमें वनमें रहते हैं, शरीर मनुष्य जैसा होके, कित्नेकके मुख हाथी घोडे सिंह गाय जैसे होतेहैं. यह मिथ्यात्व दृष्टि हैं, कूछ पुण्योदयसे इन्की भी इच्छा कल्प वृक्ष पूरते हैं.

समूर्छिम मनुष्य—फक्त मनुष्य के पदार्थ विष्टा मूल रक्तादि सें होतें हैं. जिससे वो मनुष्य कहे जाते हैं, परंतु दृष्टि नहीं आते हैं,ऐसे सूक्ष्म रूप से एक स्थान में भेलंभेल असंख्य उपजते हैं. और तुर्त मरते हैं. विष्ट पे विष्टा, मूत्रमें मूल करने से वगैरे इनकी हिंसा हर वक्त होती है.

ऐसे दुःखमय स्थानमें अपन अनंत विटंवना भोगव आये हैं. (मनुष्य जन्मकी श्रेष्ठता गिनने का इत्नाही प्रयोजन है कि तिर्थंकर, साधू,श्रावक, वगैरे इसीमें होते हैं. और मोक्षभी मनुष्य जन्म विन नहीं मिल सक्ता है.)

४ देवगति—दिव्य उच्चगतिवाले सो देवता के १९८ भेद कहे हैः—असुर कुँवार, नाग कुँवार, सुवर्ण

कुँवार, विघुत कुँवार, अग्नि कुँवार, उदधी कुँवार, दिशा कुंवार, द्वीप कुंवार, पवन कुंवार, स्तनित कुंवार, यह १०, और १५ पहले पारमाधामी (यम) देवके नाम कहे सो यों २५ ही भवन पतिके जात के देवता हैं. यह पहले नरकके आंतरे में रहते हैं. और पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किंन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, इसीवा, भुइवा, आनपन्नी, पानपन्नी कंदिय, महाकंदीय, कोहडं और पहं देव, यह १६ व्यंतर. तथा आन झमक, पण-झमक, लेणझमक, सेणझमक, वत्थ झमक, पत्त झमक, पुप्प झमक, फल झमक, बीज जमक, अभी पत्त झम-क, यह १० झनक मिल २६ भेद वाण व्यंतरकी जातिमें गिने जाते हैं. यह पहलि नरक के उपर पृथवी के नीचे रहते हैं. चन्द्र, सूर्य, ग्रह नक्षत्र, तारा, यह ५ अढाई द्वीपके अंदर चलने फिरने हैं, और इन्हीं नामके ५ अढाई द्विपक बाहिर स्थिर हैं. यह १० जोतिषी गिने जाते हैं. १तीन पलिये, २तीन सागरोपे ३ और तेरसागरीये यह *तीन किलमुखी नीच जातके देव हैं. सुधर्मा,

* तीन पल्ये के आयुष्य वाले किल्मुखि देव जोतिषी के उपर रहते हैं. तीन सागर के आयु, दूसरे देव लोक के उपर तीसरेके नीचे रहते हैं और तेरे सागर वाले छट्टे देव लोकके पास रहते है. यह विरूप और हीन स्थितावाले हैं चार तीर्थकर निंदक धर्म ठग, निन्दक कुछ करणी करनेसे इनमें अवतार लेता है

ईशान, सनत कुमार, महेंद्र, ब्रम्ह, लांतक, महाशुक्र, स हस्तार, आण, प्राण, अरण, अचुत यह १२ देवलोक. साइच, साइच, वरुण, वन्ही, गद्तोय तुसीय, अरिटा, अगिच्छा, अवशाह, यह, ९ लोकांतिक उंच्च देव हैं. भद्दे, सुभद्दे, सुजाय, सुमाण. से, सुदंसण, पियदंशण, आमोय सुपडिभद्दे, जसोधर, यह ९ ग्रीवेग हैं. विजय, विजयंत, जयंत, अपराजित, और सवार्थ सिद्ध, यह ५ अनुत्तर विमान हैं. २५+२६+१०+३+१२+९+९+५ =९९ हुये. इन के अपर्याप्त और पर्याप्त यों १९८ देवता के भेद हुये.

अन्य गति से देव गति में सुखकी अधिकता है. सब वैक्रय शरीर धारी हैं. दिल चाहे जैसा और दिलचाहे जितने रूप बना सक्ते हैं. निरोगी महा दिव्य, सदा तरुण शरीर होता है. आयुष्य जघन्य (थोडासे थोडा) दश हजार वर्षका. और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम का. सैकडों हजारों वर्षमें क्षुधा लगी के तुर्त सर्व दिशामेंसे शुभ पुद्गलोंका अहार रोम २ से ग्रहण कर तृप्त हो जाते हैं. इनके विषय सुख अन्योपम सैकडों हजारों वर्षके होते हैं. इनके सामान्य नाटक में दो हजार वर्ष. और बडे नाटक में १० हजार वर्ष व्यतिक्रांत हो जाते हैं. इनके वहा रात्री नहीं है, सदा

महा प्रकाश बना रहता है.

इत्यादिक सुखके देव भुक्ता हैं, तो भी दुःखी हैं, क्योंकिक्षुधा वेदनी तो लगी ही है. और सुख देवता बरोबर एकसे नहीं हैं, कितनेक इन्द्र हैं, कितनेक तायत्रिक [इन्द्रके गुरुस्थानी] हैं, कितनेक सामानिक (इन्द्रके बरोबरीके) हैं, कितनेक आत्म रक्षक, (प्रहरादार) हैं, कितनेक परिषदके देव हैं. कितनेक अणिका (शैन्य) के देव हैं, गंधर्व (गायन करने वाले) देव, नाटकिये (नाचने वाले) देव, अभीगी (नोकर) देव, और प्रकीर्ण (अनेक विमान वासी) देव. एसे १० प्रकारके देव बारह देवलोक लग हैं. इन मेंसे ज्यादा ऋद्धि धारी देव हैं, उन्हे देख कमी ऋद्धि वाला देव शरमाते हैं. और पश्चात्ताप करते हैं, कि मैं एसा क्यों नहीं हूवा! कितनेक व्यभिचारी देव अन्य देवोंकी मुख्या देवीका तथा वस्त्र भूषणका हरण करते हैं. उन्हे इन्द्र शिक्षाद्वारा वज्र प्रहार करते हैं, जिससे वो छे महिना तक महा वेदना भोगवते हैं. और भी सबसे ज्यादा दुःख मरणका है सोभी उन्हे छोडता नहीं है. मृत्युके छे मास पहिले उन्हे आलस आने लगता है, महल, वस्त्र, भूषणकी ज्योती मंद भास होती है. अच्छे नहीं लगते हैं. जिन से भ्रम पडने

लगता है, पुष्पमाला कूमलाइ दिखती है इत्यादि चिन्ह से देवता अपना मृत्यु नजीक जाण फिकर में पड जाते हैं. कि-हाय! एसे सुख को छोड अशुची स्थान में उपजना पडेगा. इत्यादि महा शोक सागर में डूबे हुये आयुष्य समाप्त करते हैं. बारे देव लोक से उपरके देवता अहमेंद्र [स्वता मालक] हैं. वोभी क्षुधा मृत्युकी पीडा वेगेरे मानासिक दुःख भोगवते हैं पांच अनुत्तर विमान छोड बाकी सब स्थान में अप ना जीव अनंत वक्त उपजके मर आया ९, सब तरह की विटंबना भोगव आये हैं.

यह चार गतिके दुःख का संक्षेप में वरणन् किया. नरक निगोद के दुःख अपार हैः ऐसा यह सं सार दुःख से भग है. वो सर्व दुःख अपने जीवने अ नंत वक्त सहन किये हैं.

गाथा—धी धी धी संसारे, देव मरिउण जं तिरिय होइः
मरिउणं राय राया, परि पचइ निरिय जालाए.

वैराग्य शतक-जैन.

अर्थात्—किसी को एक वक्त, किसी को दो व क्त, धिक्कार दी जाती है, परतु इस संसार को तीन वक्त धिक्कार है, क्यों कि देवता जैसे महा ऋद्धि म हा सौख्य के भुक्ता मरके पृथ्वी, पाणी, वनास्पती,

आदि तिर्यंच योनि मे उत्पन्न होते हैं. और राजाओं के राजा चक्रवर्ती-महाराजा मरके नरक में चले जाते हैं.

जरा आश्चर्य तो देखीये! जो चक्रवर्ती मरके उनका जीव नरकमे गया हे और उनका शरीर यहां पडा हे. उसका संस्कार (श्मशाण मे लेजाणे की क्रिया अर्चना,)शृंगार वगैरे करते हैं, और नरक में उनके जीवपे यम देव ताडन मारन् करते हैं. देखीये! क्या शरीरके हाल, और क्या जीवके हाल!!

महान पुण्योदय से मनुष्य जन्मादि सामग्री का दुर्लभ लाभ को तूं प्राप्त हो, भव भ्रमण से छूंटने का उपाय कर. अनंत अक्षय अव्यबाध मोक्ष सुखको प्राप्त करना चाहिये.,

यह धर्म ध्यान ध्याता की चार अनुप्रेक्षा [विचारना] का स्वरूप कहा. इस में रमण करने से धर्म ध्यान में एकाग्रता प्राप्त होती है.

धर्म ध्यानस्य-पुष्पफलम्.

इस धर्म ध्यान में एकांतता न होने से, अर्थात्-पुद्गल परिणती की मिश्रता युक्त विचार और प्रवर्ती होनेसे संपूर्ण कर्म की निर्जरा न होते, पुण्य

की अधिकता होती है उस पुण्य फल को भोगवने के लिये ज्यों ज्यों ध्यान की अधिकता होय त्यों त्यों उंच स्वर्ग में निवास मिलता है.

स्वर्ग (देव) लोक में उत्पन्न होने की सेज्या (पलंग) है, उसपे एक देवदुष्य नामे वस्त्र ढका हुवा होता है, यहांसे शरीर छोडे पीछे धर्म ध्यानी का जीव उस सेज्या में जाके उत्पन्न होता है, और एक मुहूर्त पीछे पूरी प्रजा बांधके उस वस्त्रको ओढ (शरीर को ढक) के बैठा होजाता है; उसी वक्त उनके आज्ञाकित देव देवीयों×वहां अत्यन्त हर्ष उत्सहाके साथ एकत्रहो हाथ जोड, अत्यंत नम्रता से पूछते हैं:- अपने क्या करनी करी, जिससे हमारे नाथ हुये? तब वो देव*अवधि ज्ञान से पूर्व भवका हाल जान और देव लोककी ऋद्धिसे चकित हो, अपने पूर्वले सम्बधीयोंको चेताने उत्सुक होता है; तब वहांके देव कहते हैकि एक मुहूर्त मात्र हमारा नाटक देखके फिर इच्छित कीजीये, वो सामान्य नाटक करते हैं उसमें यहांके दो हजार वर्ष बीत जाते हैं, जितनेमें यहांके सम्बंधीयों मरखप जाते हैं; और वोभी प्राप्त सुख में लुब्ध हो जाता है.

× दूसरे देवलोक के उपर देवी नहीं है.

* देवता में अवधि ज्ञान जन्मसे स्वभाविकही होता है.

१ बारे देवलोकके उपरके सर्व देव अहमेंद्र हैं, अर्थात्-सव बरोबरीके हैं छोटा बड़ा कोइ नहीं है. इस लिये वहां नाटक चेटक करनेवाला कोइ नहीं है. और बारमें स्वर्गके उपर जैन शुद्धाचारी विपुल ज्ञानी साधु ही जाते हैं. वो पहिलेसेही अल्प मोही होते हैं. इस लिये ज्ञान ध्यान सिवाय अन्य तर्फ रुचीही मंद होती है. वो सावधान होतेही पूर्व सम्पादन किये हुये ज्ञान के ध्यानमें मशगुल हो जाते हैं जिससे जिनोका उत्कृष्ट ३३ सागरोपम का आयुष्य परमानंद परम सुखमें व्यतिक्रांत हो जाता है.

१ वहांसे आयुष्य पूर्ण कर मनुष्य होते हैं कि जहां दशबोलका*जोग होता है. ऐसे मनुष्य देवत के जघन्य ३ और उत्कृष्ट १५ भव या संख्यात भव कर शुक्लध्यानी हो मोक्ष प्राप्त करते हैं.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराजके सम्प्रदायके बाल ब्रह्मचारी मुनी श्रीअमोलख ऋषिजी रचित ध्यान कल्पतरुकी धर्मध्यान नामक तृतीय-शाखा समाप्तम्.

*१क्षेत्र, घर, धन, पशू-गाँवादि, नोकर. २-३ मित्र और न्यातीं बहुत होय, ४ऊंच गोत्र, ५ सुन्दर शरीर, ६ रोग रहित, ७ बुद्धि तीक्ष ८ यशवंत ९ विनयवंत (मिलापु), १० पराक्रमी-बलवंत. यह १० बोलका योग जिसे उदय होय वहां पुण्यात्मा अवतार लेते हैं.

उपशाखा-"शुद्धध्यान"

शुभेन्द्रिय मनोध्याता, ध्येयं वस्तु यथास्थितम्
एकाग्र चिन्तनं ध्यानं, फल सम्वर निर्जरा॥१॥

अर्थ-शुद्ध ध्यानके करने वाले-पंच इन्द्रिय और मनको स्ववश-अपने आधीन कर, शुद्ध वस्तु की तर्फ एकाग्रता अभिन्नता लगाके अखंडित रहे ध्यान ध्याते हैं. इनका फल सम्वर (आगामिक पापका निरुंधन) और निर्जरा (पूर्वोपार्जित पापका क्षय) होता है; यों सर्व पापका क्षय-नाश होनेसे मोक्षके अनंत अक्षय अव्याबाध सुखकी प्राप्ति होती है; इस लिये मुमुक्षुओंको शुद्धध्यान की विशेष आवश्यकता है. सो ही यहां कहता हूं.

उपरोक्त श्लोकमें शुद्धध्यान करनेके लिये इन्द्रियों और मनको निग्रह करनेकी जरूर बताइ, सो इन्द्रियोंभी मनके स्वाधीन है. उत्तराध्ययन सूत्रमें कहा है-"एगे जीए जीए पंच" अर्थात् एक मनको जीतने से पंच इन्द्रियों वश हो जाती है. और भी कहा है:-

कि="मनएव मनुष्याणाम् कारणं बन्ध मोक्षयो" अर्थात्–कर्मसे बन्धने वाला और छोडने वाला मनही है. * प्रसन्नचंद्र राज ऋषिकी तरह. इस लिये मन को जितने की अवश्यकता है:–

---

* राज ग्रही नगरीके श्रेणिक महाराजा. गुणासिल बाग में विराजमे हुवे श्रीमहावीर भगवन्त के दर्शन करनेक निकलेथे, मार्गमें एक प्रसन्न चन्द्र नामे राज ऋषिको रूपे के महाताप में अडोल ध्याना रुढ देख आश्चर्यचकित हो श्रीमहावीरस्वामी को नमस्कार कर प्रश्न पुछा कि-महाराज दुष्कर तपके करने वाले साधुजी आयुष्यपूर्ण कर कहां जायेंगे? भगवंत फरमायाकि जो–अभी मरेतो पहेली नरक में, श्रेणिक–हैं. पहली नरक, भगवन नहीं दुसरि नरक में, श्रेणि–हैं दुसरी! भगवंत नहीं तीसरी. यों श्रेणिक आश्चर्यमें आ प्रश्न करता गया और भगवंत चौथी पांचवी छट्ठी जाव सातमी नरक तक फरमा दिया. श्रेनिकनें फिर आश्चर्य हो पुछा ऐसे महा मुनी सातमी नरक मे जाय! तब भगवंतने फरमाया नहीं छठी. यों श्रेणिक आश्चर्य पर पुछता गया और भगवंत पांचमी, चौथी. तीसरी, दुसरी, पहली भवनपति, व्यंतर, जोतिषि, देवलोक, ग्रीयेक, और अनुत्तर विमान, का नाम फरमानेही देव दुंदभीका शब्द सुनाया. तब श्रेणिकने पुछा महाराज, यह दुंदुभी क्या बजी? भगवंतने फरमायाकि उन प्रसन्न चन्द्र राजऋषीको केवल ज्ञानकी प्राप्ति. हुइ! यह सुन श्रेणिक राजा भौंचक हो अर्ज करता हो

श्लोक—असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥भगवद्गीता.

अर्थ—श्रीकृष्ण कहते हैंकि—हे अर्जुन! मनको वश करना बहुतही मुशकिल है. क्यों कि मन अती चपल

पूछने लगा महाराजजी बडी ताजुबकी बात हैकि अबी तो सातमी नरक फरमातेथे और अबी केवल ज्ञान प्राप्त होगया! इसका कारण क्या? भगवंत-तुमारे साथके एक सूभटने उन मुनिको देखके कहा कि यह साधु बडा निर्दयी है, छोटेसे बच्चेपे राजभर डाल आप साधु बन गया और बेचारे उस बच्चेको परचक्री सता रहा है. यह सुनतेही राजऋषि क्रोधातुर हो उस परचक्रीके साथ मनोमय संग्राम करने लगे. (उस वक्त तेने पूछना सुरु किया था) अनेक शैन्यका संहार कर शत्रुको मारने चक्र लेनेके लिये शिरपे हाथ डालाके [उस वक्त सातमी नरक के दलीय भेले किये थे.] रुंड मुंड मस्तक पाया! उसी वक्त चौंक गये भान आया कि अरे! मैने साधु होके यह क्या जुलम किया? यों पश्चाताप करने लगे. [उस वक्त संचित कर्मके दलिये खपने लगे] त्यो त्यों ऊंच चडते गये और शुद्ध विचार में एकाग्र होनेसे घन घातिक कर्म नष्ट होगये, तब केवल ज्ञान केवल दर्शनकी प्राप्ति होगइ,(शुद्ध ध्यान में इतनी प्रबलता है) यह सुण श्रेणिक राजा बडे खुश होगये, भगवंतको और उन राजऋषि वगैरे साधुयोंको नमस्कार कर निजस्थान गये.

है × परन्तु निरंतर अभ्याससे और वैराग्यसे मन वश में हो सक्ता है.

किसीसे भी पूछ देखो कि-भाइ! तुम मनको वश कर सक्ते हो? तो वो येही कहेगाकी -बहोतही उपाय करते हैं, परन्तु पापी मन वशमें नहीं रहताहै क्या करे! ऐसे मनको वशमें करनेका सहज उपाय इस श्लोकमें कहा है कि-निरंतर अभ्यास से जो वैराग्य प्राप्त करता है, वो मन वशमें कर सकता है.

पंच इन्द्रियोंके छिद्रों कर जो शब्दादि पुद्गल का प्रवेश होते है, उन्हे ग्रहण कर मन राग द्वेषमय परिणम सुखी दुःखी बनता है. उन राग द्वेषमें परिणमते हुये मनको रोकना, उसीका नाम वैराग्य. राग द्वेष परिणतीमें परिणमनेका मनका अनंत कालका स्वभाव पडरहा है. उससे एकाएक मन रुकना बहुत ही मुश्किल है. इस लिये मनको रोकनेका अभ्यास करना चाहीये. जैसे जोशमय आते नदीके पूरको कोइ एकदम रोकना चाहे तो कदापि नहीं रुक सकेगा! परन्तु उसे पलटानेका जो प्रयत्न करेतो हो सके

× 'अतिचंचल मातिसूक्ष्म सुदुर्लभ वेगवत्त्या चेतः'-हेमचंद्राचार्य कहते हैंकि-यहमन् अतीहीचंचल हांके अतीही सूक्ष्म है. इस लिये इसकी गतीको रोकना मुशकिल है.

वस वेसेही मनके वेगको पलटानेके प्रयत्नकी अभ्यास की आवश्यकता है.

वो अभ्यास ऐसा चाहीये कि-जिन २ शब्दादि विषय मय पुद्गलोंमें मन परिणमें उसीही वक्त उन पुद्गलोंके स्वभाव गुण और फलके तर्फ मनको फिराना कि-यह क्षणिक और कटु फलद्रुप हें. ऐसा हर वक्त अभ्यास रखनेसे मन किसी कालमें इन्द्रियोंके विषय से निवृत्ती कर सकेगा.

और फिर ध्यान में मनको स्थिर करने एकाग्रता का अभ्यास करना. एकाएक मन एकाग्र होना मुश्किल हे; परन्तु अभ्यास से वोभी हो सक्ता हे; जो जो काम अपने नित्य नियमिक हें अव्वलतो उन्हीं में एकाग्रता करना चाहीये. प्रतिक्रमण करते होय तो उस प्रतिक्रमणके शब्दार्थादिमेंही मनको गडादेना. उस विचारको छोड अन्यतर्फ नहीं जाने देना ऐसेही सझ्झाय-स्वाध्याय करती वक्त स्वाध्यायमें, व्याख्यान देती वक्त व्याख्यानमें, गोचरी व आहार करती वक्त आहार में इत्यादि सर्व दिन रात्री सम्बधी कार्यमें सदा सर्वकाल क्षणंस रहित मनकी एकाग्रता का अभ्यास रखना. यों कितनेक कालतक करते २ वो सहजही एक वस्तुपे टिकने लग जाता हे, फिर

हरके इष्ट पदार्थपे मनकी एकाग्रता हो सक्ती है. यों अभ्यास युक्त वैराग्य मनको अडोल ध्यानी बनाता है.

यस्तव विज्ञानवान् भवत्य मन्स्कः सदाऽशुचिः॥
नसततपद माप्नोतिस सारंच धिगच्छाति ॥१॥
यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदाशुचिः॥
स्तुत्यद माप्नोति यस्माद भूयोनजायते ॥२॥

अर्थ—जो विवेक रहित मन के पीछे चलता हैं वो सदा अपवित्रही रहता है, और शान्ति पदको प्राप्त नहीं होता है. अनंत संसार में परिभ्रमण करता है. ॥१॥

और जो विवेक संपन्न मन को जीत ने वाला निरंतर शुद्ध भाव युक्त होता है. वो उस परमानन्द पदको प्राप्त होता है कि पुनः संसार में अवतार धारन करना नहीं पडे. ॥२॥

अब वो एकाग्रता तथा ध्यान किस वस्तुका करना सो कहता हूं.

प्रथम प्रतिशाखा-"आत्मा"

सूत्र—जे एगं जाणइ से सव्वं जाणेइ;
जे सव्वं जाणेइ, से एगं जाणइ.
आचारांग अ. ३ सूत्र २००.

अर्थ—जो एकको जाणेगा, वो सबको जाणेगा और जो सबको जाणेगा वोही एकको जाणेगा!*

वो एक पदार्थ कौनसा है? और कैसा है? कि जिन्को जाणने से सर्वज्ञता प्राप्त होवे! उसका स्वरूप यहां दर्शाते हैं:—

वो "आत्मा" है. आत्माके ३ भेद किये हैं. बाहिरात्मा, २ अंतर आत्मा, और ३ परमात्मा.

प्रथम पत्र—"बाहिरात्मा"

१ बाहिर आत्मा—जो यह प्रत्यक्ष हाडका पिंजर रक्त मांसादि धातुओंसे भरा हुवा, और रंगी बेरंगी चमडी करके ढका हुवा. मनुष्य या तिर्यंच (पशुवों) का शरीर; तथा अन्य अशुभ पुद्गलों (वस्तुओं) से बना, नरक निवासी जीवोंका शरीर; और शुभ

*श्लोक—एको भावः सर्वथा येन दृष्टाः, सर्वे भावाः सर्वथा तेन दृष्टाः सर्वे भावाः सर्वथा येन दृष्टा एको भाव सर्वथा तेन दृष्टाः

अर्थ—जिनने एक पदार्थ को प्रति पूर्ण रूपसे देखा, उनने सर्व पदार्थ प्रति पूर्ण रूपसे देखे; और जिनने सर्व पदार्थ पूर्ण रूप से देखे उनने एक पदार्थ पूर्णसे देखा.

दुहा—निज रूपे निज वस्तु है, पर रूपे परवस्त,
जिनने जाणा पेच यह, उनने जाणा समस्त॥

पुद्गलोंसे बना हुवा देव लोक निवासी जीवोंका शरी र, उस बहिर आत्मा कहते हैं. अज्ञानी जीव उसेही आत्मा मान बैठे हैं. और अपने शरीर को हाथ लगा कहते हैं:- मैं गोरा हूं. कालाहूं, लम्बाहूं, छोटाहूं, जाडाहूं, पतलाहूं, मेरा छेदन भेदन होता है, मेरे अंगोपांग दुःखते हैं, रखे मेरी आत्माका विनाश होवे और वो इन्द्रियोंके शब्दादि विषयों के पोषण में मजा मानते हैं, मैं स्त्री हुं, पुरुष हूं, नपुंसक हूं इत्यादि विचारसे परस्पर भोगमें आनंद मानते हैं, हा हा करते हैं. मतलबकी जो शरीरको आत्मा माने, शरीर के सुख दुःख से अपना सुख दुःख मानें. शरीरकी पुष्टा इसे हर्ष, और कष्टसे दुःख मानते हैं; वेही बहिर आत्माको आत्मा मानने वाले अज्ञानी जानना ● शुद्ध ध्यान के ध्याता, इस अनादी भाव को मिटाने देहाध्यास छोडने, परिणामोंकी विशुद्धि करने, विचार करे

●श्लोक-देहात्म बुद्धिजपापं,नतदगोवध कोटिभिः
आत्मा अहंबुद्धिजं पुण्य, नभूतो नभविष्यति ॥१॥
अर्थ-शरीरहीको जो आत्मा मानते हैं. उन्हे क्रोडों गाइयों के वध करनेवालेसेभी अधिक पाप लगता है. और मैं आत्माही हूं ऐसे विचारवालेको जितना पुण्य होता है वो पुण्य त्रिकालके पुण्यसे भी अधिक है.

कि यह शरीर पुद्गलों के संयोग से निपजा है. श्री उत्तराध्ययनजी में फरमाया है कि.

नो इंदियग्गेज्झ अमुत्त भावा,अमुत्त भावा विय होइनिच्चं
अज्झत्थ हेउं नियय स्सवंधो, संसार हेउंच वयंति बन्धं॥१

अर्थ—जो मूर्ती पदार्थ है वोही इन्द्रियों से ग्रहण किये जाते हैं. और जो पदार्थ इन्द्रियों से ग्रहण किये जाते हैं वो जड होते हैं और चैतन्य तो अमूर्ती (अरूपी) है. उनको इन्द्रियों ग्रहण नहीं कर सक्ती हैं इसलिये वो अजड अविनाशी नित्य है, अनादि देहा ध्यासके कारण से जड और चैतन्य सम्बंध से एकत्व रूप होरहा है, जैसे दूध और घृत. यह जो जडका और चैतन्य का सम्बन्ध है, सोही संसार का हेतू है. इस अनादि सम्बन्ध का निकंद करने, श्री आचारांग सूत्र मे फरमाया है:—जे एगं णामे, से बहुणामे, जे बहूणामे,से एगंणामे." अर्थात्—जो एक मोह (ममत्व) को नमावे सो बहूतो कों (सर्व कर्मोंको) नमावे, और जो बहूत (सर्व) को नमावेगा सोही एक (ममत्व) को नमावेगा. और 'जेएगं विगिंचमाणे, पुढोवि गिंचइ, पुढो विगिंचमाणे, एगं विगिंचइ.' अर्थात्—जो एग मोहको खपाते हैं वो सब (कर्मों) को खपाते हैं; और जो सर्वको खपाते हैं वोही एक

को खपा ते हैं क्षय करते हैं. इत्यादि विचार से श-रीरसे आत्म बुद्धिका त्याग कर. ममत्व उतार अंतर आत्माकी तर्फ लक्ष लगावे.

द्वितीय पत्र-"अंतरात्मा"

२ अंतर आत्मा—अंतर आत्मा में रमण करते हुये ध्यानी विचार ते हैं, मैं जिसे सम्बोधन करता हूं सो फक्त लोकीक व्यवहार से करता हुं. क्यों कि आत्मा तो निष्कलंक है, इसे कौन संबोध रक्ता है. आत्मातो आत्म मय पदार्थ को ही ग्रहण करता है, अन्यको नहीं अन्यको तो अन्यही ग्रहण करते हैं. ऐसा भेद विज्ञान (पुद्गल और चैतन्यकी भिन्नता का जिन्हे होवे.) अंतर (निजात्म स्वरूप) की तर्फ लक्ष लगे. वो अंतरात्मा. जैसे अन्धकार में स्थंभका मनुष्य भाष होता है, और अन्धकारके नाश होनेसे वो यथातथ्य स्थंभका स्थंभही दिखता है. तब प्रथमका भ्रम नाश होता है; तैसेही भेद विज्ञान अन्तर सुर्य का प्रकाश होनेसे शरीर और आत्माका यथार्थ भाष होता है.

"अंतर आत्म विज्ञानीका विचार"

१ जो स्त्री पुरुषादिक की पर्याय है, वो कर्मों

का स्वाभाव है; चैतन्यका नहीं. चैतन्य तो निर्वेदी, निर्विकारी है. तो-फिर वीकारीक वस्तुओंको देख. विकारी क्यों होता है,

२ जो शत्रुता मितता के परिणाम होते हैं, सो ही कर्म स्वभाव है. निश्चयमें तो "अप्पा मित्तममित्तं च" जो अकृतसें निवर्ते तो अपणी आत्मज मित्र है, नहीं तो शत्रुताका साधन तो होताही है. इस विचारसे शत्रु मित पर व अच्छी बुरी वस्तूपर सम परिणामी बने. राग द्वेष न करे.

३ इतने दिन में तो बालककी तरह अनेक चेष्टा करता-सो अन्यका प्रेरा हुआ करताथा, न की चैतन्यका. क्यों कि चैतन्य तो अनंत ज्ञानादि शक्तिका धारक है. वो किसी प्रकार चेष्टा (ख्याल तमाशा) करे ई नहीं.

४ इतने दिन अन्य पदार्थ सच मालम पडतेथे, अब वोही स्वप्न और इन्द्र जाल जेसे मालम पडनेलगे फिर इसकी प्रतित का रही. और असत्य को सत्य जाने सोही मिथ्यात्व.

५ जो परमात्माको अविनाशी कहते हैं. वो मेंही हूं. फिर जंगम और स्थावर से मेरे विनाश होवे यह वेमही खोटा है. "मरे सो और, और में और"

इस विचार से निडर बने.

६ हा! हा! अश्चर्य कि–जिन्ह कामोंसे या कारणोंसे, अज्ञानीयों कर्म का बन्ध करते हैं, उन्ही कामोंसे ज्ञानी कर्म बन्ध तोड निर्मुक्त होते हैं. इस विचार से सबसे ममत्व घटावे.

७इतने दिन संसारमें जो मैंने रूपोकी विचित्ता पाया, सो 'भेद विज्ञान' के अभावसेही पाया; अब वैसा नहीं बनूं.

८ यह जग तारक वाहण (झाज-स्टिमर) सब के सन्मुख से चले जाते हुयेभी, अनंत जीवों डूब रहे हैं. इसका एक मुख्य कारण, "भेद विज्ञानकी अज्ञानता ही है." अब मैं तो उससे छूटा होवुं!

९ क्या मजा है! यह आत्मा आत्माके द्वाराही पहचानी जाती है. इसे चशमें या दुर्बीन की कुछ जरूरही नहीं. यो आत्मा देख.

१० विशेष आश्चर्य तो यह है कि–जो विषय मय पदार्थ अज्ञानियो को प्रीति उत्पन्न करने वाले होते हैं. वोही ज्ञानीयोंको अप्रिय दुःख दायक लगते हैं; और संयम तपादिक अज्ञानीयों को अप्रीति दुःख उत्पन्न करने वाले भाष होते हैं. वोही ज्ञानीयों को सुखानंद दाता भाष होते हैं.

११ "वोही हूं मैं, वोही मैं हूं" ऐसी एकांत भावना कर्ता हुवा यह आत्मा उसी पदको प्राप्त होता है. "अप्पासो परमप्पा" अर्थात आत्म है सोही परमात्मा है ? * उसी पदको प्राप्त होता है. और इससे ज्यादा सद्बोध कौनसा.

१२ मैंने मेरीही उपासना करनी सुरु करी तो फिर मुझे अन्य उपासनाकी क्या जरूर! क्यों कि जैसा परमात्मा है, वैसाही मैं हूं. ×

१३ भेद विज्ञानी महात्माको दूकर तप और महान उपसर्गभी किंचित मात्र खिन्न नहीं कर सक्ते हैं, चला नहीं सक्ते हैं.

१४ अंतर आत्माका ध्यान रागादि शत्रुके क्षयसेही होता है.

---

* अन्य मती भी कहते हैं—आत्मार्चीनेसो परमात्मा.

× प्रीति सीन पानी कोउ । प्रेम से न फूल और ।
चित्त सो न चंदनन । स्नेहसो न सेहरा ॥
हृदयसो न आसन । सहजसो न सिंहासण ।
भावसो न सुन और । सुन सो न गेहरा ॥
शील सो स्नान नाहीं । ध्यान सो न धूप और ।
ज्ञान सो न दीपक । अज्ञान तमको हरा ॥
मन सो न माला कोउ । सोहं सो है जाप नाहीं ।
आत्मासो देव नाहीं । देह सो न देहरा ॥१॥

१५ जो भ्रम रहित हो, जीव और देहको अलग २ समजेगा, वोही कर्म बन्धन से छूट मोक्ष प्राप्त करेगा. रागादि शत्रु दूर हुये की आत्मा दिखी.

१६ अज्ञान और विभ्रमके दूर होनेसेहीं आत्म तत्व प्राप्त होता है.

१७ जिस कायको प्राण प्यारी कर रक्खी थी, अज्ञान दूर होनेसे उसीही कायको तप संयमादि में गालने लगते है.

१८ आत्मा ज्ञान बिन कोरे तप करनेसे दुःख मुक्त नहीं होता है.

१९ बाहिर आत्मा वाला रूप, धन, बल, सुख इत्यादि का अहो निश ध्यान करता है. और अंतर आत्मिक इस से विरक्त रहता है. और अपनी आत्मा के अंदर रहे अपनेही परिवारके साथ रमण करता है.

२० अज्ञानी फक्त बाह्य त्यागसे सिद्धी मानते हैं, और ज्ञानी बाह्य अभ्यंतर दोनो उपाधीयों त्याग नेसे सिद्धी मानते हैं.

धैर्य-तात, क्षमा-जननी, परमार्थ-मित्र, महारुची-मासी॥
ज्ञानसांप्रत,सुता-करुणा,मति-पुत्रवधु,समता-प्रतिभासी
उद्यमदास,विवेक-सहोदर,बुद्धि-कलत्र,मोहोदय-दासी॥
सबकुटुंब सदाजिनके हिगयों,मुनिको कहीये ग्रहवासी

२१ अन्तरंग ज्ञानी व्यवहार साधने वचन, और कायसे अन्यान्य कार्य करते भी मनसे एकांत अंतर आत्मामें ही लीन रहते हैं.

२२ आत्म साधन करती वक्त, जो उपसर्ग, व दुःख होता है. उसे अध्यात्मी दुःख नहीं समजते हैं* बल्के सुखही समजते हैं. जैसे रोगी कटु औषध के स्वादको न देखता गुणहीका गवेक्षी होता है.

२३ ज्ञानीको आत्म साधन सिवाय अन्य कामकी फुरसतही नहीं मिलती है.

२४ परमानन्द आत्मामें ही है. बाहिर क्या ढुंढते हो?

२५ इच्छा है सोही संसार है, इच्छा त्यागसे संसार सहज छुटता है.

२६ जैसे पहरे हुये वस्त्र जीर्ण होते, वेरंगी होते या नष्ट होते शरीर जीर्ण, वेरंगी, और नष्ट नहीं

---

*श्लोक—नच छिदन्ति शास्त्राणि, नैनं दहतिपावकः ॥
नचैनक्लेदयं ऽतपो, नशोषयति मारुतः ॥१॥
अर्थ—इस आत्माको तीक्ष्ण शस्त्र छेद शक्ता नहीं है, प्रचन्ड अग्नि जला सक्ता नहीं है, पाणी गल सक्ता नहीं है, और वायु(पवन)सुकासक्ता नहीं है; तो फिर भय (डर) ही किसका? अर्थात् कि सीका भी नहीं.

होता है, तैसेही शरीर और जीव जानो.

२७ अज्ञानी, मंद बुद्धिके कारण से पर वस्तुमें मजा मानते हैं, और ज्ञानी भ्रम नष्ट होनेसे अन्तर आत्म मेंही आनन्द मानते हैं.

२८ स्थिर स्वभावीज मोक्ष पाते हैं, स्थिरता ही सम्यग दर्शनकी ऋद्धि है.

२९, लोकीक प्रेमसे वचनालाप, वचना लापसे चित्त विभ्रम, चित विभ्रम से विकलता, विकलतासे चंचलता, यों एक से एक दुर्गुणोंकी वृधी जान, लौकिक प्रेम छोड, लोकोत्तरसे लगावे.

३० जब ज्ञान होता है! तब जगत बावला (गहले) सा दिखता है. और जब ध्यान होता है, तब वस्तुका यथार्थ स्वभाव भासने लगता है, उससे जैसा है, वैसाही देखता है. अर्थात् राग द्वेष नष्ट होजाता है*

---

* राग उदय भोग भाव लागत सुहाय तैसे।
विनाराग ऐसे लागे जैसे नाग कारा है॥
रागहीसे पाग रहे मनुष्य सदैव जीव।
राग गये आवत गिल्यानी होत न्यारा है॥
रागहीसे जगरीत झूठी सब सत्य जाने।
राग मिटे सूजत असार खेल सारा है॥
रागी वीन रागीके विचार में है बडो भेद।
जैसे भट पथ काहू काहूको पयारर है.॥१॥

३१ आत्मा आत्माके द्वारा ऐसा विचार करे कि मैं आत्माही हूं. शरीरसे भिन्न हूं. ऐसा द्रढ निश्चय होने से फिर स्वप्नेमेंभी शरीर भावको प्राप्त न हो. जिस से आत्म सिद्धी होगा.

३२ जाति और लिंगकी अहंता त्यागनेसेही सिद्धि होती है.

३३ जैसे वत्ती दीपकको प्राप्त हो दीपक रूप बनती है. तैसेही आत्मा सिद्धका अनुभव करनेसे सिद्ध रूप होती है..

३४ आत्माको आराधने योग्य आत्माही है; अन्य नहीं. आत्मा आत्माका आराधन करनेसेही परमात्म बने है. जैसे काष्टसे काष्ट घसनेसे अग्नि होवे.

३५ अपन मर गये, ऐसा स्वप्न आनेसे अपन मरते नहीं हैं, तैसेही जाग्रत अवस्थामेंभी आप के मरनेसे आत्मा मरती नहीं है.

३६ ज्ञानी अवसर (वक्त), शक्ति, विभाग, अभ्यास, समय, विनय, स्वसमय (स्वमत) परसमय, अभिप्राय, इत्यादि विचार कर इच्छा रहित हो प्रवृतते हैं.

३७ शरीर जैसा बाहिर असार है, वैसा अंदरही है.

३८ जहां ममत्व नहीं है. वोही मुक्ति-मार्ग है.

३९ लोकका स्वरूप जाण, लोक संज्ञासे दूर रहना

४० परमार्थ दर्शी मोक्ष मार्ग शिवाय अन्य स्थानमें रती (सुख) नहीं मानते हैं, वोही मोक्ष पाते हैं.

४१ * केवली भगवानको, न बन्ध है न मोक्ष है.

४२ परमार्थ दर्शीको कुछभी जोखमे नहीं है.

४३ अज्ञानी सदा निद्रिस्थ है, परमार्थी सदा जागृत है.

४४ जो शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्शकी सुन्दरता असुन्दरतामें सम परिणाम रखते हैं, वो ज्ञान और ब्रह्म (निर्विकल्प सुख) को जाण सक्ते हैं, और वोही लोकालोक को जाणते हैं.

४५ कर्मको तोडने सेही, पवित्र आत्माके दर्शन होते है.

४६ जो अपनी तर्फ देखता है, वोही सर्व तर्फ देखता है.

४७ जो क्रोधको छोडेंगे, वो मानको छोडेंगे, जो मानको छोडेंगे, वो मायाको छोडेंगे, जो मायाको छोडेंगे, वो लोभको छोडेंगे, जो लोभको छोडेंगे वो रागको छोडेंगे, जो रागको छोडेंगे वो द्वेषको छोडेंगे, जो द्वेषको छोडेंगे, वो मोहको छोडेंगे, जो मोहको

---

* आचारांग सूत्र १३० [illegible]

छोडेंगे, वो गर्भसे छूटेंगे, जो गर्भसे छूटेंगे वो जन्मसे छूटेंगे, जो जन्मसे छूटेंगे वो मरणसे छूटेंगे. जो मरणसे छूटेंगे, वो नरक से छूटेंगे, जो नरकसे छूटेंगे वो तिर्यंचसे छूटेंगे. जो तिर्यंचसे छूटेगे, वो सर्व दुःख से छूट परम सुखी होवेंगे.

४८ आत्म ज्ञान विन. शास्त्र ज्ञान निकम्मा है

४९ इन्द्रियों के सुखका त्याग कर, आत्म ज्ञान प्राप्त करने ऐसा नहीं जानना कि-इन्द्रियोंके सुख छूटनेसे दुःखी बन जाता है, क्यों कि आत्म ज्ञानकी सिद्धि होने अमृत मयही संपूर्ण बन जाता है. और उस अमृतपान से जालम जन्म मरणका दुःख दूर हो जाता है. जिससे परम सुखी बन जाता है.

५० हे आत्मन्! आत्माके साथ निश्चय करकि मैं अतिन्द्रिय हूं, अर्थात मेरे इन्द्रि नहीं है, तथा मैं इन्द्रियोंके गोचर आवु ऐसा नहीं हूं. तथा इन्द्रियोंके शब्दादि विषय हैं सो आत्मामें नहीं है. इससे अतिन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियातितहूं .और अनिर्देशहू, अर्थात् वचन द्वारा मेरा वर्णन नहीं हो सक्ता, इस लिये वचनातीत हुं ऐसेही मै अमुर्ती हूं. चैतन्य हूं. आनंद-मय हूं. इत्यादि विचारले. निज स्वरूपमें निश्चल होवे

५१ हे. आत्मन्! आत्माके साथ ऐसा विशुद्ध

निर्मल अनुभव कर कि यह आत्मा समस्त लोकके यथार्थ स्वरूप को प्रगट करने वाला अद्वितीय सूर्य है. विश्वमें सामन्य अग्निसे दीपकका प्रकाश अधिक गिनते हैं, दीपकसे मशालका, मशालसे ग्यासका और ग्याससे विजलीका प्रकाश अधिक पडता है. इन कृत्रिम प्रकाशसे स्वभाविक चन्द्रमा का प्रकाश अधिक है, और चन्द्रके प्रकाशसे सूर्यका प्रकाश अधिक लगता है. परंतु आत्म ज्ञानकें प्रकाश तुल्यतो कोटी सूर्य भी प्रकाश नहीं कर सक्ते हैं, अन्य दीपका दिक के प्रकाशको वायु वगैरे धातिक वस्तुका और चंद्र सूर्य को राहू वद्दल वगैरे के अच्छादन होनेसे तथा अस्त होनेसे प्रकाशका नाश होता है. परंतु आत्म ज्योतिको मेरु पर्वतका हलाने वाला वायुभी नहीं बुज सक्ता है. और न बद्दल या राहू उसे अच्छादन (ढकन) दे सक्ते हैं. आत्म जोति यथा रूप प्रकाशित होनेसे तीन लोकके सुक्ष्म वादर चराचर सर्व पदार्थ एक वक्त एक ही समय मात्रमें भाप होने लगते हैं, तब आत्मा परमानंदी बनता है.

इत्यादि विचार में प्रवर्ते सो अंतर आत्मावाले जाणना. अंतर अत्माको प्राप्त हुवे हीं परमात्मा होतेहैं.

तृतीय पत्र-"परमात्मा"

३ "परमात्मा" सर्व कर्म रहित अनंत ज्ञानादि अष्ट गुण सहित सिद्धि (मुक्ति) स्थानमें संस्थित अजरामर अविकार, सिद्ध परमात्मा हैं, वोही परमात्मा हैं.

पुष्पम-फलम्

यह तीनही आत्माका ध्यान, विशेषता से अप्रमत्त मुनी को होता है. क्यों कि अप्रमत्त पणाही ध्यानकी विशुद्धता, उत्कृष्टता करता है. उसके जोर से महामुनि आगे गुणस्थान रोहण सुखे २ कर, सर्व कर्मको खप.के सिद्धस्थान प्राप्त कर सक्के हैं.

द्वितीय शाखा-"उपध्यान" चार.

श्लोक-पिण्डस्थंच पदस्थंच, रूपस्थं रूपवर्जितम्
चतुर्द्धा ध्यान माम्नातं, भव्यरा जीव भास्करे
ज्ञानार्णव अ. ३६

अर्थ—१ पिण्डथ ध्यान. २ पदस्थ ध्यान. ३ रूपस्थध्यान. और ४ रूपातीत ध्यान. इन ४ ध्याके ध्यानेसे भव्य जीवों कैवल्य ज्ञान रूप भास्कर (सुर्य) को प्राप्त कर सक्के हैं. अब इनका अर्थ—

श्लोक-पदस्थं मंत्र वाक्यस्थं, पिण्डस्थं स्वात्म चिन्तनम्
रूपस्थं सर्व चिद्रूपम्: रूपातीतं निरञ्जनम् ॥१॥
गरुड़ व मंजर.

अर्थ—१ मूल मंत्राक्षारोंका स्मरण करना, सो पदस्थ ध्यान.

२ स्व आत्म के पर्यायका विचार करना सो पिण्डस्थ ध्यान.

३ चिद्रूप अर्हंत भगवंतका ध्यान करना सो रूपस्थ ध्यान.

और ४ निरंजन निराकार सिद्ध परमात्म का ध्यान करना सो रूपातीत ध्यान.

प्रथम पत्र—पदस्थ ध्यान.

१"पदस्थ ध्यान" —मन्त्र (मनको मस्त करे ऐसे पद (वाक्य) को इस जक्तमें मतांतरों की भिन्नताम इष्ट देवों विषय श्रद्धा में भी भिन्नता हो गइ है. इ- सी सबब से भिन्न २ मतावलम्बीयों, भिन्न देवों के नामसे मंत्र रचाना कर, उनका स्मरण करते हैं. जैसे—"ॐ नमः शिवाय" "ॐ नमो वासुदेवाय:" व- गैरे. तैसे जैन मतमें माननिय अनादि सिद्ध देवाधी देव पंच परमेष्टी हैं. उनका स्मरण सर्वोत्तम है, यो स्मरण बहुत प्रकारसे किया जाता है, यथा—

पणतीस सोल छप्पण, चउ दुग मेगत्र जवह ज्झाएह, परमेट्ठी वाचयाण, अन्नं चगुरुवए सेण ॥ १ ॥

द्र. स. ४९

अर्थात—पैंतीस (३५) सोले (१६) आठ (८) पांच [५] चार (४) दो (२) एक (१) इन प्रमाणें अक्षरों के स्मरण से पंच प्रमेष्टी योंका जप-ध्यान हो सक्ता है. और इन सिवाय अन्य भी तरह, न्यूनाधिक अक्षरों के साथ प्रमाणसे पंच प्रमेष्टी का ध्यान होता है. सो गुरु गमसे धारण कर जाप करना.

३५ अक्षरका मूल मन्त्र.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५
ण मो अ रि हं ता णं ण मो सि द्धा णं, ण मो आ
१६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९
य रि या णं, ण मो उ व ज्झा या णं, ण मो लो
३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५
ए स व्व सा हू णं*

षोडस (१६) अक्षरी मन्त्र.

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४
अ रि हं त, सि द्ध, आ य रि य, उ व ज्झा य,
१५ १६
सा हू.×

× इस में पंच प्रमेष्टी के नाम मात्र हैं.

* इस में अरिहंत और सिद्ध दो मूल मंत्र के पद कायम रख पीछे के तीन पद एक साहू शब्द में लिये हैं क्यों कि आचार्य, उपाध्याय, और साधु यह तीन साधु ही होते हैं.

अठ (८) अक्षरी व पंचाक्षरी (५) मन्त्र

अ रि हं त सि द्ध सा हू ॥ अ, सि, आ, उ, सा,[†]

चार, दो, और एकाक्षरी मन्त्र.

सिद्ध साहू[‡] ॥ सिद्ध[§] ॐ[*] ॥

---

† इस में-'अ' से अरिहन्त, 'सि' से सिद्ध, 'आ' से आचार्य, 'उ' से उपाध्याय, और 'सा' से साहू. यों एक २ अक्षर का जाप है.

‡ इस में-'अरिहंत' और 'सिद्ध' इन दोनों को सिद्ध पद में लिये, क्यों कि अरिहन्त जी आगे सिद्ध होने वाले हैं. उन्हें सिद्ध कहने में कुछ हरकत नहीं, और आचार्यादि तीन पद साधु पद में समाते हैं सो पीछे का दिया है.

§ 'सिद्ध' पद छोड़ें बाकीके चारही पदकी मुख्य इच्छा सिद्ध पद प्राप्त करनेकी है, इस हेतु से पांचही पदको एक सिद्ध कहने में कुछ हरकत नहीं है.

* गाथा-'अरिहंता, असरीरा, आयरिया, उवज्झाया मुणिणो, पंचक्खर निप्पन्नो, ॐकारो पंच परमिट्ठि. अर्थ-अरिहंत की आदि में 'अ' है, असरीर(सिद्ध) की आदि में भी 'अ' है और आचार्य की आदि में 'आ' है, उपाध्याय की आदि में 'उ' है मुनि (साधु) की आदि में 'म' है, यह पांच अक्षर अ अ-आ-उ-म्. ऐसा हुवा सिद्ध. हेमचन्द्राचार्य कृत शाकटायन के सूत्र से दोनों दीर्घ 'अ' मिल कर दीर्घ 'आ' बना; तब 'आउम' ऐसा हुवा 'आ' कार और 'उ' कार मिलनेसे 'ओ' कार होता है और मकार निरक्षर होनेसे ओं(ॐ)कार सिद्ध हुवा.

यह पन्च परमेष्टी के जाप स्मरण की संक्षेपमें रीत बताइ. और भी इस सिवाय, शास्त्र ग्रन्थमें स्मरण करनेके मन्त्र कहे हैं उसमेंसे कुछ यहां दर्शाये जाते हैं,

मङ्गल शरणो पदानि, कुरम्वंयरतुसंयमी स्मरति.
अविकल मेकाग्र धिया, सचा पवर्ग श्रियं श्रयति.।१।

अर्थात—मङ्गल, शरण, और उत्तम इनका जो स्मरण करते हैं, वे मुनिराज मोक्षरुप महा लक्ष्मीका आश्रय लेते हैं, सो—

मन्त्र—चात्तारि मङ्गलं—अरहन्ता मङ्गलं,सिद्ध मङ्गलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णतो धम्मो मंगलं चत्तारीलोगुत्तमा-अरहन्त लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलि पण्णतो धम्मो लोगुत्तमा चत्तारिसरणं पव्वज्जामी-अरहन्त सरणं पव्वज्जामी, सिद्ध सरणं पवज्जामी, साहू सरणं पवज्जामी, केवलि पणतो धम्म सरणं पव्वज्जामी.

सूत्र—चउवी सत्थ एणं दंमण विसोहिं जणयइ

उत्तराध्ययन.

अर्थ—चउवि. सत्थ (चतुर्वीस जिनस्तवं)मंत्र. अर्थात्—चौवीस [तीर्थंकर] की स्तुती (गुणाग्राम) करनेसे, दर्शन (सम्यक्त्व) की विशुद्धता निर्मलता होती है. वो चउवी सत्व. कहे हैं.

मन्त्र लोगस्स उज्जोयगरे, धम्म तित्थयरे जिणे, अरिहंते कित्तइसं, चउवीसंपि केवली ॥१॥ उसभ, मजियंच, वंदे, संभव, मभिनंदण, च सुमइंच, पउमप्पहं सुपास जिणंच चंदप्पहं, वंदे ॥२॥ सुविहिं च, पुप्फदंतं, सीअल, सिज्जंस, वासुपुज्जंच, विमल, मणंत, च जिण धम्मं, संतिं, च, वंदामि ॥३॥ कुंथु, अरंच, मल्लिं वंदे, मुणिसुव्वयं, नमि जिणं, च वंदामि रिट्ठ नेमि, पासं,तह, वद्धमाणंच ॥४॥ एवं मए अभिथुआ, विहुअ रयमला, पहीण जर मरणा, चउविसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसियंतु ॥५॥ कित्तिय वंदिय महिया जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा, आरुग्गं बोहिलाभं, समाहिवर मुत्तमं दिंतु ॥६॥ चंदेसु निम्मल यरा, आइच्चेसु अहियं पयास यरा, सागर वर गंभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ॥७॥

सूत्र-थय थुइ मंगलेणं नाण दंसण चारित्त बोहिलाभं जणयइ, नाण दसण चरित्त बोहिलाभं संपन्नेणं जीव अंत किरियं कप्पा विमाणो ववत्तियं आराहणं आराहेइ.॥
उत्तरा ध्ययन अ २९.

अर्थ, थय थुइ (स्तुतीरूप)मंगल सो नमोत्थुणं स्तव मंत्र पढनेसे ज्ञानकी निर्मलता होय, सुद्धबुद्धि होय, दर्शन की निर्मलता होय, सम्यक्त्व शुद्ध

होए. चारित्रके गुणकी वृद्धी होए. बोद्ध बीज काला-भ होय और ज्ञान दर्शन, चारित्रकी शुद्धी होने से मोक्ष की प्राप्ती होती है: कदापि पुण्य की वृद्धि हो जाय तो १२ देवलोक, ९ ग्रेयवेक. ५ अनुत्तर विमान इन में महारिद्धि धारक देव होते हैं.

मन्त्र—नमोत्थुणं अरिहंताणं, भगवंताणं, आइगराणं, तित्थयराणं, सयं मं बुद्धाणं, पुरिसुत्तमाणं, पुरिस सिहाणं, पुरिसवर पुंडरियाणं, पुरिसवर गंध हत्थीणं, लोगुत्तमाणं, लोग नाहाणं, लोग हियाणं, लोग पइवाण, लोगपज्जोयगराण, अभयदयाणं, चख्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं, जविदयाणं, बोही दयाणं, धम्म दयाणं, धम्म देसियाणं, धम्म नायगाणं धम्म सारहीण.. धम्म वर चाऊरंत चक्कवट्टीण, दीवो ताणं सरण गइ. पइट्टा. अपडी हय वरनाण दंसण धर णं, वियट्ट छउमाणं जिणाणं जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं, बुध्धाणं, बोहियाणं, मुत्ताणं, मोयगाणं,सव्व न्नुणं, सव्वदारिसिणं, सिव मयल-मरुय-मणंत, मक्खय मव्वाबाह- मपुणरावित्ति. सिद्धिगइ नाम धेय ठाणं सं पताणं नमो जिणाणं,जिय भयाणं. (यह इय थुइ मंगलं)

यह नवकार चउवीस्तव (लोगस्स) और नमो त्थुणं यह तीन स्मरण तो यहां बनादे: और इन ति

याय जितने जिन भाषित सूत्रों की सज्झाय (मूल पाठका पढना) तथा और भी श्रीजिनस्तव. तथा मुनिस्तव वैराग्य आत्मज्ञान गर्भित अध्यात्मिक, शांतादि रस से भरपूर इत्यादि जो स्वध्याय परियट्टणा रूप ज्ञान फेरना सो सब पदस्थ ध्यान जाणना. *

अनुभव युक्त पदस्थ ध्यान ध्यानेसे जीव परमोत्कृष्ट रस में चडाहुवा महा निर्जरा करता है.

द्वितीय पत्र-पिण्डस्थ ध्यान.

२ पिण्डस्थ ध्यान–पिंड–शरीर में स्थ–रहाहुइ जो आत्मा उसकी भिन्नता का चिंतवणा सो पिण्डस्थ ध्यान.

गाथा- पुद्गल पिण्ड में अलख अमूर्ती देव ॥
फिरे सहज भव चक्रमें यह अनादी देव ॥१॥

अर्थात्–यह पिण्ड (शरीर) सप्त (७) धातुओं करके बना हुवा, महा अशुचिका भंडार, क्षिण २ में पर्यायका पलटने वाला, मृगा पुत्रके फरमान मुजब "वाही रोगाण आलए" अर्थात्=आधी (चिंता) व्याधी (रोग) उपाधी (दुःख) का घर, ऐसे शरीर में अलख–जो लक्ष (अक्षर) में जिसका गुण न आवे, (समावे) ऐसे और अमूर्ती जो देखनेमें न आवे, ऐ

* "अर्ह" यह पदस्थ ध्यानका बीज मंत्र है.

ने देव विराजमान हैं. परन्तु अनादी कालसे जिनका फिरनेकाही स्वभाव देहा ध्यास से व कर्म संयोग कर हो रहा है, जिससे संसार चक्रवालमें अनंत परिभ्रम ण कर रहा है. इस का मुख्य हेतु यह है कीः—

जो जो पुद्गल की दिशा,ते निजमाने हँस ॥
याही भरम विभाव ते । वडे कर्मको वँस ॥२॥

जो जो जगत् में पुद्गली पदार्थ है उनको अप ने मान रहा है, और उनका स्वभाविक स्वभावमें प लटा पडनेसे अर्थात् पुद्गलोंका संयोग वियोग होनेसे आपनाही संयोग वियोग समजता है. मतलबकी अप नी अनंत ज्ञान मय जो चैतन्य अवस्था है उसकों क र्मके नशेमें छक हो भूलगया, भ्रममें पडगया और अपना स्वभाव को छोड विभाव में राच-माच रहा है, जिसी से कर्मों की वृद्धि होती है और भव भ्र मण करना पडता है. कहा हैः—

कर्म संग जीव मूढ हैं । पावे नाना रूप ॥
कर्म रूप मलके टले । चैतन्य सिद्ध स्वरूप ॥३॥

यह सब कर्म की संगती काहि स्वभाव है, न कि चैतन्यका, क्योंकि चैतन्य तो सिद्ध स्वरूपी परमा त्मा रूप है. इनका भव भ्रमणमें पडनेका स्वभाव है ही नहीं. जो होय तो सिद्ध भगवंत को भी पुनर ज

न्म लेनापडे; परन्तु कर्मो संयोगसे मूढ हो एकेंद्रिया दिकयोनी में अनेक प्रकार का रूप धारन करता है, और जब कर्म रूप मेल दूर हुवा देहा ध्यास छुटा कि निजरूपको सिद्ध स्वरूप को प्राप्त होजाता है.

संसारी जीवों को अनादि कालसे, ज्ञानावरणियादि कर्मोका सम्बन्ध होने से, आत्मा की अनंत ज्ञानमय चैतन्य शक्ती लुप्त हुइ है. इस लिये विभाव रूप हो रहा है. जैसे कीचड के संयोगसे पाणी की स्वच्छता नष्ट होती है, तैसे ही कर्म संयोगसे चैतन्य विभाव रूप हुवा है. जब भव स्थिती परिपक्क होती है तब सम्यक्त्वादि सामग्री प्राप्त होती है, तब कर्म सम्बन्ध नष्ट हो शुद्ध चैतन्यता प्रगट होती है, उसी हीवक्त जीव सर्वज्ञाताको प्राप्त हो एक समय में त्रिकालके सर्व पदार्थ जानने देखने लगता है.

सिद्धा जैसा जीव है। जीव सोही सिद्ध होए ॥
कर्म मेलका अंतरा। बूजे विरला कोए ॥४॥
कर्म पुद्गल रूप है। जीव रूप है ज्ञान ॥
दो मिलके बहूरूप है। विछडे पद निर्वान ॥५॥

इस लिये यह जीव सिद्ध स्वरूपी ही है, क्यों कि जीव ही सिध पदको प्राप्त कर शक्ता है. अन्य नहीं है. देरइतनीही कि कर्म और जीव का मूल स्वभाव यह

चानना चाहिये; कर्म हैं सो पुद्गल जनित हैं, पुद्गल मय रूपी निर्जीव जड पदार्थ है, और जीव ज्ञान स्वरूप अरूपी चैतना वंत है. इन दोनोका अ-नादि सम्बन्ध के सबबसेही देहा ध्यास के प्रभावसे ही भगवांनगें में अनेक तरहका रूप धारण कर-ता है. ऐसे जानने वाले जक में थोडे हैं. जो यह जानेंगे, वोही कर्म सम्बन्ध तोड, निर्वाण प्राप्त करने का उपाय करेंगे.

जीवो उवओगम ओ, अमुत्ति कत्ता सदेह परिमाणो
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो, सो विस्स सेङ्गइ ॥ १ ॥
द्रव्य संग्रह.

'जीवो'=यह जीव शुद्ध निश्चयसे आदि मध्य और अंत रहित स्व तथा परका प्रकाशक, उपाधि र-हित शुद्ध ज्ञान रूप निश्चय प्राणसे[1] जीता है. तो भी अशुद्ध निश्चय नयसे अनादि कर्म बन्धके वशसे अशु

---

१ त्रीकालमें जीवके चार प्राण होते हैं, १इन्द्रियोके अगोचर शुद्ध चैतन्य प्राण, उसके प्रति पक्षी क्षयोपशमी इन्द्रि प्राण. २ अनंत विर्य रूप बलप्राण. उसका अनंत वा हिस्सा. मन 'बल' वचन बल. कायाबल. प्राण है. ३ अनंत शुद्ध चैतन्य प्राण उसके [illegible] आदी अंत सहित आयु-प्राणा है. और ४ श्वा[illegible]दि भेद रहित शुद्ध चित्त प्राण, उससे उलट [illegible] यह ४ द्रव्य प्राण और ४ भाव प्राणसे जो जीता है. और जीवेगा वो व्यवहार नयके लिए है.

द्ध जो द्रव्य प्राण और भाव प्राण उन से जीता है. इस लिये जीव है. 'उव ओगम ओ' शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे परिपूर्ण निर्मल दो उपयोग है, वैसाही जीव है; तोभी अशुद्ध नयसे क्षयोपशमिक ज्ञान और दर्शन युक्त है. 'अमुत्ति' जीव व्यवहार नयसे, मूर्ति कर्माधीन न होनेसे वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, रूप, मूर्ति दिखता है; तोभी निश्चय नयसे अमूर्ति इन्द्रियोंके अगोचर शुद्ध स्वभावका धारक है. 'कत्ता' जीव निश्चय नय से क्रिया रहित निरूपाधी ज्ञायकैक स्वभावका धारक है तोभी व्यवहार नयसे मन वचन कायाके व्योपारको उत्पन्न करने वाले कर्मों सहित होनेके सबबसे शुभाशुभ कर्मोंका कर्ता है. सदेह परिमाणो' जीव निश्चयसे स्वभावसे उत्पन्न शुद्ध लोकाकाशके समान *असंख्यात प्रदेशका धारक है. तोभी शरीर नाम क-

* केवल ज्ञानी आयुष्य कर्म थोडा रहे और वेदनी कर्म अधिक रहे, तब दोनोंको बराबर करने आठ समयमें समुद्घात होती है. आत्म प्रदेशका पहिले १ समय चउदे राजु लोकमे उंचा नीचा दंड होवे, दूसरे समय कपाट, तीसरे समय मथन, चौथ समय अंतर पुरे. (उस वक्त सर्व लोकमें आत्मा व्याप जाती है.) पांचवे समय अंतर सारे, छट्टे समय मथन सारे सातवे समय कपाट सारे और आठमे समय दंड सारे.

र्मोदय से उत्पन्न संकोच विस्तारके स्वाधीन हो. देह प्रमाणे होता है. जैसे दीपक भाजन प्रमाणे प्रकाश कर्ता है. 'भोक्ता' जीव शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे रागादि विकल्प रहित, उपाधी से शुन्य है. और आत्मस्वभाव से उत्पन्न हुवे सुख रूपीअमृत को भोगवने वाला है, तोभी अशुद्ध नयसे पूर्वोक्त सुख रूप भोजन के अभावने शुभा शुभ कर्म से उत्पन्न हुये सुख और दुःख का भोगवने वाला है. संसारस्थ' जीव शुद्ध निश्चय नय से संसार रहित, नित्यानन्द रूप एक स्वभावका धारक है, तोभी अशुद्ध नय से द्रव्य—क्षेत्र—काल—भाव—और भव इन पांच प्रकार के संसार में रहता है. 'सिद्धो' जीव व्यवहार नय से निज आत्म की प्राप्ति स्वरूप जो सिद्धत्व है, उस के प्रतिपक्षी कर्मोदय से असिद्ध है, तोभी निश्चय नय से अनंत ज्ञानादि गुण के स्वभावका धारक होने से सिद्ध है. विस्सोड्ड गइ, जीव व्यवहार से चार गतिमें भ्रमण करने वाले कर्मोदय से उंची नीची तिरछी दीशोंमें गमन करने वाला है, तोभी निश्चय से केवल ज्ञानादि अनंत गुणोंकी प्राप्ति रूप जो मोक्ष है उसमें जाती वक्त स्वभावसेही उर्ध गमनकर्ता है.

शुद्ध चैतन्य उज्वल द्रव्य। रह्यो कर्म मल छाय॥

तप संयमसे धोवतां। ज्ञान ज्योति बढ जाय॥२॥

ऐसा जाण मुमुक्षु प्राणीयों! देह पिण्ड कर्मपिण्ड से आत्मा चैतन्यकों अलग करनेका उपाय ज्ञान युक्त तप संयम करो कि जिससे कर्म रहीत शुद्ध, चैतन्य,* ज्ञान श्वरूप बन जाय, क्यों की ज्ञानादि रत्नों का भाजन चैतन्यही है, ज्यों चांदी खटाइ से धोनेसे उज्वलता आतीहै, तैसे चैतन्य उज्वलहै—

ज्ञानथकी जाणे सकल। दर्शन श्रद्धा रूप॥

चारित्र थी आयत रूक। तपस्या क्षपन स्वरूप॥३॥

ज्ञान से चैतन्य की और कर्म की परिणती पहचाने, दर्शन से उसे जिनोक्त आगम प्रमाणे सत्य श्रद्धे, चारित्रसे जीव और कर्मकों अलग करनेके मार्गे लगे और तप करके जीव और कर्म अलग करे; यह उपाय.

जीव कर्म भिन्न २ करो। मनुष्य जन्मको पाय॥

ज्ञानात्म वैराग्य से. धैर्य ध्यान जगाय॥२॥

ज्ञानात्म वैराग्य से. धैर्य ध्यान जगाय॥२॥

मनुष्य जन्ममेंही होता है. इस लिये हे मोक्षार्थीयों! यह इष्टार्थ सिद्धिका अवसर मनुष्य जन्मादि सामग्री प्राप्त हुइ है तो अब वैराग्य, धैर्य युक्त

* जैसे स्फाटिक रत्न स्वभावमेंही निर्मल उज्वल होता है. परंतु उसके नीचे अन्य रक्तादी रंगका पदार्थ रखनेसे वो रंगमय दिखता है, ऐसेही आत्मा कर्मोदय प्रसंगसेही भासता है. परंतु है निर्मल.

धारण कर ज्ञान युक्त-ध्यानस्त बन जीवको कर्मसे अलग करो.!!

यों जीव और कर्मकी भिन्नता जाणनेका, तथा उन्हे भिन्न २ करनेका उपाय संक्षेपमें कहा, औरभी ग्रंथकार कहते हैं. *

---

* पिंडस्थ ध्यान मे संस्थित होनेसे आत्माकी ज्ञान जोतिका प्रकाशित करनेका सरल उपाय एक ग्रन्थकार ऐसा कहते हैं कि–शुभ ध्यान में कहे मुजब इत्यादि शुभ सामुग्री युक्त ध्यानस्त हो अंतःकरण मे विचारे वाहिर श्वास निकले ते कि मै स्वस्थान छोड बाहिर आया और पुनः अन्दर श्वास जाती वक्त विचारे कि मै अन्दर चला. यों विचारही विचारसे सिरस्थानसे कंठस्थान और कंठस्थान से नाभी कमलस्थान पे जा विराजमान होवे. और वहां स्थिर हो अन्दरकी द्रष्टीको खुल्ली कर देखो ऐसा भाषा होगा कि मैं नाभी कमल पेही संस्थित हूं. यों जब अपनी आत्मा का सुक्ष्म स्वरूपका भान होवे. तब उस सुक्ष्म स्वरूपकी द्रष्टी खुली कर नाभीके आजू बाजू चारही तर्फ अवलोकन करे, यों धैर्य और द्रढ निश्चयके साथ अवलोकन करनेसे जो अन्धकार देखाय तो उसी वक्त द्रढ निश्चयसे कल्पना करे कि इस अन्धकारका विनाश होवो. और अनंत प्रकाशी सूर्य मंडलका मेरे हृदय में प्रकाश होवो. यों कहना हुवा सुक्ष्म रूपसेही आकाशको तर्फ (ऊंचा) अवलोकन करनेसे

तप संयमसे धोवतां । ज्ञान ज्योति प्रद जाय॥२॥

ऐसा जाण मुमुक्षु प्राणीयों ! देह पिण्ड कर्मपिण्ड से आत्मा चैतन्यको अलग करने का उपाय ज्ञान युक्त तप संयम करो कि जिससे कर्म रहीत शुद्ध, चैतन्य,* ज्ञान श्वरूप बन जाय, क्यों की ज्ञानादि रत्नों का भाजन चैतन्यही है, ज्यों चांदी खटाइ से धोनेमे उज्वलता आतीहै, तैसे चैतन्य उज्वलहो—

ज्ञानथकी जाणे सकल । दर्शन श्रद्धा रूप ॥
चारित्र थी आयत रूक । तपस्या क्षपन स्वरूप ॥३॥

ज्ञान स चैतन्य की और कर्म की परिणती पहचाने, दर्शन से उसे जिनोक्त आगम प्रमाणे सत्य श्रद्धे, चारित्रसे जीव और कर्मको अलग करनेके मार्गे लगे और तप करके जीव और कर्म अलग करे; यह उपाय.

जीव कर्म भिन्न २ करो । मनुष्य जन्मके पाय ॥
ज्ञानात्म वैरागग्य से. धैर्य ध्यान जगाय ॥२॥

ज्ञानात्म वैरागग्य से. धैर्य ध्यान जगाय ॥२॥

मनुष्य जन्ममेंही होता है. इस लिये हे मोक्षार्थियों ! यह इष्टार्थ सिद्धिका अवसर मनुष्य जन्मादि सामग्री प्राप्त हुइ है तो अब वैराग्य, धैर्य युक्त

* जैसे स्फटिक रत्न स्वभावसेही निर्मल उज्वल होता है, परंतु उसके नीचे अन्य रक्तादी रंगका पदार्थ रखनेसे वो रंगमय दिखता है, तैसेही आत्मा कर्मोदय परिणमेंही भासता है. परन्तु है निर्मल.

धारण कर ज्ञान युक्त ध्यानस्त बन जीवको कर्मसे अ लग करो.!!

यों जीव और कर्मकी भिन्नता जाणनेका, तथा उन्हें भिन्न २ करनेका उपाय संक्षेपमें कहा, औरभी ग्रंथकार कहते हैं. ७

---

* पिंडस्थ ध्यान में संस्थित होनेसे आत्माकी ज्ञान जोतिको प्रकाशित करनेका सरल उपाय एक ग्रन्थकार ऐसा कहते हैं कि-शुभ ध्यान में कहे मुजब इत्यादि शुभ सामुग्री युक्त ध्यानस्त हो अन्तःकरण में विचार बाहिर श्वास निकल ते कि मैं स्वस्थान छोड बाहिर आया और पुनः अन्दर श्वास जाती वक्त विचारे कि मैं अन्दर चला. यों विचारही चिचारसे सिरस्थानसे कंठस्थान और कंठस्थान से नाभी कमलस्थान पे जा विराजमान होवे. और वहां स्थिर हो अन्दरकी द्रष्टीको खुली कर देखो ऐसा भाषा होगा कि मैं नाभी कमल पेही संस्थित हूं. यों जब अपनी आत्मा का सूक्ष्म स्वरूपका भान होवे. तब उस सूक्ष्म स्वरूपकी द्रष्टी खुली कर नाभीके आजु बाजू चारही तर्फ अवलोकन करे, यों धैर्य और द्रढ निश्चयके साथ अवलोकन करनेसे जो अन्धकार देखाय तो उसी वक्त द्रढ निश्चयसे कल्पना करे कि इस अन्धकारका विनाश होवो, और अनंत प्रकाशी सूर्य मंडलका मेरे हृदय में प्रकाश होवो. यों कहना हुवा सूक्ष्म स्वरूपही आकाशको तर्फ (ऊंचा) अवलोकन करनेका

तप संयमसे धोवतां । ज्ञान ज्योति बढ जाय॥२॥

ऐसा जाण मुमुक्षु प्राणीयों ! देह पिण्ड कर्मपिण्ड से आत्मा चैतन्यको अलग करने का उपाय ज्ञान युक्त तप संयम करो कि जिससे कर्म रहीत शुद्ध, चैतन्य,* ज्ञान श्वरुप बन जाय, क्यों की ज्ञानादि रत्नों का भाजन चैतन्यही है, ज्यों चांदी खटाइ से धोनेसे उज्वलता आतीहै, तैसे चैतन्य उज्वलहो—

ज्ञानथकी जाणे सकल । दर्शन श्रद्धा रूप ॥

चारित्र थी आयत रूक । तपस्या क्षपन स्वरूप ॥३॥

ज्ञान से चैतन्य की और कर्म की परिणती पहचाने, दर्शन से उसे जिनोक्त आगम प्रमाणे सत्य श्रद्धे, चारित्रसे जीव और कर्मको अलग करनेके मार्गे लगे और तप करके जीव और कर्म अलग करे; यह उपाय.

जीव कर्म भिन्न २ करो । मनुष्य जन्मको पाय॥

ज्ञानात्म वैरागग्य से. धैर्य ध्यान जगाय ॥४॥

ज्ञानात्म वैरागग्य से. धैर्य ध्यान जगाय ॥४॥

मनुष्य जन्ममेंही होता है. इस लिये हे मोक्षार्थियों! यह इष्टार्थ सिद्धिका अवसर मनुष्य जन्मादि सामग्री प्राप्त हुइ है तो अब वैराग्य, धैर्य युक्त

* जैसे स्फटिक रत्न स्वभावसेही निर्मल उज्वल होता है. परंतु उसके नीचे अन्य रक्तादि रंगका पदार्थ रखनेसे वो रंगमय दिखता है, तैसेही आत्मा कर्मोदय प्रयोगसे भासता है. परन्तु है निर्मल.

धारण कर ज्ञान युक्त ध्यानस्त बन जीवको कर्मसे अलग करो.!!

यों जीव और कर्मकी भिन्नता जाणनेका. तथा उन्हे भिन्न २ करनेका उपाय संक्षेपमें कहा, औरभी ग्रंथकार कहते हैं. *

---

* पिंडस्थ ध्यान मे संस्थित होनेसे आत्माकी ज्ञान ज्योतिको प्रकाशित करनेका सरल उपाय एक ग्रन्थकार ऐसा कहते हैं कि-शुभ ध्यान में कहे मुजब इत्यादि शुभ सामुग्री युक्त ध्यानस्त हो अंतःकरण में विचारे बा-हिर श्वास निकले ते कि मैं स्वस्थान छोड बाहिर आया और पुनः अन्दर श्वास जाती वक्त विचारे कि मैं अन्दर चला. यों विचारही विचारसे शिरस्थानसे कंठस्थान और कंठस्थान से नाभी कमलस्थान पे जा विराजमान होवे. और वहां स्थिर हो अन्दरकी दृष्टीको खुली कर देखोगे तो भाषा होगा कि मैं नाभी कमल पेही संस्थित हूं. यों जब अपनी आत्मा का सूक्ष्म स्वरूपका भान होवे. तब उस सूक्ष्म स्वरूपकी दृष्टी खुली कर नाभीके अन्दर चारूं बाजूही तर्फ अवलोकन करे. यों धैर्य और दृढ निश्चयके साथ अवलोकन करनेसे जो अन्धकार देखाव तो उसी वक्त मन निश्चयसे कल्पना करे कि इस अन्धकारका विनाश होवो. और अनंत प्रकाशी सूर्य मंडलका मेरे हृदय में प्रकाश होवो. यो कल्पना हुवा सूक्ष्म स्वरूपही आकाशको तर्फ (अंदर) अवलोकन करनेसे

ऐसेही पिण्डस्थ ध्यान में "सप्त भंगीमें आत्म

उसी वक्त सूर्य जैसा प्रकाश अन्तःकरण में दिखने लगे गा, यों हमेशा अभ्यास रखनेसे अंतर आत्माकी ज्ञान ज्योतीमें दिनो दिन विशुद्धता की अधिकता होती है. और अतरिक गुप्त वस्तुओ जाणनेमें आने लगती है, और अनेक गुप्त शक्तीयों प्रगट होती है.

पिण्डस्थ ध्यान मे ५ तत्वके विचार करनेसे भी ज्ञान ज्योति प्रकाश होती है, ऐसा भी एक ग्रन्थकार लिखते हैं. सो ध्यानस्त हो, द्रढता पूर्वक पहले पृथवी तत्वका विचार करता गोलाकार पृथ्वी के मध्य क्षीर सागर और उस के मध्य में जंबुद्वीपका कमल ठेराये मेरु पर्वत को करणिका ठेहरा उस में सिंहासनकी कल्पना कर उसपे आप बेठे. फिर दुसरा अग्नि तत्वका विचार करता. हृदय में. १६ पंखडीके कमलपे 'अ' स्वरसे लगा १६ मा अः स्वरकी स्थापन कर मध्य में 'र्हं' बीज स्थापे, फिर विचार करे की इस में धुम्र निकलने लगा, और महाज्वाला प्रगट हो कमल को भस्म कर नक्षके अभावसे अग्नि शांत हुइ. फिर ३ वायूका विचार करे कि महा वायु प्रगट हो मेरुको कम्पाने लगा. और पहलेकी भस्म उडा ले गया, जितसे वो जगा साफ होगइ. फिर ४ पाणी तत्व विचारे कि आकाश में गर्जारवहो बूंद पडने लगी और महामेघ वर्षके उस स्थानको अत्यंत स्वच्छ कर दीया. और मेघ मगगया. फिर ५ मा आकाश तत्व विचारके अब मेरी आत्मा सप्त धातु मय पिंड र

तत्व" विचारे. १ प्रत्येक पदार्थ अपने २ द्रव्य चतुष्टय× द्रव्य क्षेत्र काल भव) की अपेक्षा से अस्ति रूप है. जैसे आत्मा में ज्ञानादि गुण का सदा आस्तीत्व होता है. इस लिये* स्यात् आस्ति होय. २ और यों ही पदार्थ अन्य (पर) द्रव्य चतुष्टय की अपेक्षासे नास्ति रूप है. जैसे आत्मा जडता (अचेतन्यता) रहित है, इस लिये स्यात् नास्ति होय. ३ सर्व पदार्थ अपनी २ अपेक्षा से अस्ति रूप है. और परकी अपेक्षासे नास्ति रूप है. जैसे आत्मा में चैतन्यता की अस्ति

हित. पूर्ण चन्द्रके समान प्रकाशित निर्मल सवज्ञ देव उन्य हुइ. यह दृढतासे निश्चयात्मक बननेसे हुयेहुए बनाव दृष्टी आता है.

× अपने द्रव्य चतुष्टयसे सर्व पदार्थ सत्य है. जैसे आत्मा ज्ञानादि गुणका भाजन (आधार) ही है. परन्तु ज्ञानादि गुणोंमें जो समय २ में फेरफार होता है सो पर्यायोंका होना है, न की स्वभावोंका: २ आत्माके असंख्यात प्रदेशो में जो ज्ञानादि गुण रहे हैं सो स्वक्षेत्र है. ३ पर्यायों में जो उत्पात व्यय क्षण २ में होता है, सो स्वकाल है. और ४ आत्माको गुणोंका और पर्यायो का जो कार्य धर्म है. सो स्वभाव है,

* स्याद् या स्यात शब्दका अर्थ 'होगा' अर्थात् हां! ऐसेभी होगा ऐसा होता है.

और जडता की नास्ति; इस लिये एकही समय में स्यात् आस्ति नास्ति दोनो होय. ४ पदार्थ का स्वरूप एकांतता से जैसा का वैसा कहा नहीं जाय क्यों कि जो आस्ति कहेतो नास्तिका और नास्ति कहें तो आस्ति का अभाव आवे. इसलिये एक ही समय में दोनो भाव प्रकाशे नहीं जाय; केवल ज्ञानी एक समय में ऊपरोक्त दोनों भावकों जाणतो शक्ते हैं, परंतु वाणी द्वारा बागर नहीं शक्ते हैं. तो अन्य की क्या कहना. इसलिये स्यात् अवक्तव्यं, ५ एकही समयमें आत्मा में सर्वस्व पर्यायोंका सद्भाव अस्तित्व है और पर पर्यायोंका सद्भाव नास्तित्व है. और दोनो भाव एकही वक्त कहें नहीं जाय, अस्तिक हे तो नास्तिका आभाव आवे, मृषा लगे, इसलिये स्याद आस्ति अवक्तव्य होय. ६ और इसही तराह जो नास्ति कहे तो आस्तिका अभाव आवे, इसलिये स्यात् नास्ति अवक्तव्य होय. ७ आस्ति के कहने से नास्ति का अभाव नास्तिके कहने से अस्तिका अभाव, और पदार्थ एकही काल में अस्ति नास्ति दोनो तरह हैं. परन्तु कहजाय नहीं. क्यों कि वाक्या तो क्रम वर्ती है. इसलिये स्यात् आस्ति नास्ति अवक्तव्य होय, यह आस्ति नास्ति अभिव स्यात् वाद मत से आत्म स्वरूप दर्शाया.

ऐसेही नित्य, अनित्य; सत्य, असत्य; वगैरे अनेक रीतीसे आत्म स्वरूप के विचार में जो निमग्न हो पुद्गल पिण्ड से आत्माकी भिन्नता लख, निश्चय आत्मिक बने.

यह सब पिण्डस्थ ध्यान में चिंतवन करनेका मुख्य हेतु, सर्व वस्तुओमें मन रमण करता है उससे निवार एक आत्माके तर्फ लगानेके लियेही है.*आत्माके तर्फ मन लगनेसे अन्य पुद्गलोंको ग्रहण नहीं करता है, जिससे नवीन कर्मका बन्ध नहीं होता है त्यूं२ कर्म क्षण २ में अलग हो आत्म ज्योती पूर्ण प्रकाश पाती है. तब सर्व कार्य सिद्ध होते हैं.

ऐसे पिण्डस्थ ध्यानका संक्षेपमें विचार इत्ना, ही है कि–ज्ञानादि अनंत पर्याय का पिण्ड एक मै आत्मा हूं. और वर्णादि अनंत पर्यायका पिण्ड कर्म तथा उससे उत्पन्न हुवा शरीर है. इस लिये दोनों

*पाणी हारी कुंभरु नटवर-वृतमें कामीको-कान्ता सती-पती चहाइ; गौ-बच्छ बालक-मात. लोभी-धन चकवी-सूर. पंपैया-मेहाइ; कोकिल-अम्ब, नेसायर-चन्द ज्यों, हंसा-दधी. मधु-मालती. नाह, नयन-तरण, आयंकी-ओषधी, 'अमोल' निजातम त्यों निय धाइ. १

के स्वभाव भिन्न भिन्न होनेसे दोनो अलग २ हैं. ऐ सा निश्चय होयसो पिण्डस्थ ध्यान, इस ध्यानसे भेद विज्ञान प्राप्त होता है. जिससे आत्म स्वभावमें अत्यंत स्थिरता भाव युक्त, क्षांत, दांत, आदि गुण स्वभाविक आप्त होनेसे सर्व भयसे निवर्त्ती होती है, उन्हे महा भयंकर स्थानमें, क्षुद्र प्राणीयोंके समोह में या प्राणांतिक उपसर्गके प्रसंगमेंभी किंचितही क्षोभ प्राप्त नहीं होता है, अखंडित ध्यानकी एकाग्रता से वो स्वल्प कालमें इष्टार्थ साधते हैं.

तृतीय पत्र-"रूपस्थध्यान"

३ "रूपस्थध्यान"—रूपी परमात्माके गुणमें स्थिर होना सो रूपस्थध्यान, अर्हत पाहुड में कहा है.

जे जाणइ अरिहंत, दव्व गुण पज्जवेहय;
ते जाणइ नियऽप्पा, माह खलु जाइय लयं ॥१॥

अर्थात्—जो अर्हंत भगवंतका स्वरूप-द्रव्य, गुण, पर्याय, करके जाणेगा, वो ही आत्माके स्वरूप को जाणेगा. और जो आत्माको पहचानेगा वोही मोह कर्मका नाश करेगा.

अर्हंत, अरिहंत, और अरूहंत यों ३ शब्द हैं. १ देवेन्द्र नरेंद्रादिक के पूज्य, व अतिशयादि ऋद्धि युक्त सो अर्हंत. २ कर्म व राग द्वेष रूप शत्रुके नाश करे उन्हें, अरिहंत कहते हैं, और ३ जन्मांकुर, व रोगादि दुःख के अंकुरके नाश करने वालेको अरुहंत कहते हैं.

श्री अर्हंत भगवंत, अनंत-ज्ञान-दर्शन-चरित्र, और अनंत तप, यह अनंत चतुष्टय कर युक्त हैं, स-मव सरणके मध्यमें, अशोक वृक्षके नीचे, मणी रत्नों जडित सिंहासणके उपर, चार अंगुल अधर, छत्र, चमर, प्रभामंडल की विभूती युक्त द्वादश (१२) जात की परिषदा से परिवेरे, दिव्य ध्वनी प्रकाश करते हैं, जिसका अवाज, भाद्रव के मेघके गर्जारवकी तरह, चार कोश में, चारहो तर्फ पसरता है, जिसे श्रवण कर, अचुतेंद्र, शक्रेंद्र, धरणेंद्र, नरेंद्र, (चक्रवर्ती) और वृहस्पति जैसे विद्यामें प्रचुर, षड शास्त्र के परगामी, महा तेजस्वी, बहत्तरकला के धारक, महा प्रवीण प्रभू की दिव्य ध्वनी श्रवण कर, चमत्कार पाते, हैं. कि हा हा! क्या अतुल्य शक्ति? क्या विद्या सागर, एकेक वाक्य की क्या शुद्धता मधुरता सरलता इत्यादि गुणानुराग में अनुरक्त हो, हा हा कर अत्यन्त आन-

न्द को प्राप्त होते हैं. जैसे क्षुधातुर मिष्टान भोजन को और तृषातुर शीतोदक को ग्रहण करता है. तैसे ही श्रोतागण जिनेश्वर के एकेक शब्द को अत्यंत प्रेमातुरता से ग्रहण कर ;हृदय को शांत करते हैं.परम वैराग्य को प्राप्त होते हैं, वाणी श्रवण करते सर्व काम को भूल एकाग्रता लगाते हैं

और भी भगवंत की सूरत, मनहर, शांत, गंभीर, महा तेजस्वी एक हजार आठ उत्तमोत्तम लक्षणों से विभूषित. देदिप्य-झलझलाट करती, सर्वोत्तम अत्यंत प्यारी मुद्रा के दर्शनमें लुब्ध होते हैं. और हृदयमें कहते हैं की, हा हा, क्या यह स्वरूप संपदा और क्या यह अपूर्व वैराग्यदशा. निकामी, 'अक्रोधी,' आमानी, अमायी, अलोभी, अरागी, अद्वेषी' निर्विकारी, निरअहंकारी, महा दयाल, महा मयाल, महमङ्गल, महा रक्षपाल, अशरण शरण, अतारण तारण भव दुःख वारण, जन्म सुधारण, जक्त उधारण, अचिंत्य, अतुल्य शक्तिके धारक, सिद्धःग्र चारक, अक्षोभ, अनंत नेत्र युक्त, परम निर्यामक, परम वैद्य, परम गारूडी, परम ज्योति, परम झहाज, परम शांत परम कांत, परम दांत, परम महंत, परम इष्ट, परम मिष्ट, परम जेष्ट, परम श्रेष्ट, परम पंडित, धर्म मंडित,

मे व्यर्थ मत गमावो. ज्ञानादि त्रि रत्नोंसे भरा हुवा अक्षय खजाना तुमारे पास है उसे संभालो, उसीके रक्षक बनो; इस लूटने वाले—मोह, मद, विषय कषाय, रूप ठगारे तुमारे पीछे लगे हैं, उनके फंदसे बचो. इनके प्रसंगसे अनंत भव भ्रमणकी श्रेणियों में जो जो विपति सही है उसे यादकर पुनः उस दुःख मार गमें पडनेसे डरो, और बचनेका उपाय करनेकी येही वक्त है जो येह हाथ से छुट गइ तो पीछी हाथ लगनी महा मुशकिल है. जो इस वक्त को व्यर्थ गमा देवोगे तो फिर बहुतही पश्चात्ताप करोगे. यह सच्च मर्मजो! और प्राप्त हुये दुर्लभ लाभ को मत गमावो. बनी वेक्त में लाभ लेना होय सो लेलो. मानो! मानो!! और विकराल मायाजाल को तोड, जगतका फंद छोड. चलो हमारे साथ, होवो हुशार, हम अपना शाश्वत अविचल मोक्ष नगर में परमानन्द परम सुख मय शाश्वत स्थान है, वहां जाते हैं. आवो जो तुमारे को आना होय तो, वोही तुमारा घर हैं, वहां गये पीछे पुनरावर्ति नहीं करना पडता है; अनंत अक्षय अव्याबाध सुख में अनंत काल वांही रहना होगा. चेतो! चेतो!! चेतो!!! इत्यादि अर्हंत भगवंतका परमोत्कृष्ट धर्मोपदेश श्रवण कर, फरसना कर,

भूत काल में अनंत जीव मोक्ष * गये, वर्तमान काल में असंख्याते जीव मोक्ष जाते हैं. और भविष्य काल में अनंत जीव मोक्ष जायेंगे. इस लिये हे आत्मन् अहो मेरो प्यारी आत्मा! तूं महा भाग्योदयसे श्री जिनेश्वर भगवान का मार्ग पाया है. उनके यथा तथ्य गुणकी पहचान हुइ है. तो उन्ह जैसा होनेके लिये उनके गुणों में लय लगा, उन्हीके हुकम प्रमाणे चल उन्हने किये वोही कृत्य यथा योग्य कर, उन्ही रूप बन. तन्मय हो लयलीन होजा, जैसे स्वप्न अवस्थामें द्रष्ट वस्तुके ध्यान में लीन हो. उसही रूप आप बन जाता है. अपनी मूल स्थिती भूल जाता है; वोतो मोह दिशा है. परंतु वैसेही ज्ञान दशा में लयलीन हो अर्हत भगवानके गुणोंमें तन्मय बन कि जिसके प्रशादसे तेरी अनंत आत्म शक्ति प्रगटे और तूही अर्हन बने.

* अव्यवहार राशीमेसे ६ महीने और ८ समयमें १०८ जीव निकलके नियम कर व्यवहार इसीमें है, ज्यादा भी नहीं तैसे कमीभी नहीं. और इतनेही जीव व्यवहार राशीमेंसे निकल मोक्ष जाते हैं; तोभी तीनही कालमें निगोदके एक शरीरमें केजीवोंका एक अंश भी कमी(खाली) नहीं होता है ऐसा सुद्रष्टतरं गणी दिगाम्बर ग्रन्थ में लिखा है और पन्नवंगा सूत्र की वृत्तिमें भी लिखा है.

चतुर्थ पत्र-"रूपातीत ध्यान"

४ 'रूपातीत ध्यान'—रूपसे अतीत—रहित(अ रूपी) ऐसे सिद्ध प्रमात्माका ध्यान-चिंतवन करना सो रूपातीतध्यान.

गाथा-जारिस्सीसिद्धसहावो,तारिससहावोसव्वजीवाणं
तम्हा सिद्धंत रुइ,कायव्वा भव्व जीवेहि. ॥१॥
सिद्ध पाहुड.

अर्थात्—जैसा सिद्ध भगवंतकी आत्माका स्व रूप है वैसाही सब जीवोंकी आत्माका स्वरूप है,इस लिये भव्य जीवोंको सिद्ध स्वरूप में रुचि करना अ- र्थात् सिद्ध स्वरूपका ध्यान करना.

गाथा—जं संठाणं तुइहं, भवं चयं तस्स चरिम समयंमी
आसिए पए संघणं, तं संठाणं नाहिं तस्स ॥२॥
दिहवाह स्संया. जं चरिम भवे हवेज्ज सयणं,
तत्तो ती भाग हीणं, सिद्धाणो गाहणा भाणिया.४
समवाय सूत्र.

अर्थात्—मनुष्य जन्मके चर्म (छेले) समयमें जिस आकारसे यहां शरीर रहता है; उनके आयुष्य पूर्ण हुये बाद जीवके निजात्म प्रदेश जिस आकारसे उस शरीर के लम्बाइ पणे तृतीयांश हीन (तीसरा भाग कम,) सिद्ध क्षेत्र लोकके अग्रभागमें वो प्रदेश

जाके जमते हैं. इसेही सिद्ध भगवंतकी अवगाहना क
ही जाती है. ७

' नाशीकादी स्थानमें जो छिद्र (खाली जगा) हैं या-
भरनेसे घनाकार(ठिवड़) प्रदेश रह जाते हैं. इसी सबब
से त्रीयांश अवघणा कम हो जाती है. सिद्धकी अवघ
णा जघन्य १ हाथ ८ अंगुल, मध्यम ४ हाथ १६ अंगुल,
उत्कृष्ट ३३३ धनुष्य ३२ अंगुल.

प्रश्न–अरूपी और अवघणा कैसे?

समाधान–(१) अरूपीको अरूपीही द्रष्टांतसे सिद्धी क
रे तो जैसे अकाश अरूपी है तो भी कहा है. लोकाला
क (लोकका आकाश) सादीसांत [आदि और अंत-
साहित] तथा घटाकाश मठाकाश, वगैरे तो आकाश
कुछ पदार्थ हे नही आदी अंत होता है, तैसेही सिद्ध
की अमगाहणा जाणना. फरक इत्नाही की आकाश
तो अरूपी अचेतन्य है, और सिद्ध अरूपी सचेतन्य हैं[२]
किसी विद्वानसे पूछा जाय कि–आप जित्नी विद्या पढ
हो वो हमे हस्तावल [हाथमें आवले के फलकी] माफि
क बतावो; परंतु वो बता सक्ता नहीं है. तैसेही सिद्ध
भगवंतको भी "ज्ञानं स्वरूप ममलं प्रवदन्ति संतः" अ
र्थात् संतः सत् पुरुष निर्मळ ज्ञानरूप बताते हैं. (३) औ
र जो रूपी पदार्थ का दृष्टांत देवे तो मट्टीकी मूशमें मे-
णका पटलगा पीतलादि धातुका रस डाल भूषणादि ब-
णाते हैं. वो भूषण उसमेसे निकाले पीछे मूशमें मेण
(मोन) का भाप मात्र आकार रहता है. तैसेही सिद्ध
भगवंतका अरूपी आकारकी अव गाहणा है. [४] कॉ-

त्वों के पार गामीयों की भी बुद्धि हाल तक वहां न पहोंची, तो अब क्या पहोंचेंगी? जो विशेष ही दोड करी तो इतना कह शक्ते है कि-वहां एकला जीव कर्म कलंक व सर्व संग रहित, तन् सत् चिदात्म, अपने ही प्रदेश युक्त विराज-मान है, वो संपूर्ण ज्ञान मयेही है.

और भी वो जीव कैसे है, सो सूत्र से कहते हैः—

सूत्र—ण दीहे, ण हस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरसे, ण परिमण्डले, ण किण्हे, न णीले, ण लोहीए, ण हालिद्दे, ण सुक्किले, ण सुरहिगंधे, ण दुरहिगंधे, ण तित्ते, ण कडुए, ण कसाते, ण अंबिले, ण महुरे, ण कक्खडे, ण मउए, ण गुरुए, ण लहुए, ण सिए, ण उण्हे, ण णिद्धे, ण लुक्खे, ण काउ, ण रुहे, ण इत्थि, ण पुरिसे, ण अन्नहा, परिण्णे सण्णे उवमा ण विज्जति, अरूवी सत्ता अपयस्स पयंणात्थि.

आचारांग सूत्र अ० ५

अर्थात्—सिद्ध अवस्थाके विषय रहे हुये जीव नहीं लम्बे हैं, नहीं तिगणों हैं, नहीं लड्डू जैसे गोल हैं, नहीं तीखुण, नहीं चोखुण, नहीं चुडी जैसे मंडलाकार, नहीं काले, नहीं हरे, नहीं लाल, नहीं पीले, नहीं श्वेत, नहीं सुगन्धी, नहीं दुर्गन्धी, नहीं मिरच

ओं के पार नार्किकों की भी बुद्धि हाल तक वहां न
पहोंची, तो अब क्या पहोंचेगी? जो विशेष-हीं कोइ
करे तो इतना कह सके कि-वहां एक २ जीव क
र्म कलंक व सर्व मेल रहित, तत् सत् चिदात्म, अप
ने २ प्रदेश युक्त विराजमान हैं, वो संपूर्ण ज्ञान म
यी हैं.

और भी वो जीव कैसे हैं, सो सूत्र में कहते हैं:—

सूत्र—ण दीहे, ण हस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउ
रंसे, ण परिमण्डले, ण किण्हे, ण णीले, ण लोहिए,
ण हालिद्दे, ण सुक्किले, ण सुरहिगंधे, ण दुरहि गंधे,
ण तित्ते, ण कडुए, ण कसाते, ण अंबिले, ण महुरे,
ण कक्खडे, ण मउए, ण गुरुए, ण लहुए, ण सिए,
ण उण्हे, ण णिद्धे, ण लुक्खे, ण काउ, ण रुहे, ण इ
त्थि, ण पुरिसे, ण अन्नहा, परिण्णे सण्णे उवमा ण
विज्जति, अरूवी सत्ता अपयस्स पयंणत्थि.

आचारांग सूत्र अ० ५

अर्थात्—सिद्ध अवस्थाके विषय रहे हुये जीव
नहीं लम्बे हैं, नहीं ठिगणे हैं, नहीं लड्डु जैसे गोल हैं,
नहीं तीखुण, नहीं चोखुण, नहीं चुडी जैसे मंडला-
कार, नहीं काले, नहीं हरे, नहीं लाल, नहीं पीले,
नहीं श्वेत, नहीं सुगन्धी, नहीं दुर्गन्धी, नहीं मिरच

जैसे तीखे, नहीं कडुवे, नहीं कषायले, नहीं खट्टे, न नहीं मीठे, नहीं कठिण, नहीं नरम [कोमल] नहीं भारी [वजनदार] नहीं हलके, नहीं ठन्डे, नहीं उष्ण (गरम) नहीं स्निग्ध (चीकणे) नहीं लुखे, इत्यादि किसी भी प्रकार के नहीं हैं. अब उनको जन्मनाभी नहीं, मरना भी नहीं, किसीका संग भी नहीं; नहीं है वो स्त्री, नहीं है पुरुष, नहीं हे नपुंसक, परन्तु सर्व पदार्थके जाण पिरिज्ञाता=संपूर्ण पणे जाणते हु ये, सदा स्थिरभूत विमाराजमान हैं, उनको ओपमा दी जाय ऐसा पदार्थ एकही जगत् में नहीं हैं क्यों क्यों कि वोतो अरूपीही हैं, और ओपमा देने लाय क व वचनेसे कहे जावें वो पदार्थ रूपी हैं, इस लिये अरूपी को रूपी की ओपमा छाजती नहीं हैं, और उनकी भी अवस्था किसी प्रकारके विशेषण देने ला यक हेही नहीं; इस लिये ही कहा जाता है कि उन को जान ने के लिये बताने के लिये, कोइ भी शब्द शाक्तिवंत नहीं हैं. फक्त व्यक्ति रूपही गुणोचारन कर सक्ते हैं.

गाथा-जहा सव्व काम गुणियं,पुरिसो भोत्तुण भोयण कोइ
तण्हा छुहा विमुक्को, अच्छेज जहा अभियतित्तो १८
इय सव्व कालातित्ते,आउलं निव्वाण मुवगया सिद्धा

सासय मव्वा बाहं, चट्ठइ सुही सुहं पत्तो. १९

उववाइ सूत्र.

अर्थात्–यथा दृष्टांत कोइ पुण्यवन्त, श्रीमंत सर्व प्रकार के सुख कि सामग्री युक्त जो इच्छित–रा गणी आदि श्रवण कर, नाटकादि अवलोकन कर, पु ष्पादी सुंघकर, षड रस भोजन इच्छित भोगवकर, और इच्छित सर्व सुखों का भोगोपभोग ले कर तृप्त हो, निश्चिंत सुख सेजा मे अनन्द के साथ बेठा है, सर्व कामना रहित संतुष्ट हुवा है, किसी भी तरह की जिसे इच्छा न रही है. तैसेही सिद्ध भगवन्त सि द्ध स्थान में सर्व काम भोग से तृप्त, निरिछित हो; अतुल्य अनोपम, अमिश्र, शाश्वत, अव्याबाध, निरा मय, अपार, सदा सुख से तृप्त हुये की माफिक सदा विराज मान हैं. उनको कदापि कोइभी काल में, कि सी भी प्रकार की किंचित मात्र इच्छा उत्पन्न होती ही नहीं हैं, ऐसे परमानन्द परम सुख में अनंत काल संस्थित रहते हैं.

ऐसे २ अनेक सिद्ध परमात्मा के गुण, स्टन मनन निदिध्यासन, एकाग्रतासे लयलीन हो ध्यान करे उस वक्त अन्य कल्पना को किंचित् मात्र, अपने हृदय में प्रवेशही नहीं करनेदे, जिधर दृष्टि करे, उध

र वोही वो दृष्टि गत होवें. ऐसा लय लीन हुवा जी व दृढाभ्यास से उसही स्वरूप को ज्ञान दृष्टि कर देखने लगे, तब सिद्ध स्वरूपकी और अपने स्वरूपकी तुल्यता करे कि-इनमे और मेरेमें क्या फरक है. कुछ नहीं, जो रूप यह है वोही यह है. मेरा निज स्वरूप ही परमात्मा जैसा है. सर्वज्ञ सर्व शक्ति वान निष्कलंक, निराबन्ध चैतन्य मात्र सिद्ध बुद्ध प्रमात्मा में ही हूं. ऐसे भेद रहित बुद्धि की निश्चलता स्थिरता होय, अपको आप शरीर रहित या कर्म कलंक रहि शुद्ध चित अनन्द मय जानने लगे. ऐकांतताको प्राप्त होवे. फिर द्वितीय पन विलकुल रहे नहीं. उस समय ध्याता और ध्येयका एकही रूप बन जाता है.

> अशब्द मस्पर्श मरूप मव्ययं ।
> तथाऽरसं नित्य मगन्ध वञ्चयत् ॥
> अनाद्य नन्तं महतः परंध्रुवं निचाय्य ।
> तं मृत्यु मुखात प्रमुच्यते ॥१५॥
>
> कठोपनिषद-तृतीयवल्ली.

अर्थ—शब्द, स्पर्श, रूप गंध, रस, इन्द्रिय इन से रहित, अविनासी सदा एक से अनंत अति सूक्ष्म, उत्पन्न प्रलय रहित, अचल, इन गुणों से संयुक्त ऐसे परमात्मा को जो पहचानेगा

जो मृत्यु की पास छूट उसंही (परमात्म)रूप बनेगा.

ऐसे जिनके सर्व विकल्प दूर हो गये हैं. रागा दि दोषोंका क्षय होगया है, जानने योग्य सर्व पदार्थ को यथा तथ्य जानने लगे. सर्व प्रपंचसे विमुक्त हो गये. मोक्ष स्वरूप होगये, सर्व लोकका नाथपणा जिनकी आत्मामें भाष होने लगा, ऐसे परम पुरुषको रूपातीत ध्यान के ध्याता कहीए.

इस ध्यान के प्रभाव से, अनादि जक्कड बन्ध जो कर्म का बन्ध है, उसे क्षण मात्र मे छेद, भेद तत्क्षिण केवल ज्ञान और केवल दर्शनको संपादन कर, निश्चय से मोक्ष सुख पावे. (यह ध्यान आगे कहेंगे उस शुक्लध्यान के पेटे में हैं.)

ऐसे शुद्ध ध्यान के प्रभाव से ध्याता पुरुषकी आत्मा निर्मल होते अष्टऋद्धि (आठ प्रकारकी आत्म शक्ती) प्रगट होती है. सो विस्तार से यहां कहते हैं.

१ "ज्ञान ऋद्धि" के १८ भेदः— १ केवल ज्ञान, २ मन पर्यव ज्ञान, ३ अवधी ज्ञान, ४ चउदे पूर्वी, ५ दश पूर्वी, ६ * अष्टांग निमित, ७ 'बीज

---

* निमित के ८ अंग-१ अंतरिक्ष=आकाशमे चंद्र सूर्य ग्रह नक्षत्र बादल आदि देखके, २ भूमि=पृथ्वी कंपनेसे [आदि से पृथ्वी गत निधान जाने]. ३ अंग=मनुष्या-

बुद्धि' –शुद्ध क्षेत्र में योग्य वृष्टिसे धान्यकी वृद्धि होय, त्यों सहजा नंदी आत्ममें ज्ञानकी वृद्धि होय, ८ 'कोष्टक बुद्धि'–ज्यों कोठार में वस्तु विणशे नहीं त्यों ज्ञान विणशे नहीं. तथा राजा का भंडारी भंडारमेंसे वक्तोवक्त यथा योग्य माल देवे त्यों ज्ञान देवे, ९. § पदानुसारणी–एक पद के अनुसारसे सर्व ग्रन्थ समज जाय. १० संभिन्न श्रुत *–सूक्ष्म शब्दभी सुण ले, तथा एक वक्त में अनेक शब्द सुणे, ११ दुरास्वाद=भिन्न २ स्वादको एकही वक्त में जाणले, तथा दूर रहा हुवा रस को स्वादले, १२—१६† श्रवण, दर्शन, घ्राण, स्वाद, स्पर्श, इन ५ ही इन्द्री की तीव्र

दिके अंग फरकनेसे, ४ स्वर=दुर्गादी पक्षीके शब्दसे, ५ लक्षण=मनुष्य पशु के लक्षण देख, ६ व्यंजन तिल मसादि व्यंजन देख, ७ उत्पात =रक्त दिशादि देख, ८ स्वपन–स्वपनमें, इन आठ कामोंसे होते हुये शुभाशुभ होतब को जाणे परन्तु प्रकाशे नहीं.

§ पदानु सारणी के तीन भेद–प्रती सारी पहले पद मिलावे, अनुसारी–छेले पद मिलावे, उभयासारी–विचके पद मिला ग्रन्थ पूर्ण करे.

* १२ जोजन तकका शब्द सुणले.

† पंच इन्द्रीके विषयको ९ जोजनके अंतरसे ग्रेहन करे

शक्ति होवे, १७ प्रत्येक बुद्ध—उपदेशबिन अन्य संयो गसे वैराग्य आवे, १८ वादीश्वर शक्ति-इन्द्रादी देवका भी चरचामें पराजय करे.

२ 'क्रिया ऋद्धि' के ९ भेद-१ जलचरण—पाणी पे चले पर डूबे नहीं, २ अग्नि चरण—अग्निपे चले पर जले नहीं, ३—६ पुफ चरण—फूलपे, पतचरण—पत्तेपे, बीज चरण—बीजपे, तंतु चरण—मकडी के जालके तं-तुपे चले पर वो बिलकुल दबे नहीं, ७ श्रेणी चरण पक्षीकी तरह उडे, ८ जंघा चरण—जंघाके हाथ लगनेसे और ९ विद्याचार—विद्यके प्रभावसे क्षण मात्रमें अनेक योजन चले जाय.

३ 'वैक्रय ऋद्धि' के ११ भेद—१: अणिमा=सूक्ष्म शरीर बनावे. २ महिमा—चक्रवर्ती की ऋद्धि बनावे. ३ लघिमा—हवा के जैसा हलका शरीर करे, ४ गरिमा—वज्र जैसा भारी शरीर करे, ५ प्राप्ति—पृथवी पे रहे मेरुचुलका का स्पर्श करले, ६ प्राकाम्य=पाणी पे पृथवीकी तरह चले, और पाणी में डूबे जैसे पृथ. वी में डूबे, ७ ईशत्व—तीर्थंकरकी तरह समवसरणादि ऋद्धि बनावे, ८ वशत्व=सबको प्यारा लगे, ९ अप्रतिघात—पर्वतके अन्दर से भेद के निकल जाय. १० अन्तर्धान=अदृश्य (गुप्त) हो जाय, और ११ कामरूप

इच्छित रूप बनावे.

४ तप ऋद्धि के ७ भेद=१ उग्रतप–एक उपवास का पारणा कर दो उपवास करे, दो के पारणे तीन उपवास यों आव जीव लग चडाते जये सो उग्रतप. और जीवतव्यकी आशा छोड तपकरे सो उग्रो ग्र तप, तथा एकांत उपवास करे उसमें * अंतराय आजाय तो वेले २ पारणा करे, यों चडाते जाय सो 'अवस्थितोग्रतप' २ 'दीप्ततप' तप करके शरीर तो दुर्बल हो जाय, परंतु शरीर से सुगन्ध आवे. कान्ती वडे. ३ 'तप्ततप' ज्यों तप लोहेपे पडा हुवा पानी सूके जाय तैसे तीव्र क्षुधा लगने से थोडा अहार करे जिससे लघुनीत वडीनीत की बाधा न होवे, और देवता से भी ज्यादा शरीर में बल आव. तथा अनेक लब्धीओं प्राप्त होवे, ४ 'महातप' मास क्षपण आदि छसासी तप करे, क्षिणंतर रहित श्रुत ज्ञान में लक्षी न वने रहें, जिससे परम श्रुत, अवधी, मन पर्यव ज्ञानकी प्राप्ति होवे, ५ 'घोर तप' महा वेदना उत्पन्न हुये भी किंचित ही कायरता न करे, औषध न लेवे,

* पारणाका जोग नहीं बने. तथा अन्य कारणसे उपवासमें अंतराय आजाय तोफिर वेले २ पारणा करे, फिर अन्तराय आवे तो तेले ३ करे यों आयु तक बढा-ते जाय,

ग्रहण किया तप न छोडे, उग्रह (वीकट) अभिग्रह धारण करे, शरीरकी संभाल न करे, ममत्व रहित विचरे, ६ घोर पराक्रमी स्वशक्ति तप संयमके अतीशयेत जगत् त्रयको भयभ्रांत कर सके, समुद्र शोके और पृथवी उलटी कर शके इत्यादि महाशक्तिवंत होवे, ७ घोरगुण ब्रम्हचारी' नववाड विशुद्ध नव कोटि शुद्ध शुद्ध शील व्रतादिके प्रसाद से तीन जगतके महा रोगको उपशान्त के शांती वरता सके, सर्व भये निवारनके, व्यंतरभय, जंगम, स्थावर विष, वगैरे उपसर्ग उनपे किंचितही असर पराभव न कर सके, यह रहे वहां मारी मारी दुर्भिक्षादि उपद्रव न होवे. इत्यादि महा प्रभाव वंत होवे.

५ 'बल ऋद्धि' के ३ भेदः—१ मन वलीये—राग द्वेष संकल्प विकल्प परिणाम रहित मन रहे, २ वचन वलीये—अन्तर मुहूर्त में द्वादशांगी का अभ्यास करे, बहुत काल पढने भी श्रम पेदा न होवे, ३ 'काया वलीये'—मास वर्ष पर्यंत कायुत्सर्ग करे तो भी थके नहीं ऐसे महाशक्तीवंत.

६ 'औषध ऋद्धि' के ८ भेदः—१ आमोसही—चरण रज (पग धूल) के स्पर्श से, २ खेलोसही—श्लेष्म थूक आदि स्पर्श से, ३ जलोसही—शरीर

के पसीने क स्पर्श स, ४ मलोसई—कण चक्षु नाशी. कादिके शरीरके मेलके स्पर्श से,५विपोसही—विष्ट मूत्र के स्पर्श से, और ६ 'सव्वोसही'— सर्व स्पर्श से (इन ६ का स्पर्श रोगीके होनेसे उसका) सर्व रोग नाश होवे, ७ आसीविष—विष अमृत रूप परगमे तथावचन श्रवण मात्रसे सर्व विप विरला जाय. ८'दृष्टी'विष रूप, दृष्टि मात्रसे सर्व विप अमृत मय होजाय. और कोप कर. देखे तो अमृत विषमय हो जाय, महा विकारी निर्वि कारी बने ऐसे महा शक्तीवंत.

७ 'रस ऋद्धि' के ६ भेदः—१ अस्सी विषा' कोप वंत वचन मात्र से और २ 'द्रष्टि विषा'-दृष्टी मात्र से दुसरे के प्राण नाश कर शके. ३ 'खीरासवी' निरस आहार हस्त स्पर्श से क्षीर जैसा हो जाय, तथा वचन मन्न से निर्बल को पुष्ट बना दे. ४ महुरासवी-कटु आहार स्पर्श स मधुर हो जाय, तथा वचन मधुर मध [सिहत] जैसे प्रगमे, (सप्पिरासवी) लुक्खा अहार स्पर्श से घृतसे संस्कार जैसा होजाय, तथा वचन से रोग गमाशके, ६ अमइरासवी-विष स्पर्श से अम्रत जैसा हो जाय तथा वचन से जेहर उतार शके.

८ 'क्षेत्र ऋद्धि, के २ भेद—१ अखीण माणसी

अल्प आहार स्पर्श से अस्तुट हो जाय, चक्रवर्ती की अन्यभी औम जाय तो स्तुट नहीं, २ अक्षीण महालय स्पर्श मात्रसे भोजन वस्त्र पात्र सर्व अस्तुट होय.

यह सर्व १८+९+११+७+३+८+६+२=६४ भेद लब्धी-ऋद्धि के हुये.

महातप और शुद्ध ध्यान के प्रभावे, ऐसी २ लब्धीयों आत्म शक्तियों मुनिराजके प्रगट होती है, परंतु वे कदापि इनके फलकी इच्छा नहीं कर ने हैं, ना फ इना तो कहा रहा!

श्लोक-अहो अनन्त वीर्यो अय-मात्मा विश्वप्रकाशकः।
त्रैलोक्यं चलायत्वे, ध्यान शक्ति प्रभावतः ॥१॥

अर्थ—अहो! सम्पूर्ण विश्व (जगत) को प्रकाशित करने वाली आत्मा! तेरी शक्तिका कोण वरणन् कर शक्ते हैं? तूं अनंत अपार शक्तिवत है. जो तूं स्वच्छ अनंत ध्यान में तन्मय हो कदापि अपना पराक्रम बज नावे तो एक क्षण मात्र में अधो मध्य उर्ध तीनही लोकको हला शक्ति हैं!! यह तो द्रव्य गुण कहे, और भावे गुणसे अनंत अक्षय मोक्ष सुखकी प्राप्तिका करनेवाला शुद्ध ध्यान है.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजीके सम्प्रदायके बालब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलक ऋषिजी रचित ध्यान कल्पतरू ग्रन्थका शुद्धध्यान नामे उपशाखा समाप्तम्.
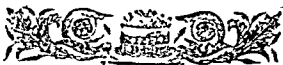
चतुर्थ शाखा-"शुक्ल ध्यान."

सुक्के झाणे चउविहे चउ प्पडोयारे पण्णते तंज्जहाः—

अर्थात्-शुक्ल ध्यान के चार पाये, चार लक्षण, चार आलंबन और चार अनुप्रेक्षा. यों १६ भेद भगवंत ने फरमाये हैं, वो जैसे हैं वैसे यहां कहते हैं:-

धर्म ध्यान की योग्यता से शुद्ध ध्यान ध्याते मुनि अधिक गुणोकों प्राप्त होते हैं. अत्यंत शुद्धता को प्राप्त होते हैं; वह धीर वीर मुनिवर शुक्ल ध्यान को ध्याते हैं.

शुक्ल ध्यानके गुण.

शुक्ल ध्यानकी योग्यता जिनको प्राप्त होती है उनकी आत्मा में स्वभाविकता से सद्गुणोंका उद्भव होता है वह गुण 'सागार धर्मामृत' ग्रन्थकी टीकामें इस तरह कहा है.

श्लोक—यस्यान्द्रियाणी विषयेषु निवृतत्तानि,

सङ्कल्प मण्य विकल्प विकार दोषैः
योगै सदा त्रिभिहर निशितान्तरात्मा,
ध्यानं तु शुक्ल मिति तत्प्रवदान्ति तज्ज्ञः

यस्यार्थ*—१ जो इन्द्रियातीत होय अर्थात् पंच इन्द्रियोंकी २३ विषय और २४० विकार से

---

*पांच इन्द्रिके २३ विषय और २४० विकार—१ श्रुतेन्द्री के जीव शब्द अजीव शब्द और मिश्र यह शब्द ३ विषय. यह ३शुभ और अशुभ यों ६. इन ६ पे राग और द्वेष यों १२ विकार. २ चक्षु इन्द्री के काला, हरा, लाल, पीला, श्वेत, यह ५ विषय. यह ५ सचित, ५ अचित, और ५ मिश्र यों १५ शुभ और १५ अशुभ यो ३० पे राग और ३० पे द्वेष यह ६० विकार. ३ घणेंद्रीके सुगंध और दुर्गंध ये २ विषय. यह सचित अचित और मिश्र यों ६ पे राग और ६ पे द्वेष यह १२ विकार. ४ रसेंद्री के खट्टा, मीठा तीखा कड़, कषायला ये ५ विषय. यह सचित अचित और मिश्र १५ ये १५ शुभ और १५ अशुभ यो ३०, इन ३० पे राग और ३० पे द्वेष यों रसेंद्री के ६० विकार. ५ स्पर्शेन्द्री हलका, भारी, सीत, उष्ण, रूक्ष, चिकण, नरम, कठिण, ये ८ विषय. यह सचित अचित मिश्र यों २४ शुभ और २४ अशुभ यों ४८ पे राग और ४८ पे द्वेष, यों ९६. सर्व २३ विषय और २४०विकार पांचो इन्द्रियों के होते हैं.

निवृत हो शात वन कुमार्गमें प्रवेश करनेसे अटक ग ए. २ इच्छातित-अर्थात् उनका मन सर्व प्रकारकी इ च्छा-चहासे निवृत्त गया, जिससे उनके चित्त में कि सीभी प्रकार का संकल्प विकल्प (चलविचल) पणा नहीं रहा, एकांत न्याय मार्ग के तर्फ लग गया, सुरां गना और सुरेंद्रकी ऋद्धि भी उनके चित्तको क्षोभ उपजा नहीं शक्ति है, ध्यान से चला नहीं शक्ति है. तथा इस लोकमें पूजा श्लाघा, और परलोकमें देवा दिककी ऋद्धि की वांछा न होवे, मेरु समान प्रणाम की धारा स्थिरी भूत हुइ है. ३ योगातीत-अर्थात् म न वचन और कायके योगका निरुंधन किया, मन को आत्म ज्ञानमें रमावे, वचनविन मतलब न उचारे, और काया का हलन चलन विन प्रयोजन नहीं होवे 'ठाण ठिय' एक स्थान स्थिरी भूत करे, ४ कषायतीत, क्रोधादि कषाय की लाय [अग्नि] को बुजाके शांत शितल बन गये है. अपमानादि मरणांतक जेम घोर उपसर्गोहोने से भी कदापि कम्पित होने तो दूर रहा, परन्तु मनमेंभी दुभाव न लावे. ५ ० क्रियातीत-अर्थात्

१ अर्थ-मेरे किया जो मतलब से कर्म करे सो अ र्थ दंड किया, २ विना मतलब करे सो अनर्थ दंड कि या. ३ जीव घात करे सो हिंसा दंड ४ आचिंत कर्म हो

यह शुक्लध्यानके ४ पाये. जैसे मकानकी मजबूतीके लिये पाये (नीम) की मजबूती-पक्काइ करते हैं, तैसेही शुक्ल ध्यानी ध्यानकी स्थिरता रूप चार प्रकारके विचार करते हैं.

प्रथम पत्र–"पृथक्त्व वितर्क"

१ पृथक्त्व वितर्क *–जीवा जीव की पर्याय का प्रथक २ (अलग २) विचार करे, अर्थात् श्रुतज्ञान (शास्त्रोक्तरीत) से पहले जीव की पर्याय का विचार करते अजीव की पर्याय में प्रवेश करे; और फिर अजीव की पर्याय का विचार करते जीवकी पर्याय में प्रवेश करे, नय, निक्षेपे, प्रमाण, स्वभाव, विभाव इत्यादि रीतीसे भिन्न २ करके चिंतवन करे. तथा आत्मा द्रव्यसे धर्मास्ती का पृथक पणा करे, द्रव्य गुण पर्याय का भी पृथक पणा करे, आत्मा के सामान्य और विशेष गुणका पृथक पणा करे, एक पर्याय के भी द्रव्य गुण पर्याय का पृथक पणा चित

* पृथक–विविध प्रकार. वितर्क–श्रुत ज्ञान विचार. अर्थात्–व्यंजन संक्रम सो अभिधान, उससे हुवा. २ अर्थ संक्रम अर्थका पोंच और वो प्रगम, ३ योग संक्रम मनादी त्रियोग में रमण. ये तीन संक्रम इस पाये में होते हैं.

व, और आत्मा के असंख्य प्रदेशों मे से एक प्रदेश को भी व्यंजन अर्थ योग से भिन्न पणा द्रव्य गुण पर्याय विचारे! यों विविध रूप से एकेक वस्तु का विचार करते उस में प्रवेश कर, वीतर्क अनेक प्रकारके तर्क वीतर्क उपजावे, और उसका अपनेही मन से समाधान करते जाय. ऐसे उसमे तल्लीन बने. फिरे अपनी आत्मा की तर्फ लक्ष पहोंचावे कि यह प्रत्यक्ष दिखता पुद्गल पिण्ड और अन्दर रहा आत्मा की चैतन्यता, दोनो अलग २ दिखती हैं. प्रत्यक्ष भाप होते हैं. परन्तु अनादि काल की एकलता के कारण से बह्य में एक रूप दिखते हैं, तो भी निज २ गुण में दोनों अलग २ हैं, जैसे क्षीर नीर (दुग्ध पाणी) मिलनेसे एक रूप हो जाताहै. तो भी दुग्ध दुग्ध के स्वभाव में है. और पाणी पाणी के स्वभाव में है. जो एकल होय तो हंसके चूंचके पुद्गल के प्रभाव से अलग २ कैसे हो जाते हैं. ऐसेही देह [शरीर] और जीव, तथा कर्म और जीव, एक्यता रूप दिखते हैं, परन्तु चैतन्यका चैतन्य गुण, और जडका जड गुण, निज २ सत्तामें अलग है,ऐसा निश्चयसे जान दोनोकी पृथकता का त्याग कर, निज चैतन्य स्वभाव में स्थिरता होवे, द्वादशांग वाणी के पाणी रूप समुद्र में

गोता खावे. यह ध्यान चउदे पूर्व के पाठी कोही हो
ता है. यह ध्यान मन वचन काय के योगों की दृढ
ता से होता ही रहता है. यह ध्यान ध्यानी वक्र यो
गोका पलटा होता ही रहता है एक योगसे दुसरे में
और दुसरे से तीसरे में यों योगों का पलटा होताही
रहता है. विचार पलटने से ही पृथक वितर्क ध्यान
इसका नाम है. ८, ९, १०, ११, इन गुण स्थान में
मुनि को होता है. इस ध्यान से चित्त शांत हो जा
ता है, आत्मा अभ्यंतर दृष्टिवो प्राप्त होता है, इन्द्रि
यों निर्विकार होती है, और मोह का क्षय तथा उप
शम होता है.

द्वितीय पत्र-"एकत्व वितर्क"

२ एकत्व वितर्क—इस का विचार पहले पाये
से उलटा है, अर्थात् पहले पाये में पृथक २ (अलग २)
वितर्क-तर्क कही, और इस में एकत्व एकता रूप
वितर्क-तर्क है. यह विचार स्वभाविक होता है, इस
पाये वाले ध्यानियों का विचार पलटता नहीं है, ए
क द्रव्य का व एक पर्याय का व एक गुणादि को,
चिन्तवने, उसी में एकाग्रता लगावे, मेरु की स्थिरता
रूप हो जावे. यह ध्यान फक्त १२ में गुण स्थान में

होता है, इस ध्यान में संलग्न हुये पीछे, क्षण मात्र में मोह कर्म की प्रकृतियों का नाश करे; उसही के साथ ज्ञान वरणिय, दर्शना वर्णिय. और अंतराय, यह तीनही कर्म प्रलय होजाते हैं. अर्थात् चारही घन घाती कर्म खपाते हैं, (यहां तेरमा गुण स्थान प्राप्त होता हैं और दुसरे पाये से आगे बढते हैं.) के उसी वक्त केवल ज्ञान और केवल्य दर्शनकी प्राप्ति होतीहै (केवल ज्ञान की महिमा) यह केवल ज्ञान अपूर्व है अर्थात् पहले कभी ही प्राप्त नहीं हुवा, अबलही पाये हैं. केवल ज्ञानी सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते हैं. सर्व लोका लोक, बाह्याभ्यंतर, सुक्ष्मबादर, सर्व पदार्थ हस्तामल की तरह जानते देखते हैं, त्रिकाल के हो तब को एकही समय मात्र में देखलेते हैं. अनंत दान लब्धि भोग लब्धि उपभोग लब्धि, लाभ लब्धि और बल वीर्य [शक्ति] लब्धि, की प्राप्ति होती है. उसी वक्त देविन्द्र मुनिन्द्र (आचार्य) उनको नमस्कार करते हैं. (और जो उनो ने पहले के तीसरे भव में तीर्थंकर गोत्र की उपार्जना करी होय तो) उसीवक्त समव सरण की रचना होती है. उसके मध्य भागमें ३४ अतिशय कर के विराजमान होते हैं. और ३५ गुण युक्त वाणी का प्रकाश करते हैं. उस वाणी रूप

सूर्य का का उदय होनेसे मिथ्यत्व तिमिर (=अन्धकार) का तत्क्षण नाश होते हैं. और भव्य जन रूप कमलों का वन परफूलित होता है, उनके सद्बोध श्रवण से हलु कर्मी जीव सुपन्थ लगके भव भ्रमण रूप या संचित पापरूप कचरेको जलाके भस्म करते हैं, और मोक्ष के सन्मुख हो मोक्ष को प्राप्त करते हैं. ऐसा परमोपकार का कर्ता केवल ज्ञान है, केवल ज्ञानीही तीसरे पायको प्राप्त होते हैं.

तृतीय पत्र-"सूक्ष्म क्रिया."

३ सूक्ष्म क्रिया=अप्रतिपाति यह तेरमें गुणस्थान में प्रवर्तते केवल ज्ञानीयों को होथा है, सूक्ष-थोडी क्रिया-कर्म की रज रहे, अर्थात् जैसे भुंजा हुवा अनाज खाने से पेट तो भरा जाता है परंतु बाया हुवा उगता नहीं है, तैसेही अघातीये कर्म की सत्तासे चलनादि क्रिया कर सक्ते हैं, परंतु वो कर्म भवांकुर उत्पन्न नहीं कर सक्ते हैं. आयुष्य है वहांतक है. और उनके योगने सूक्ष्म इर्या वही क्रिया लगती है, अर्थात् मन वचन कायाके शुभ योगकी प्रवृती होते, अहार, निहारादि करते सूक्ष्म जीवोंकी विराधना होने से क्रिया लगे, उसे पहले समय बन्धे, दूसरे

समय वेद. और तीसरे समय निर्जर, [दूर करे] जैसे कॉचपे लगी हूइ रज, हवासे दूर होय; त्यों क्रिया दूर हो जाती है. और अप्रतिपाति कहीये आया हूवा ज्ञान पीछा जाता नहीं है; अर्थात्. मति आदि चार ज्ञान तो परिणामों की वृद्धि से वडते है, और हीनतासे चले भी जाते हैं परंतु केवल ज्ञान आया हूवा पीछा जाता नहीं है, और संपूर्णता है. इस लिये हानी वृधीभी नहीं होती है.

चतुर्थ पत्र-"समुछिन्न क्रिया"

४ समुच्छिन्न क्रिया-अनिवृति-यह चोथा पाया चउदमें (छेले) गुणस्थान में होता है, चउदवे गुणस्थान का नाम अयोगी केवली है. अर्थात्-वो मन. वचन, कायाके योग रहित हो जाते है, जिससे समुच्छिन्न क्रिया' अर्थात्-सर्व क्रिया नष्ट हो जाती है. जहां योग और लेश्या नहीं वहां क्रिया का काम ही नहीं रहता है; वो अक्रिय होते हैं. और 'निवृति सो शैलेशी (मेरु पर्वत जैसी स्थिर) अवस्थाको प्राप्त होते हैं. जिसमें वो शुद्ध चित पूर्णानन्द, परम विशुद्धता निर्मलता होती है, सदानिक कर्मका नाश हो, शुद्ध चैतन्यता प्रगट हो जाती है, फिर वो उस

स्वभावसे कदापि निवृतने नहीं हैं. मोक्ष पधारे उस ही स्थिती में अनंत काल कायम बने रहते है, यह शुक्ल ध्यान का चौथा पाया.

द्वितीय प्रतिशाखा-शुक्लध्यानके लक्षण

सूत्र-सुक्कस्सणं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णता तंजहा. विवेगे, विउसग्गे, अवहे, असमोहे.

अर्थ-शुक्लध्यान ध्याताके चार लक्षण (पहचान) भगवंतने फरमाये सो कहते हैं१ विवक्त=निवृत्ती भाव, २ व्युत्सर्ग-सर्व सङ्ग परित्याग, ३ अवस्थित-स्थिरी भूत, और ४ अमोह-मोह ममत्व रहित.

प्रथम पत्र-"विवक्त"

१ विवक्त शुक्लध्यानीका सदा यह विचार रहता है

गाथा-एगो में सासउ अप्पा, नाण दंसण संजओ।
सेसामे बाहिरा भावा, सव्वे संजोग लक्कणा. ॥१॥

अर्थ-मे एक हूं, मेरा दूसरा कोइ नहीं है. मै दूसरे किसीका नहीं हूं. अर्थात् मुझे किसीभी द्रव्यनें उत्पन्न नहीं किया. जीव द्रव्य आनादि अनंत है. इस को उत्पन्न करनेकी या नाश करनेकी शक्ति किसी भी अन्य द्रव्यनें नहीं है. तैसही यह कभी उत्पन्नभी नहीं हुवा, क्यों कि अनादी है और कभी नाश भी

नहीं होनेका, क्यों कि अवीनाशी और अनंत हूं. इस लियेही कहा है की "सासउ अप्पा" अर्थत् आत्मा शाश्वती है, जो उपजता है उसका नाशभी होता है, आत्मा उत्पन्न नहीं हुइ, इसी लिये इस का नाश भी नहीं है. आत्म शाश्वती है. आत्मा-असंग है. अभंग है, अरंग है, सदा एकही चैतन्यता गुणमें रमण कर्ता है. पर सङ्ग की इसे कुछ जरूरही नहीं है. आत्मा का निज गुण ज्ञान और दर्शन है. वो अनादि अनंत है. यह ज्ञान और दर्शन कहने रूप दो है परन्तु सङ्कत्व से एकही है. क्यों कि इकेला ज्ञान कोइ स्थान विशेष काल ठहर शक्ता नहीं है, ज्ञानके साथ ही दर्शन उत्पन्न होता है. ज्ञानका अर्थ जानना, और दर्शनका अर्थ श्रद्धना ऐसा होता है, येही जीवके लक्षण हैं. इन सिवाय और जो कूछ है * सूक्ष्म (अदृष्ट)

* पुद्गल ६ प्रकारके होते हैं, १ बादर बादर जो टुकडे हुये पीछे आपसमें नहीं मिले जैसे पत्थर काठ वगैरे २ बादर-जो टुकडे (अलग)हुये पीछे मिलजाय जैसे घृत तेलदूध वगैरे. ३ बादर सूक्ष्म-दिखे परन्तु ग्रहण नहीं किये जाय जैसे धूप छाया चांदनी वगैरे. ४ सूक्ष्म-बादर-शरीर को लगे परन्तु दिखे नहीं जैसे हवा सुगन्ध वगैरे. ५ सूक्ष्म-प्रमाणु ओ जो एकके दो नहीं होवे ६ सूक्ष्म सूक्ष्म-कर्म वर्गणा के पुद्गल-गोमट सार.

पदार्थ, व बादर (दृश्य) पदार्थ यह सब चैतन्य द्रव्य से स्वभावमें और गुणमें अलग हैं क्यों कि "सव्व सं. जोग लक्खणं" अर्थात् यह पुद्गल है इससे इनमें संजोगिक विजोगि स्वभाव सहजही है, यह इधर उधर से आके मिलभी जाते हैं, और बिछडभी जाते हैं. इनका क्या भरोसा ? ऐसा जान शुक्ल ध्यानी स्वभावसे निवृती भावको प्राप्त होते हैं, अन्य प्रवृतीको आत्म स्वभावमें प्रवेश करनेका अवकाश ही नहीं मिलता है. क्यों. कि वो पुद्गलीक स्वभावसे स्वभावेही अलग हैं.

द्वितीय पत्र-"व्युत्सर्ग."

२ व्युत्सर्ग=शुक्ल ध्यानी सदा सर्व संगके त्यागी स्वभाव सही होते हैं. श्री कपिल केवलीजीने फरमाया है:-

गाथा-विजहितु पुव्व संजोगं,नसिणेहं काहिवि कुव्विजा
असिणेह सिणेह करेहिं, दोस पदोसेहिं मुचए भिक्खु॥२
सव्वं गंथ कलहंच, विप्प जहे तहा विहं भिक्खू ॥
सव्वेसु काम जाएसु, पास माणो न लिप्पइ ता.इ ॥४॥

उत्त.ध्यय सूत्र-अ. ८

अर्थ-सर्व प्रकार-अर्थात् द्रव्य संजोग पूर्वात्

मात पितादिका पश्चात स्वशुर पक्षका; और अभ्यंत र राग द्वेषका तथा कषाय रूप प्रणतीका यह दोनों महा क्लेशका कारण भाष (मालम) हुवा, जिससे 'विप्प जहिहुं' दोनों प्रकार के सम्बन्ध से स्वभाविक-ही ममत्व दूर होगया, सम्बन्ध छूट गया. और श-ब्दादि सर्व काम, तथा गंधादि सर्व भोग पाश (ब-न्धन) जैसे मालम होनेसे, उनसे स्वभाविकही अलि स हुये, राग द्वेष रहित हुये, (पुव्व संजोग) यह पूर्व अनादि अनंत परिभ्रमण कराने वाले सम्बन्धसे पी-छा कदापि कोइ भी प्रकारसे सम्बन्धन नहीं करे और (असिणेह सिणेह करेहिं) अर्थात् अस्नेहीयों से वीतराग से स्नेह करे, की जो कदापि क्लेश और ब न्धन का कर्ता नहीं होता है, सदा बाह्याभ्यंतर शां ती और मुक्ति का दाता है. ऐसा सम्बन्ध स्वभावि क होने से सर्वथा राग द्वेष की प्रणती रहित हुये, उस से ज्ञानादि त्रि रत्नकी ज्योति स्वभाविक ही प्रदिप्त हुइ. अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप रूप चतुष्टय युक्त हुये.

तृतीय पत्र—"अवस्थित."

३अवस्थित स्थिरी भूत रहे, अनंत चतुष्टयकी

प्राप्ति से सर्वज्ञ, सर्व दर्शी, निरमोही बने, अनंत श-क्ति प्रगटी जिससे सर्व इच्छा निर मुक्त, "मेरू इव धीरा" अर्थात् ज्यों प्रचन्ड वायु से भी मेरू पर्वत च-लायमान नहीं होता है, तैसेही महान प्राणांतिक क-ष्ट प्राप्त हुये भी प्रणामों की धरा कदापि चलविचल नहीं होती है. सदा अचल रह हैं.

श्री उत्तराध्येयनजी सूत्र के दुसरे अध्याय में कहा है:—

गाथा—समणं संजयं दंत, हणीज्जा कोइ कत्थई।
नत्थी जीवस्स नासेति, एवं पेहाज्ज संज्जय॥

अर्थात्—कषाय नष्ट होने से श्रमण हुये, स्वयं आत्मा को साध नेसे संयती हुये, रागादि रिपुके नष्ट होने से दमित हुये, ऐसे ऋषिराज महाराज धीराज किसी भी कर्मोदय के योग से कोइ किसी प्रकारका दुःख दे, प्राणांत होवे ऐसा उपसर्ग करे, तब वो यह विचार करें कि मेरी आत्मा अनुपसर्ग है. अखंड अविनाशी है,

"नैनं छिदन्ति शस्त्राणी, नैवंदहंति पावकः" यह आत्मा शस्त्र से छेदी भेद जाती नहीं हैं. अग्निमें जले नहीं, पाणी में गले नहीं. इस लिये मुझे किसी

भें: प्रकार का उपसर्ग कोइ भी उपजाने समर्थ नहीं हैं, "नत्थी जीवस्स नासोत्ती" जीवका नाश कदापि हेही नहीं, इस लियेमें अमर हुं. यह मनुष्य पशुया देव जिसका नाश करने प्रवृत हैं, वोतो नाशिवंतकाही नाश करतेहें. आज कालया किसीभी आगमि कालमें नाश जरूरही होंगा ,मेंने क्रोडोयत्न कियेतो रेह नहीं,ऐसा निश्चय जिनकी आत्मामें होनेसे उनको किसीभी प्रकारकी वाधा पीडा दुःख माळुम पडताही नहीं हैं. यथा दृष्टान्त जैसे गज सुकुमाल मुनिश्वर के शिर (मस्तक) पे खीरे (अग्निके अंङ्गार) रखदिये. जिस से तड २ करती खोपरी जलके भस्म भूत होगइ, परन्तु उनो ने नाक में शल्य ही नहीं डाला. खन्धक ऋषि राज के सर्व शरीर की त्वचा (चमडी) जैसे मरे पशु का चर्म उदेडें तैसे उदेडी (निकाल) डाली, वहां रक्तकी प्रनाल वह गइ परन्तु उन्हो ने जरा सीसाट (शब्द) भी नहीं किया- खन्ध ऋषिके ५०० शिष्यों को तेली तिल को पीलता है त्यों घानी में पील डाले परन्तु वो मन में जरालाली भी नहीं लाये. मेहतार्ज ऋषिश्वर के सिरपे आला चर्म वान्ध, धूप मे खडे कर दिये जिससे जिनकी आँखो छिटक पडी; परन्तु वो मनमें जराभी दुभाव नहीं लाये. ऐसे२ अनेक दा

खले शास्त्र में दिये हुये हैं. ऐसे महान घोर उपसर्ग में परिणामोंकी धारा जिनोंने एकसी वनी रक्खी, यह सहज नहीं हैं. तो मोक्ष प्राप्त करना भी सहज नहीं है. उन्ह महात्मा को यह निश्चय होगयाथाकी "नत्थी जीवस्स नासोत्थी" जीव अजरामर है. और वो इसका नाश कदापि होनाही नहीं है. जो जले गले है वो अलगही है. और मैं अलगही हूं. फक्त दृष्टा हूं. ऐसे परिणामों की स्थिरी भूत एकल धारा प्रवृतनेसे उन्होंने किंचित काल में अनंत कर्म वर्गणाका क्षय किया. अनंत, अक्षय, अव्या वाध मोक्ष के सुख प्राप्त किये.

चतुष्ट पत्र—अमोह..

४ अमोह=अर्थात् शुक्ल ध्यानी स्वभाव से ही मोह रहित निर्मोही होते हैं. "मोह यन्धति कर्माणी निर्मोहो वीमुच्यते" अर्थात्–मोंह कर्म बन्ध करता है और निर्मोहपणा कर्म के बन्धन से छुड़ाता है, ऐसा निश्चय होनेसे शुक्ल ध्यानी के निर्मोही अवस्था स्वभाव सेही प्राप्त हो जाती है, मोह उत्पन्न करने जैसा कोइ भी पदार्थ उनको भाष नहीं होता है.

उत्तराध्ययनजी सूत्र में नित्त मुनीश्वरने कहा है,

गाथा-सव्वं विलं वियं गीयं, सव्वं नट्टं वीडं विय;
सव्वं आभरण भारा, सव्वे काम दुहा वहा.

अर्थात्—"सर्व गीत-गायन हैं सो विलाप जैसे हैं;" क्यों कि विलाप शब्दका और गीत शब्दका उत्पन्न होनेका और समाव होनेका स्थान एकही है. (मुख और कान) और दोनही राग द्वेपकी परिणती से पूर्ण हैं, गायन भी प्रेम का दर्शक और उदासी का दर्शक दोनो तरहका होता है. तैसेही रुदन भी प्रेम दर्शक और उदासी दर्शक दोनो तरहका होता है. यह भाव मोह ग्रथ जीवके मान ने उपर हैं, गीतें मोह मद से भरे हुये, कर्म वीकार से उत्पन्न हूये, चित्तको विचिन्नता उपजाने वाले, इत्यादि अनेक असद्भावका कारण है. ऐसा जाण या केवल ज्ञान से प्रत्यक्ष देख, देवता किन्नर या मनुष्यादि सवन्धी गीत श्रवण करते हुये भी स्वभाव से किंचित राग द्वेपको प्राप्त नहीं होते हैं. सर्व नृत्य-नाटक हो रहे हैं सो विटंवना मात्र है. जैसी विटंबना जीवोंकी चतुर्गति परिभ्रमण में होती है. वैसीही विटंवना कर्माधीन हो यंचारे वरते हैं. कधी पुरुष, कधी स्त्री, कधी उंच, कधी नीच, ऐसा अनेक विविध रूप धारण कर अनेक जनके वृन्द में या अनेक देवोंके वृन्दमें हास्य

रुदन नृत्य आदि कर बताते हैं, और भवोंकी विचि त्रता को भूल दोनो (नृतिक और प्रेक्षक) हर्षानन्द में गर्क होते हैं, जाणे चतुरगतिकी विटम्बना सेही तृत नहीं हुवे. सो अब स्वतःनाच या नृत्य देख तृप्ति करते हैं, यह विटम्बना जगत्की देख सर्व जगत्का नाटक ज्ञान कर देखते हूयेभी राग द्वेषमय नहीं होते हैं, "सर्व आभरण भूषण भार (वजन) भूत हैं" पृथ वीसे उत्पन्न कंकर पत्थर लोहादिक सामान्य धातू और पृथवीसेही उत्पन्न हुये रजत (चांदी) सुवर्ण या हीरा पन्ना रत्नादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं. ऐसे दोनो एक से भार युक्त होते भी, सरागी जीवों कंकर पत्थर का वजन देने से दुःख मान ते हैं. और सुवर्ण रत्नके भूषणों से लदे हुये फिर ते हर्ष मान ते हैं. वीतराग पुरुष यथार्थ दृष्टी से देखते हुवे विभुषित पे और नग्न पे समभाव से ही राग द्वेष रहित मध्य स्थ भव में रहते हैं. और जितने जक्त में दुःख हैं, वे सब काम भोग से ही उत्पन्न होते हैं, और जो का म भोग का अर्थी है वोही अनन्त दुःख मय संसार को बढाता है-उठाता है, काम भोग की अभी लाषा वाला ही दुःख पाता है यह सर्व तमाशा प्रत्य क्ष जगत् में दिख रहा है, ऐसा जाण ज्ञानी महात्मा

स्वभाव से ही सर्व अभीलाषा रहित हो, शांत बने हैं, सर्वथा मोहका नाश होने से वीतरागी बने हैं.

तृतीयप्रतिशाखा-शुक्लध्यानके आलम्बन

सूत्र-सुक्कस्सणं झाणस्स चत्तारी आलंवणा पण्णते तं जहाः—खंत्ती, मुत्ती अज्जव, मद्दव.

अर्थ—शुक्ल ध्यान ध्याता को चार प्रकार का आधार है.

१ क्षमाका, २ निर्लोभताका, ३ शरलताका और ४ नम्रताका.

प्रथम पत्र—"क्षमा."

क्षमा श्रमण क्षमा स्वभाव में स्वभाव से रमण कर ते अन्यकी तर्फ से पर पुद्गलों से, या स्व परिणतीकी विघ्नीनासे जो चित्त को क्षोभ उपजे ऐसे पुद्गलोंका सम्बन्ध मिलनेसे निजात्मके या पर आत्मके ज्ञान दर्शन चारित्र रूप पर्यायकी संकल्प विकल्पता कर घात करे नहीं, करावे नहीं, करतेको अच्छा जाने नहीं. अपने क्षमा रूप अमुल्य गुणका कदापि नाश होने देवे नहीं. शुभाशुभ संयोगों में चित्त वृतिको स्थिर रक्खे, और पुद्गलोंके स्वभावकी तर्फ दृष्टि रक्खे

विचार की जैसा २ जिन २ वक्त, जिन जिन पुद्गलों का जिन २ तरह परिणति में परगमने का इत्यादि क संयोग होता है, वो उसी वक्त प्रण में विन कभी रहताही नहीं है. यह जगतका अनादि स्वभाव है. शुक्ल ध्यानीको इस स्वभाव से प्रगति स्वभाविक विरक्त होने से वो स्वभाव उन में नहीं परिणमता है, ऐसे अनेक प्रगतीयों जगत् में भ्रमण करती हुइ वी नरागकी आत्मका स्पर्श कर खराब नहीं कर शक्ती है. जगत्का जो कार्य है सो तो अनादिसे चला आता है, और अनंत कालतक चलाही करेगा. मन, वचन, या याके, शुभ शुभ पुद्गलोंका चक्र भ्रमनाही रहता है, मिथ्या भ्रमसे भ्रमित जीव, दुउचार, दुविचार और दुआचार द्वारा करना, कराना, और अनुमोदनाकर ज्यों चीगटा घडा उडती हुइ रजको आकर्षण करता है, और मलीन होता है. तैसेही वो उन पुद्गलोंको आकर्षण कर मलीन होते हैं; जिनने निज स्वभावका अच्छादन पर स्वभाव में रमण कर, विभावको प्राप्त होते हैं. और ज्ञानी काँचके घडेकी तरह निर्लेप या लुक्खे (चिकास रहित) हैं तैसे वो जगत् में भ्रमते हुए पुद्गल उनके आत्मा पे ठहर नहीं सक्ते हैं. क्यों कि वो मगादि विषयकी अशुभ प्रवृत्तिसे स्वभावसही अलग

रहे निजात्मिक ज्ञानादि गुण में रमण करते हैं, मत
लब कि-इस जगत् मे अनेक जीव बोलते हैं, और
अनेक जीव सुणते हैं. उसरे अपन ध्यान नहीं देते
हैं तो वो पुद्गल अपनको राग द्वषके उत्पन्न कर्ता न
हीं होते हैं, और उन्ही शब्द को आपन अपनी तर्फ
खेंचे की यह गाली मुझेही दी किन्तुते वो पुद्गल अ
पनी आत्मा में परिणम, अपन को द्वषी बना देते
हैं. अब अपन जरा दीर्घ विचार से देखें तो, अपनी
निंदा कोइ करता ही नहीं हैं; क्यों कि, निंदा होय
ऐसा अपना निजात्मा का स्वभाव ही नहीं हैं; आ
त्मा तो ज्ञानादि अनंत गुणो का सागर है. और ज्ञा
नादि गुणों की कोइ निंदा करताही नहीं हैं, निंदा
तो विषय, कषायादि प्रकृत्ति यों की होती है, सो
विषय कषायादि परिणती कर्म जनित हैं, और कर्म
पुद्गल रूप है, आत्मा से उनका स्वभाव विपरीत हे
और इसीहि लिये निन्दा पात्र है, उनकी निन्दा तो
होवेगी. तूं चैतन्य रूप उन से अलग हो फिर उन
परिणती में परिणम मलीन क्यों होता है. बुरा क्यों
मानता हैं, जिसको जग बुरा कहते हैं, उन्हीं को वो
वचन लगो. और उन्ही दुर्गुणोंका नाश होवो, कि
जिस से मेरा भला होवे. एसी भलाइ होनेके स्थान,

कोण सुख बुराइ करेगा, अर्थात् कोइ नहीं. एम और इससे भी अत्युत्तम विचार अव्वल सेही शुक्ल ध्यानी की आत्मा में ठसे रहते हैं, और प्रत्यक्ष में देख रहे हैं कि--क्रोध विश्वानल रूप हो जीवोंको छिन्न भिन्न कर रहा है, और मेरी आत्मा उस लायसे अलग हो ज्ञ नादि गुण रूप समुद्र के महा ओघ में डूब रही है. इस वो अग्नि स्पर्शय करही नहीं शक्ति है. आंच लगही नहीं शक्ति है, सदा संवुड, निवुड, शांत शीतली भूत अखन्डानन्द में रमते हैं.

द्वितीय पत्र-"मुत्ति"

२ मुत्ति-मुक्त-हुये, छूटगये, अर्थात्-लोभ तृष्ण रूपी फास में सब जगत् फस रहा है. उस फा स को शुक्ल ध्यानी ने स्वभाव से जड़ा मूल से उच्छे दन कर, संतोष में संस्थित हुये हैं. ज्ञानी ज्ञान से प्रत्यक्ष जान ते हैं-कि इस जगत में कोइ भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि-जिसकी मालकी अपने जीव ने न हीं करी, या उनका भोगोपभोग नहीं किया, अर्थात् सब पुद्गलकी मालकी अनंत वक्त कर आया है और सब पुद्गलोंका भोग भी अनंत वक्त कर आया है. आश्चर्य यह है कि-एक वक्त अहार कर के निहार क

री हुइ वस्तुओं देखते ही घृणा दुगंच्छा उत्पन्न होती है, और जिन वस्तुओंका अनंत वक्त आहार कर निंहार कर आया उन्होंकाही पीछा भोगोपभोग कर ने बहुत से जीव तरस रहे हैं, तडफ रहे हैं, उनकी तृष्णा में व्याकुल हो रहे हैं, तृती आइही नहीं है, तो अब कहा विना संतोष किये कदापि तृप्ति आवेगी? हा हा! क्या जब्बर मोहकी छटा! के जीवों विलकुल बे विचार वन रहे हैं, और इस वर्तमान कालके शरीर के पुद्गल तथा पहेले धारन किये हुये सब शरीर के पुद्गल जितने आहार कर के निहार कर दिया है. तैसेही जब जीवोंके धारण किये शरीरके पुद्गलों का अपन भी अनंत वक्त भक्षण कर लिया जगत् की सब ऋद्धि के मालक अपन बने, और जगत् के जीवके दास अपन बने, अनंत पर्याय रूप इस संसार में अपन परिणम आये, और सर्व संसार पर्याय अपन ने परिणमी, सर्व खाद्य खाये, सर्व पेय पीये, सर्व भोग भोगवे, परन्तु गरज कुछ नहीं सरी, आखीर वे सेके वैसे. इस लिये मै न किसका हुवा, न मेरा कोइ हुवा, न मुझ को इने खाया. और न मैने किसीको खाया. पुद्गलही पुद्गलका भक्षण करता है, और छोडता है; और वो भाव पुद्गलोंमे ही प्रवर्तते हैं. तैसे

ही निर्गमते हैं. मुझे उससे जरूरही क्या? मे चैत-न्य यह पुद्गल. ज्यों नाटकिया नाना तरह का रूप धारण कर प्रेक्षक को खुश करने अनेक चरित्र करता है. रोता है, हंसता है, वगैरे, परंतु प्रेक्षक को उसके झगडे देख सुख दुःख अनुभवनेकी क्या जरूरत है. तैसेही यह जगत् रूप नाटकका में प्रेक्षक हूं. इस विचित्रता देख मुझे उसके विचार में लीन हो दुःखी बननेकी कुछ जरूरत नहीं है. यह भाव या इससे भी अत्युत्तम शुक्ल ध्यानी के हृदय में स्वभाव से ही प्रवृत्त ते हैं, जिससे सहजही सर्व सङ्गके परित्यागी हो सिद्ध तुल्य सदा निश्चिंत भाव में तृप्तपणें आत्म स्वभावमें रमण करते हैं.

तृतीय पत्र—"आज्जव"

अज्जव=आर्जव–सरलता युक्त प्रवृतनेका स्वभाव शुक्ल ध्यानीका स्वभाविकही होता है. सुयगडांग सूत्रमें फरमाया है. कि "अज्जुधम्मं गइ तचं" अर्थात् आर्य सरल आत्माही धर्म मार्ग में गति–प्रवृति कर शक्ति है. ज्ञानी समजते है कि-वक्र आत्माका धणी अन्यको ठगने जाते अपही ठगाता है, और एक वक्र ठगायाहुवा, प्राणी कर्मानुयोगसे भवांतरो की

श्रेणीयों में अनंत वक्र ठगाता ही रहता है, सर्व पुद्ग
ल परिणती में परिण में हुये पदार्थ कुटिलता से भरे
हुये हैं. लकभि आत्मा उन में परिणाम प्रवृताती हुइ
उनमेंसे पुद्गलोंका आकर्पण कर उस रूप बनती हैं,
उसे 'मायाशल्य' कहते हैं, मायशल्य मिथ्या दर्शनेका
मूल है, मायाशल्यसे आत्मा के ज्ञानादि गुणका आ
छादन होता है-ढकाता है. 'शल्य' काँटा को कहतेहैं,
जेसा शरीर अन्दर रहा हूवा काँटा तन्दुरुस्तीको हर
कत करता है, तैसे मायारूप शल्य (काँटा) जिन के
हृदय से नहीं निकला है. उनके ध्यान में दुरुस्ती न
रहती है. जैसे सीधे म्यान में वांकी तरवार प्रवेश न
हीं करती है, तैसेही वक्र प्रकृतीका धणीके हृदय में
शुक्ल ध्यान प्रवेश नहीं करता है. ऐसा निश्चय होने
से शुक्ल ध्यानी के हृदय से माया स्वभाव सेही नष्ट
होती है.

और भी शुक्ल ध्यानी विचार ते हैं कि—कपट
किन के साथ करें. क्यों कि चैतन्य के निज गुन
कपट से वंचित (छलित) नहीं होते हैं, आत्मा
का निज स्वभाव तो सरल शुद्ध पवित्र है, उसे छो
ड मलिनता में पड नाहीं अज्ञान दिशा है. ऐसा जा
न शुक्ल ध्यानी स्वभावसेही परम ज्ञानी, परम ध्यानी

निष्कपटि, निर्विकारी, आत्म गुण में सदा लीन बा-ह्याभ्यांतर शुद्ध सरल प्रवृति रहती है.

चतुर्थ पत्र—"मद्दव."

मद्दव—मार्दव किया है मान का. शुक्ल ध्यानी का अभिमानका मर्दन स्वभाव सेही होता है, क्यों कि वो जानते हैं किइस जगत् में बड़ा मीठा और बड़ा जब्बर शत्रू "अभिमान" हैं, ऊंचा चड़ा के नीचे डाल देता है. देवलोक के सुख में जो गर्क होरहे हैं, उन्हे तिर्यच गति में डालता है, इत्यादि अनेक वि टंबना अभिमान से होती है, और भी विचारते हैं, कि अभिमान किस बात करना; तथा मान यह हैही क्या? देखीये! अच्छा किसी निरक्षर मूर्ख मनुष्य को कोइ पण्डित कहे तो वो चिडते है. निरधन को श्री मंत कहते ते वो बुरा मानता है, कहताहै क्या हमा री मस्करी करते हो. बस तैसेही ज्ञानी के कोइ गुण ग्राम करे तो वो योंही विचार ते हैं, यह संपूर्ण गुण तो मेरी आत्मा में हैही नहीं, तो मुझे उन वचन को सुण अभिमान करने की क्या जरूर है. यह ऐसी पर शंसा नहीं करता हैं, परन्तु मुझे उपदेश करता है, कि सत्य शील, दया, क्षमा. दि गुण तुम स्वीकारो!

शुक्ल ध्यानी सर्वो नम्र गुण संपन्न होके भी, उन्हे गुण का गर्व किंचित मात्र कदापि नहीं होता है, इसलिये वो सदा निर्भिमानी रहते हैं, तथा विचारना चाहिये कि जो गुण प्राप्त करते हैं वो तो गुण के करते हैं, और उनका अभिमान गुणी को तो होनाही नहीं है, फिर बीच में मुझ करने की क्या जरूर है, संसार में सुनते हैं कि अमुक ने अमुक अच्छी वस्तु की सरा हणा(परशंसा) करी जिस से वह बिगड गइ (नि जर लग गइ) बस तैसेही गुणानुवाद करने से तू पोंनायगा तो तेरेइ गुणोंका खराबा होगा. ऐसा जा नके खराबा क्यों करना. ✿

---

० प्रियं प्राया वृत्ति विनय मधुरोवा चिनियमः
प्रकृत्या कल्याणी मतिर नवगीतः परिचयः ॥
पुरोवा पश्चाद्वा तदिदयमिपर्या सितरसं ।
रहस्यं साधुनां नुपधि विशुद्धं विजयते ॥

अर्थात्–साधुओंका कायिक व्योपार सदा प्रिय कारी होता है, वचन भी विनययुत नम्र होता है. उनकी बुद्धिभी स्वभावसेही कल्याण कारी होतीहै. उनका संगभी निर्दोष होता है. इसे गुन होनेपर भी वो भूत भविष्यमें अविछिन्नस्वभावी दंभ रहित प्रमादादि दोषरहित निर्मलता होने सेही उन महात्माओं का रहस्य वि जय कारी होता है.

निष्कपटि, निर्विकारी, आत्म गुण में सदा लीन वा-ह्याभ्यांतर शुद्ध सरल प्रवृति रहती हे.

चतुर्थ पत्र–"मद्रव."

मद्रव–मार्दव किया हे मान का. शुक्ल ध्यानी का अभिमानका मर्दन स्वभाव सेही होता है, क्यों कि वो जानते हैं कि इस जगत् में बडा मीठा और बडा जब्बर शत्रू "अभिमान" हैं, ऊंचा चडा के नीचे डाल देता है. देवलोक के सुख में जो गर्क होरहे हैं, उन्हे तिर्यंच गति में डालता है, इत्यादि अनेक विटंबना अभीमान से होती हैं, और भी विचारते हैं, कि अभीमान किस बात करना; तथा मान यह हेही क्या? देखादि! अच्छी किसी निरक्षर मूर्ख मनुष्य को कोइ पण्डित कहे तो वो चिडत है. निरधन को श्री मंत कहने से वो बुरा मानता है, कहता है क्या हमारी मस्करी करते हो. बस तैसेही ज्ञानी के कोइ गुण ग्राम करे तो वो योंही विचार ते हैं, यह संपूर्ण गुण तो मेरी आत्मा में हैही नहीं, तो मुझे उन वचन को सुण अभीमान करने की क्या जरूर है. यह मेरी परशंसा नहीं करता हैं, परन्तु मुझे उपदेश करता है, कि सत्य शील, दया, क्षमा, दि गुण तुम स्विकारो!

जीवको मिथ्यात्व २ अव्रत, ३ प्रमाद, ४ कषाय और ५ योग यह अनंत विटंबना देने वाले हैं. १ श्री वीतराग दिशा निजात्मके अनुभवमें जो विपरित रुचि उसमें अभिनिवेश (आग्रह) उत्पन्न करनेवाला तथा बाह्य विषय में पर सम्बन्धी शुद्ध आत्म तत्त्व से लगाके सपूर्ण द्रव्योंमें जो विपरित आग्रह करे सो मिथ्यात्व. २ अभ्यंतर मे आत्म परमात्मा के स्वरूपकी भावनासे उत्पन्न हुवा जो परम सुख रूप अमृत समान भोजन प्राशन करनेकी रुचि होए उसे पलटावे तथा बाह्य विषय में व्रतादि धारन नहीं करने रूप जो प्रवृती सो अव्रत. ३ अभ्यंतर मे प्रमाद रहित जो शुद्ध आत्म है उसके अनुभवसे चलाने रूप जो परिणती, तथा बाह्य विषय में जो मूल और उत्तर गुणमे अतिचार उत्पन्न करने वाला जो है सो प्रमाद. ४ अभ्यंतर में परम उपशम मूर्ती केवल ज्ञानादि अनंत गुण स्वभावसेही धारन करने वाला निजात्म परमात्माके स्वरूपको क्षोभ के करने वाले, तथा बाह्यमे विषयके सम्बन्धसे क्रूरता आदि आवेश रूप जो क्रोधादि हैं सो कषाय. और ५ निश्चय में क्रिया रहित आत्मको भी जो व्यवहार से वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशम से उत्पन्न मन वचन, और कायाके पुद्गल

वर्गणाका अवलम्बन करने वाला कर्मोंको ग्रहण करनेमें कारण भूत आत्माके प्रदेशोंका संचलन सो योग.

यह पांच अश्रव संसारी जीवों के अनादी से परिणतीमें प्रणम रहेहैं, जिस से अनंत संसार परिणति परिणमने का कार्य होता हैं, शुक्ल ध्यानी ने पंचही आश्रवों का स्वभाव सेही नाश कर १ क्षायिक सम्यक्त्व, २ यथा ख्यात चरित्र, ३ अप्रमादी, ४ क्षीण कषायी और स्थिर स्वभावी हुवे हैं, इन पंच गुणोको स्वभाव सेही प्राप्त किये हैं.

द्वितीय पत्र-"अशुभानु प्रेक्षा"

२ अशुभानु प्रेक्षा-जीवों का शुभाशुभ होने के दो मार्ग हैं:-१ निश्चय, और व्यवहार. निश्चयो निजगुण में प्रवृती करने को कहते हैं. और व्यवहार बाह्य प्रवृती को कहते हैं. छद्मस्तों के लिये अव्वल व्यवहार है अर्थात् व्यवहार शुद्ध कर्म कर आत्म साधन करने निश्चय की तर्फ दृष्टी रखते हैं. और सर्वज्ञ निश्चय की प्रवृत्ति करते हुये भी व्यवहार को नहीं बीगाड़ते हैं, ऐसेही कर्म सम्बन्ध भी जाना जाता है, व्यवहारमें कर्म के कर्ता पुद्गल हैं. जैसे वियोग रहित शुद्ध आत्मा की जो भावना है उस से ये शुभ होके;

उपचरित असद्भुत व्यवहार से ज्ञाना वर्णिआदि द्रव्य कर्मोका, तथा उदारिक, वेक्रय, और अहारिक यह तीन शरीर, अहार,शरीर इन्द्रीय, श्वाश्वोश्वास, मन. और भाषा, यह पर्याय, इत्यादि योग्य से जो पुद्गल पिण्ड नो कर्म है, उनकी तथा उसी प्रकार से उपचरित असद्भूत बाह्य विषय, घटपटादि का भी येही कर्ता है. यह तो व्यवहार की व्याख्या कही. अब निश्चय अपेक्षा से चैतन्य कर्मका कर्ता है, सो इसतरह है कि रागादि विकल्प रूप उदासी. से रहित, और क्रिया रहित, ऐसे जीव ने जो रागादि उत्पन्न करने वाले कर्मोका उपार्जन किया उन कर्मोका उदय होने से अक्रिय निर्मळ आत्मा ज्ञानी नहीं होता हुवा, भाव कर्मका या राग द्वेषका कर्ता होता है. और जब यह जीव, तीनों योगके व्यवहार रहित, शुद्ध तत्वज्ञ एक स्वभाव में परिणमता है, तब अनंत ज्ञानादि सुखका शुद्ध भावोंका छद्मस्त अवस्थामें भावना रूप विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चयसे कर्ता होता है, और मुक्त अवस्था में तो निश्चयसे अनंत ज्ञानादि शुद्ध भावों का कर्ता ही है-

इस लिये शुद्धाशुद्ध भावोंकी जो परिणती है, उनका कर्ता जीव जाणना. क्यों कि नित्य निरा

कार निष्क्रिय, ऐसी अपनी आत्म स्वरूपकी भावना से राहेत जो जीव है, उसीको कर्मका कर्ता कहा है पर परिणितीही शुभाशुभ बन्धका मुख्य कारण है जिससे निवृत अपनी आत्मा में हीं भावना करे और व्यवहारकी आपेक्षासे सुख और दुःख रूप पुद्गल कर्मोंका भोगवता है. उन कर्म फलोंका भुक्ताभी आत्माही है, और निश्चय नयसे तो चैतन्य भावका भुक्ता आत्मा है, वो चैतन्य भाव किस सम्बन्धी है, ऐसा बिचार करीये तो अपनाही सम्बन्धी है. कैसेहै कि निज शुद्ध आत्माको ज्ञानसे उत्पन्न हुवा, जो परमार्थिक सुख रूप अमृत रस उस भोजनको न प्राप्त होते, जो आत्मा है वो उपचरित असद्भूत व्यवहार से इष्ट तथा अनिष्ट पांचो इंद्रिय के विषय से उत्पन्न होते हुये सुख दुःख भोगवता है, ऐसेहीं अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से अंतरंग में सुख तथा दुःखको उत्पन्न करने वाला द्रव्य कर्म सत्ता असता रूप उदय है, उसको भोगवता है, और वोही आत्मा हर्ष तथा शोक को प्राप्त होता है, और शुद्ध निश्चय में तो परमात्म स्वभावका जो सम्यक श्रधान ज्ञान और क्रिया उससे उत्पन्न अविन्यासी अनन्द रूप एक लक्षण का धारक सुखामृतको भोगवता है.

सारांश—जो स्वभावसे उत्पन्न हुये सुखामृतके भोजनकी अप्राप्तीसे आत्मा इन्द्रिय जनित सुख को भोगवता हुवा, संसारमें परिभ्रमण करता है; और स्वभाव उत्पन्न हुये इन्द्रियोंके अगोचर सुख है, सो ग्रहण करने योग्य है. शुक्लध्यानके ध्याता उन्हे स्वभावसेही ग्रहण करते हैं, जिससे संसार रूप वृक्ष शुभाशुभ कटु मधू, उच्चता-नीचता, रूप फलोंका दाता पुद्गल परिणतीसे परिणमा हुवा जो स्वभाव है उसका सहजही त्याग हो जाता है. शुद्ध आत्मानंद चैतन्य मय स्वभाव में सदा रमण करते हैं.

तृतीय पत्र-"अनन्तवृत्तियानुप्रेक्षा."

३ अनंत वृत्तियानु प्रेक्षा—अनंत संसारमे परिभ्रमण करनेकी जो प्रवृती है· उससे निवृत्तनेका स्वभाविक ही विचार होवे, कि इस संसार में अनंन पुद्गल परावर्तन किये, वो ८ प्रकारसे होते हैं:—१ द्रव्य से बादर पुद्गल परावर्तन सो उदारिक वैक्रय, तेजस करमाण, मन, वचन, और श्वासोश्वास यह ७ तरह के पुद्गल हैं, उनके जितने पुद्गल जगत में हैं, उन्ह सबको स्पर्शे. २ द्रव्य से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो पूर्वोक्त सातही प्रकारके पुद्गलोंमे से प्रथम सर्व ज्ञान्

कार निष्क्रिय, ऐसी अपनी आत्म स्वरूपकी भावना से राहित जो जीव है, उसीको कर्मका कर्ता कहा है पर परिणितीही शुभाशुभ बन्धका मुख्य कारण है जिससे निवृत अपनी आत्मा में ही भावना करे और व्यवहारकी आपेक्षासे सुख और दुःख रूप पुद्गल कर्मोका भोगवता है. उन कर्म फलोंका भुक्ताभी आत्माही है, और निश्चय नयसे तो चैतन्य भावका भुक्ता आत्मा है, वो चैतन्य भाव किस सम्बन्धी है, ऐसा विचार करीये तो अपनाही सम्बन्धी है. कैसेहै कि निज शुद्ध आत्माको ज्ञानसे उत्पन्न हुवा, जो परमार्थिक सुख रूप अमृत रस उस भोजनको न प्राप्त होने, जो आत्मा है वो उपचरित असद्भूत व्यवहार से इष्ट तथा अनिष्ट पांचो इंद्रिय के विषय से उत्पन्न होते हुये सुख दुःख भोगवता है, ऐसेही अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से अंतरंग में सुख तथा दुःखको उत्पन्न करने वाला द्रव्य कर्म सत्ता असाता रूप उदय है, उसको भोगवता है, और वोही आत्मा हर्ष तथा शोक को प्राप्त होता है, और शुद्ध निश्चय में तो परमात्म स्वभावका जो सम्यक् श्रधान ज्ञान और क्रिया उससे उत्पन्न अविनाशी अनन्द रूप एक लक्षण का धारक सुखामृतको भोगवता है.

सारांश—जो स्वभावसे उत्पन्न हुये सुखामृतके भोजनकी अप्राप्तीसे आत्मा इन्द्रिय जनित सुख को भोगवता हुवा, संसारमें परिभ्रमण करता है; और स्वभाव उत्पन्न हुये इन्द्रियोंके अगोचर सुख है, सो ग्रहण करने योग्य है. शुक्लध्यानके ध्याता उन्हे स्वभावसेही ग्रहण करते हैं, जिससे संसार रूप वृक्ष शुभाशुभ कटु मधू, उच्चता-नीचता, रूप फलोंका दाता पुद्गल परिणतीसे परिणमा हुवा जो स्वभाव है उसका सहजही त्याग हो जाता है. शुद्ध आत्मानंद चैतन्यमय स्वभाव में सदा रमण करते हैं.

तृतीय पत्र-"अनन्तवृत्तियानुप्रेक्षा."

३ अनंत वृत्तियानु प्रेक्षा—अनंत संसारमे परिभ्रमण करनेकी जो प्रवृती है. उससे निवृत्तनेका स्वभाविक ही विचार होवे, कि इस संसार में अनंत पुद्गल परावर्तन किये, सो ८ प्रकारसे होते हैं:—१ द्रव्य से वादर पुद्गल परावर्तन सो उदारिक वैक्रय, तेजसे कारमाण, मन, वचन, और श्वासोश्वास यह ७ तरह के पुद्गल हैं, उनके जितने पुद्गल जगत में हैं, उन्हे सबको स्पर्शे. २ द्रव्य से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो पूर्वोक्त सातही प्रकारके पुद्गलोंसे से प्रथम सर्व जगत्

कार निष्क्रिय, ऐसी अपनी आत्म स्वरूपकी भावना से रहित जो जीव है, उसीको कर्मका कर्ता कहा है पर परिणितीही शुभाशुभ बन्धका मुख्य कारण है जिससे निवृत अपनी आत्मा में हीं भावना करे और व्यवहारकी आपेक्षासे सुख और दुःख रूप पुद्गल कर्मोंका भोगवता है. उन कर्म फलोंका भुक्ताभी आत्माही है, और निश्चय नयसे तो चैतन्य भावका भुक्ता आत्मा है, वो चैतन्य भाव किस सम्बन्धी है, ऐसा विचार करीये तो अपनाही सम्बन्धी है. कैसे है कि निज शुद्ध आत्माको ज्ञानमे उत्पन्न हुवा, जो परमार्थिक सुख रूप अमृत रस उस भोजनको न प्राप्त होते, जो आत्मा है वो उपचरित असद्भूत व्यवहार से इष्ट तथा अनिष्ट पांचो इंद्रिय के विषय से उत्पन्न होते हुये सुख दुःख भोगवता है, ऐसेहीं अनुपचरित असद्भूत व्यवहार से अंतरंग में सुख तथा दुःखको उत्पन्न करने वाला द्रव्य कर्म सत्ता असता रूप उदय है, उसको भोगवता है, और वोही आत्मा हर्ष तथा शोक को प्राप्त होता है, और शुद्ध निश्चय में तो परमात्म स्वभावका जो सम्यक श्रधान ज्ञान और क्रिया उससे उत्पन्न अविन्यासी अनन्द रूप एक लक्षण का धारक सुखामृतको भोगवता है.

सारांश—जो स्वभावसे उत्पन्न हुये सुखामृतके भोजनकी अप्राप्तीसे आत्मा इन्द्रिय जनित सुख को भोगवता हुवा, संसारमें परिभ्रमण करता है; और स्वभाव उत्पन्न हुये इन्द्रियोंके अगोचर सुख है, सो ग्रहण करने योग्य है. शुक्लध्यानके ध्याता उन्हे स्वभावसेही ग्रहण करते हैं, जिससे संसार रूप वृक्ष शुभाशुभ कटु मधू, उच्चता-नीचता, रूप फलोंका दाता पुद्गल परिणतीसे परिणमा हुवा जो स्वभाव है उसका सहजही त्याग हो जाता है. शुद्ध आत्मानंद चैतन्य मय स्वभाव में सदा रमण करते हैं.

तृतीय पत्र-"अनन्तवृत्तियानुप्रेक्षा."

३ अनंत वृत्तियानु प्रेक्षा—अनंत संसारमे परिभ्रमण करनेकी जो प्रवृती है- उससे निवृत्तनेका स्वभाविक ही विचार होवे, कि इस संसार में अनंत पुद्गल परावर्तन किये, वो ८ प्रकारसे होते हैं:—१ द्रव्य से वादर पुद्गल परावर्तन सो उदारिक वैक्रय, तेजस कारमाण, मन, वचन, और श्वाशोश्वास यह ७ तरह के पुद्गल हैं, उनके जितने पुद्गल जगत में हैं, उन्हे सबको स्पर्शे. २ द्रव्य से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो पूर्वोक्त सातही प्रकारके पुद्गलोंमे से प्रथम सर्व जगत्

में रहे उदारिक के सब पुद्गल अनुक्र में स्पर्शे किंचि-
तही नहीं छोडे, फिर वैक्रय के, फिर तेजस के, यों ७
ही के अनुक्र में स्पर्शे. ३ क्षेत्रसे बादर पुद्गल पराव-
र्तन सो–मेरु प्रवृतसे दशही दिशा आकाशकी
असख्यात श्रेणी मकडीके जालेके तंतुवेकी तरह फेली
है, उन्ह सबपे जन्म मरण, कर स्पर्शे, ४ क्षेत्रसे सु
क्ष्म पुद्गल परावर्तन सो पूर्वोक्त श्रेणियोंमें से पहले
एकही श्रेणि ग्रहण कर उसपे अनुक्रमें (मेरुसे अलो
क तक) जन्म मरण कर स्पर्शे. जराभी नहीं छोडे
फिर दुसरी श्रेणिभी इस तरे, यों सब श्रेणि स्पर्शे, ५
कालसे बादर पुद्गल परावर्तन सो-समय, आंवालिका,
स्तोक, लव, महुर्त, दिन, पक्ष, मांस, ऋतु, आयन, व
र्ष, युग, पूर्व, पल्य, सागर, सर्पिणी, उत्सर्पिणी और
काल चक्र, इन सब काल में जन्म मरण कर स्पर्शे,
६ काल से सुक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो–पहले सर्पिणी
काल बेठा, उसके पहले समय जन्म के मरे, फिर दु-
सरी वक्त सर्पिणी लगे तब उसके दुसरे समय में ज
न्मके मरे, यों आंवलकाका समय पूरा होवे वहांतक
फिर सर्पिणी बैठे उसके पहली आंवलिका में जन्म
के मरे, फिर दुसरी में यों स्तोकका काल पूरा करे,
ऐसे अनुक्रमे सब काल जन्म मरण कर स्पर्शे. ७ भा-

वसे बादर पुद्गल परावर्तन सो-५वर्ण, २ गंध, ५ रस ८ स्पर्श. इन २० ही बोलके सर्व पुद्गलोंको स्पर्श, ८ भाव से सूक्ष्म पुद्गल परावर्तन सो पहले एक गुण काले वर्ण के जगत् में जितने पुद्गल हैं, उन सबको स्पर्शे, फिर दुगणे कालेकों यों ही गुणें जावत असं-ख्यात गुणें काले वर्ण के पुद्गल स्पर्शे, यों सर्व काले वर्ण के पुद्गल पीछे, हर वर्ण के पुद्गल कालेकी तराह अनुक्रमे स्पर्शे इसी तरह २० ही तरह के पुद्गल को अनुक्रमे स्पर्शे.

यह ८ तरह पुद्गल परावर्तन करे उसे एक पुद्गल परावर्तन कहना, ऐसे २ अनंत पुद्गल परावर्तन एकेक जीव संसार में करते हैं; और अपने जीव ने भी किये हैं. ऐसी भव भ्रमणा में भ्रमण करते २ अनंतानंत पुण्योदय होने से, मनुष्य जन्म से लगा शुक्ल ध्याना रूड होने जितने अत्युत्तम सामग्रीयों प्राप्ती हुइ है. यह उन्ह पुद्गलों के परावर्तन से निर्मुक्त कर अखंडित, अचल, निरामय, मोक्ष के सुख देने वाली है. ऐसा निश्चय शुक्ल ध्यानी को स्वभावसे ही होता है. और अनंत जीव अनंत पुद्गलों का परावर्तन करते विभाव रूप विचिलता को प्राप्त होते हैं. वो प्रतिच्छाया उनकी शुद्ध आत्मा में सद्भाव से पड

ती है. उसज्ञानके अप्रतिपाति ध्यान में सदा मग्न हो रहते हैं.

चतुर्थ पत्र-"विपरिणामाणु प्रेक्षा"

विप्रणामाणु-प्रेक्षा-३४३ राजात्मक रूप त्रिभोदर संपूर्ण सचेतन अचेतन पदार्थों कर भरा है, उन में के पुद्गलों क्षण २ में विपार्यास पाते हैं, जैसे माट्टि के पिण्ड के समोह में से कुम्भार अच्छे, बुरे, छोटे वडे अनेक प्रकार के भाजन वनाता है. तैसेही मनुष्या कार, पशुवाकार, नाना प्रकार के चित्र वनाता हैं, उन्हे देखके बहूत लोक कितनेकको अच्छे कहते हैं, कितनेक को बुरे कह ते हैं, ऐकही वस्तू से उत्पन्न होते हैं वो कुछ वस्तुका फ़र नहीं है. फक्त दृष्टिकाही फेर है. तैसेही सर्व लोक जीव अजीव कर के भरा है, उन अनंत परमाणुओंको समोह से पंच सम्वायकी प्रेरणासे पूरण गलन (मिलन विछडन) होते हुये अनेक आकार भाव में प्रगमते हैं. उन में अनेक पुद्गलों की सामान्यता विशेपना अनंत काल से होतीही रहती है. और वृसही लोक में राग द्वेष के पुद्गल भी पूर्ण भरे हैं, वो सकर्मी जीवोंके चमक लोहकी तरह आकर्षण होके लगते हैं. और मिथ्यात्व

तथा मोहकी शक्ति में प्रगम ते हैं. जिससे परिणा-
मों में संकल्प विकल्प हो इन वस्तुओं में प्रेम द्वेष
होता है. जिसपे प्रेम उत्पन्न होता है, और जिसपे द्वे
प उत्पन्न होता है, वह दोनो वस्तुओं उनही पुद्गलों
के परमाणुओंकी प्रणमी है. घर, धन, स्त्री, स्वजन,
वस्त्र, भूषण, मिष्टान्न, विष, मलीनता वैगेर सर्व वस्तु
ओं यही पुद्गलों से परिणमी है. क्षिण २ मे इनका
रूपांतर हूवाही रहता है, और उस प्रमाणे जीवों की
परिणती में फेर होता है, परिणती में राग द्वेष रूप
चकमकके भाव उत्पन्न होनेसे, उन्ह पुद्गलोंको आक-
र्षण कर गुरु (भारी) बनता है, और उस भारी बन
नेके योग्य से उच्च जो मोक्ष गति है उसे प्राप्त नहीं
होता है, यह संसार में रुलनेका मुख्य कारण अना-
दि अनंत है. यह सब पुद्गलोंका परिणती स्वभावका
गुण है, उस में चैतन्य लीनता (लुब्धता) धारण क
र दुःखी हूवा, विपर्यास पाया. ऐसा निश्चयात्म ज्ञान
शुक्ल ध्यानी को होता है, जिस से सर्व पुद्गलों उपर
से राग द्वेष निर्वत्त होने से. ज्ञानादि गुण प्रगट हो
ते हैं, जिस से निजगुण की पहचान हुइ कि मेरे
आत्म गुण अखंड हैं, अविनाशी हैं, सदा एकही रु,
पसें रह ने वाले चेतनीक गुण युक्त हैं, अगरु लघु हैं.

न वो कधी आके लगे, न वो कधी बिछडे, अनादि से निज में ही हैं. परन्तु पर गुणों से ढके हूयेथे, जिस से इतने दिन पेछान में नहीं आये, अब उन्ह पुद्गलों से विपरीत शक्ति धारण कर ने वाले गुणका संयोग होने से निजगुण प्रगटे, जैसे वायु के जोग से बदल बिखर ते हैं, और सुर्य का प्रकाश होता है, तैसे पुद्गल पर्याय रूप बदल वैराग्य वायु से दूर होने से अनंत ज्ञान ज्योती का अरुणोदय हूवा, जिस से पूर्ण प्रकाश होने का निश्चय हूवा, तथा पूर्ण प्रकाश हूवा जिस से कालांतर सर्व पुद्गल परिचय से दुर होवुंगा, सत्य चित्य आनन्द रूप प्रगटेगा. तब निरामय नित्य अटल सुखका भुक्ता बनूंगा.

पुष्प फल

यह चार प्रकार का विचार शुक्ल ध्यानीके हृदय मे स्वभाव से ही सदा परिणति मे परिणमता रहता है, जिस के प्रबल प्रभाव से उनकी आत्मा सर्व विभावो पुद्गल परिणति के सम्बन्ध रूप से निवृत, सर्व कर्म से विमुक्त हो अत्यन्त शुद्धता, परम पवित्र यों गत हो अनंत अक्षय अव्याबाध मोक्ष के सुख में तल्लीन रहते हैं.

यह शुक्लध्यानके ४ पाये, ४ लक्षण, ४ आलंबन, और ४ अनुप्रेक्षा, यों १६ भेदका वर्णन हुवा.

मै एक अल्पज्ञ विषय कषायका सदन अनेक दुर्गुण कर पूरित ऐसे गहन ध्यानका यथार्थ वर्णन करने असमर्थ हूं. क्यों कि शुक्लध्यान मेरे अनुभव के बाहिर है. मैने जो कुछ लिखा है सो जिनोक्त सूत्र व कितनेक ग्रन्थोंके अनुसारसे और कितनेक स्थान सद्भाविक बोध रूपभी लेख आया है,इस लिये पाठक गणोंसे नम्र क्षमा याचता हूं.

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषिजी महाराज
की सम्प्रदाय के महंत मुनी श्री बाल
ब्रह्मचारी मुनी श्री अमोलख ऋषि
जी महाराज रचित 'ध्यानकल्पतरू'
ग्रन्थका शुक्लध्यान नामक
चतुर्थ शाखा समाप्तं

उपसंहार.

यह इस "ध्यान कल्पतरु" ग्रंथकी चार शाखा और १६ उपशाखा मिल छः शाखाओंमें सूत्र कथित चार ध्यान उपयुक्त दो ध्यान का कथन किया. इसे दृढ चित्तसे पठन करने से जगतमें प्रवर्तत्ति सर्व शुभाशुभ वार्तोका ज्ञान-सम्यज्ञ सहज हो सकेगा. इस ज्ञेय का यही फायदा है कि—हेय जाने उसे त्यागन और उपादेय जनाय उसे आदरना, अर्थात्-प्रथम कहे हुये आर्त रौद्र ध्यान इस भव परभवमें अत्यन्त दुःख प्रद है. ऐसा ज्ञेय जब आत्मा को हुवा तो सुखार्थी आत्मा उसका हेय—त्याग करने यथा शक्ति प्रयास में वृद्धिकर जरूर त्यागेगा उनकु ध्यानमे निवृत्ति करने की रीती, प्रथम शुभ ध्यान रूप उस शाख में समझाइ है. और ऐसा हुये बाद इस कालमें फक्त धर्म ध्यान ही बन सक्ता है. वोभी इह भव पर भव में उत्तमोत्तम सुखकादाता होताहै. इस ध्यान कर जो आत्म संलग्न करेगा और उससे भी उच्च दशा अ मा की प्राप्त करने दुसरी उपशाखा में शुद्ध ध्यान

बताया है उसका साधन भी धीरवीर सत्पुरुषों कर शक्ते हैं. वो अनुसार सुख प्राप्त करते हैं. और अत्यन्त विशुद्ध सर्वोपरी आत्म दशा प्राप्त करनेका जो चौथा शुक्ल ध्यान है उसकी प्राप्ति होनी इस कली काल में मुश्किल है तो भी उसका भान आत्मा को जरूरही हुवा चाहिये कि भूत काल में महात्मा ऐसी वृत्ति धारण कर परम पद प्राप्त करते थे हे प्रभु! मुझभी वो दिन प्राप्त होवो. ऐसा ध्यास परम सुखार्थि पाठको को होवेगा जिससे उन की आत्म अनेक लाभ प्राप्त कर सकेगी।

अंतो मुहुतमितं। चितावत्थाणमे घवत्थुमी ॥
छउम त्थाणं झाणं जोगनिरोहो जिणांणतु॥१॥

अर्थात्—एकही ध्येयमें अंतर्मुहुर्त मात्र चित्तकी एकाग्रता रहती है सो छद्मस्तका ध्यान है. * और योगोंके निरोध से जो विकल्प रहित आत्मा की स्थिरता है सो जिनेश्वर का ध्यान है.

जे जित्ति आय हेउ। भवस्स ते चेव तित्तिआ मुक्ख॥
गुण गणाइ आ लोगा। दुण्हवी पुन्ना भवे तुल्ला॥२॥

---

* सूत्र—उत्तमसंहनन स्यैकाग्रचिन्ता निरोधोध्यान मा ऽ ऽ न्त मुहूर्तात् ॥

अर्थ—उत्तम संघयन के धारक चित्तकी एकाग्रता अंत मुहुर्त पर्यन्त करे, हैं सोही ध्यान है.

अथात्—इस विश्वमें जितने संसार के हेतू हें उत. नेही मोक्ष के हेतु हैं. गुण गणा तीन लोकमें दोनों ही पूर्ण भरे हें और एकसे है. इसमें विशेपता तो ध्यता की हे. जिधर लक्ष लगावेगा वैसाही फल पावेगा.

जहचि असंचिअमिंधण मणलोयपवण सहिओदुह डदइ
तह कम्मि धण मीमअं खणेण जाणा लो डहइ ॥३॥

अर्थात्—जैसे बहुत काल के भेले हुवे इंधन-कचरे को पवन से प्रेरित अग्नि क्षणमात्र में भस्म कर डालती हे. तैसही अनन्तान्त भवों के संचित कर्म रूप कचरे को शुद्धध्यान रूप अग्नि क्षणमात्रमें भस्म कर आत्मा को पवित्र बनावे हे.

सिद्धाःसिध्यिन्ती सेतस्यन्ति यावन्तःके पि मानवाः
ध्यान तपो बलं नेव ते सर्वेऽपि शुभा शयाः॥ ४ ॥

अर्थात्—भूत कालमें अनंत सिद्ध भगवंत हुये हें. वर्तमान में होते हें (महाविदेह क्षेत्र में) और भविष्य म होंगे वो सब शुद्ध ध्यान रूप महा तप के प्रभाव से. इस लिये निश्चय होता है कि मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन ध्यानही हे.

बस यही हेतू—निज परात्म का सिद्ध करने यह ग्रंथ का प्रति पादन किया है. ध्यान नामक विषय का

संपूर्ण यथ्या तथ्य वर्णन् करना मेरे जैसे अल्पज्ञ को हांस्यपद है. तोभी शिशु क्रीडा वत् यह ग्रंथ लिख तत्व वेता सत्पुरुषों को समर्पण करता हूं कि आप इसको सर्व दोषों से विशुद्ध कर मेरे आशय माफिक इसे बना मुमुक्षु ओंको परमानन्द परम शांति रूप महा लाभ की बक्षीश की जीये !

ॐ शांति, शांति, शांति,

परम पूज्य श्री कहानजी ऋषि जी महाराज के
सम्प्रदाय के महंत मुनिराज श्री खूबा ऋषिजी
महाज के शिष्य वर्य आर्य मुनि श्री चेना
ऋषि जी महाराज और उनके शिष्य
बाल ब्रह्मचारी मुनि श्री अमोलख
ऋषिजी महाराज रचित यह
ध्यानकल्पतरु ग्रंथ
समाप्तम्

पृष्ठ	ओली	अशुद्ध.	शुद्ध.
२३१	१२	ह्रदय	हृदय
२३५	२	पदर्वादि	परदेवादि
२४१	११	कटकाना	अटकाना
२४१	२१	मुम्रा	सुर्वी
२४३	१५	ममको	मनको
२४३	२१	मसारणु	मसाराणु
२४४	२	महातम	महात्मा
२४८	४	नित्यानित्य	नित्यानित्य
२४७	१	चेमे	ग्रेमे
२४९	१०	मृत्य	सृत्यू
२५३	५	उनने	उनके
२५४	११	कायले	वेंयले
२५५	नोट	अद्यम	उद्यम
२५६	५	गवेत	रावन
२६२	१	(क्षमग २)	(अलगर२)
२६८	८	तग्रो	यन्घू
२६८	१२	उप्नाना	उपणता
२६८	१७	अग	अ-
२७४	नोट	[भे गी]	(भंगी)
२७५	१	अंता	अतर
२८५	१५	डासंत	डालने
२८८	१	विधन	विद्युत
२९७	९	चलम्	चेच रुम्
३०९	नोट	स्नपो	स्नापो
,,	,,	पाणिगल	पाणोगाळ
३१०	११	जय	लय
३१५	१२	रूपर्वीजत्म	रूपवर्जितम्
३१५	१५	ध्यान	घ्यान
३१५	१६	ध्याके	ध्यानके
३१८	२	नाहु	साहु
,,	नोट१२	आयरिमा	आयरिया
,,	,, २१	विन्द	विन्दू
३२०	२	चलवी	चउवी
३२१	१०	अभ्य	अभय
३२१	११	जवि	जीव
३२१	१३	ग्रहिणे	साराहिण
३२२	३	निस्तय	निभय
३२२	१२	गाभत	गर्भित
३२२	१२	देय	दुय

पृष्ठ	ओली	अशुद्ध.	शुद्ध
३२८	१	आयतरुक	आयतरुके
३२८	१५	आलीभूलमे दूसरी धक छपी है	
३२८	१९	वेंयावम्य	वेंयाम्य
३३१	२	द्वस्य	द्रव्य
३३२	२	द्वानो	दोनों
३३४	३	[ ] ज्ञान	विज्ञान
३३४	१५	नाहू	नोंह
३३८	१६	स्थन	स्थान
३३९	नोट	उर्मी में	गर्माने आते है
३४१	नोट	३३	३२
६४२	५	काइ	कोइ
३४७	१८	अष्टांग	अष्टांग
३५१	२	दमक्त	दाक्त
३५२	२	कण चक्षु	कर्ण चक्षु
३५२	१२	नाता	नोंदा
३५२	१७	घून	घृत
३६२	२	होत हैं	होता है
३६१	११	हाथा	होता
६६३	१६	निवृतिसा	अनिवृतिसो
६६४	नोट	दूप	धूप
३७०	हेडिंग	चतुर्य	चतुर्थे
३७०	१६	कन्धन	यन्धन
३७८	हेडिंग	आज्जव	अज्जन
३८१	१२	चिनियम	चिन्तियम
३८१	१५	मायुनां	साधुनां
३८२	१२	माणाणुहां	मरणाणुपेहा
३८४	५	[ ] स	त्रिस
३८७	१४	अनन	अनत
३९०	१७	वृसहो	वेमेहो
३९२	१८	दुत्तता	उद्वना

☞ इस सिवाय और भी सर्व अशुद्धियोंको शुद्धकर पढीये और गुणही गुण ग्रहण कर परम सुखी बनीये.